या॰इ॰ पेरेलमान

मनोरंजक भौतिकी

Я. И. ПЕРЕЛЬМАН

ЗАНИМАТЕЛЬНАЯ ФИЗИКА

КНИГА 2

«Наука»

या॰ इ॰ पेरेल्मान

मनोरंजक भौतिकी

2

मीर प्रकाशन, मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

अनुवादक: देवेंद्र प्र. वर्मा
PHYSICS FOR ENTERTAINMENT
Ya. Perelman
Book 2.

на языке хинди

सोवियत संघ में मुद्रित
संस्करण प्रथम, 1982

संस्करण द्वितीय, 1988

ISBN 5-03-000433-5
ISBN 5-03-000432-7

विषय-सुची

संपादकीय 9
प्राक्कथन 10
अध्याय 1. यांत्रिकी के मूल नियम 13

यात्रा का सबसे सस्ता उपाय (13). "थम जा, पृथ्वी!" (15). हवाई जहाज से चिट्ठी (18). बमबारी (20). रेल-गाड़ी, जो रुकती नहीं (21). चलते फूटपाथ (23). कठिन नियम (24). श्वेतगिरि-विक्रमबली की मृत्यु (26). क्या बिना आलंब के चल सकते हैं? (27). राकेट क्यों उड़ता है? (28). मसिधर कैसे तैरता है? (31). राकेट में सितारों की ओर (32).

अध्याय 2. बल, कार्य, घर्षण 35

हंस, झींगा और रोहू (35). क्रिलोव के विपरीत (37). क्या अंडे के खोल को तोड़ना सरल है? (40). हवा के विरूद्ध पाल (42). आर्कमेडिस पृथ्वी उठा लेता या नहीं? (45). जूल वेर्न का भीम और ऐलर का सूत्र (47). गाँठ की मजबूती (50). यदि घर्षण नही होता (51). "चेल्यूस्किन" की दुर्घटना के भौतिक कारण (54). संतुलित डंडा (56).

अध्याय 3. चक्रगति 59

नाचता लट्टू नहीं गिरता (59). बाजीगरी (61). कोलंबो की समस्या का नया हल (63). "नष्ट" गुरूत्व (64). आप और गैलीली (66). मेरी आपकी बहस (68). बहस का

अंत (70). "तिलस्मी" गोले में (70). द्रव निर्मित दूरदर्शी (76). "शैतान का फंदा" (76). सरकस का गणित (78). डंडीमारी (80).

अध्याय 4. गुरुत्वाकर्षण बल 82

गुरुत्वाकर्षण बल की मात्रा (82). पृथ्वी को रोकने के लिये फौलादी रस्सा (84). गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव से कैसे बचें? (85) चंद्रमा की ओर (87). चांद पर आधा घंटा (88) चांद पर चांदमारी (90). तलहीन कुएं में (92). जादुई पथ (95). सुरंग कैसे खोदते हैं? (97).

अध्याय 5. तोप से यात्रा 99

न्यूटन का पहाड़ (99). विराट तोप (101). भारी-भरकम टोप (102). चोट कम करने का उपाय (103). गणित-प्रेमियों के लिये (104).

अध्याय 6. गैस और द्रव के गुण 107

समुद्र, जिसमें डूबते नहीं (107). हिम-भंजक कैसे काम करता है? (110). डूबे हुए जहाज कहां हैं? (112). जूल वेर्न और वेल्स के सपने कैसे साकार हुए (115). "साद्को" का उद्धार (118). "शाश्वत" जल-चलित्र (119). "गैस" और "एटमोस्फेयर" शब्द किसकी देन हैं? (122). सरल प्रश्न? (123). हौज का प्रश्न (125). आश्चर्यजनक बरतन (127). हवाई बोझ (128). हिरोन के फव्वारों का नया रूप (132) शरारती बरतन (134). औंधे गिलास में पानी का भार कितना होगा? (135). जहाजों का पारस्परिक आकर्षण (136). बर्नूली सिद्धांत और उसके निष्कर्ष (140). मछली के पेट में बैलून (143). लहर और भंवर (145). पृथ्वी की गहराइयों में (150). कल्पना और गणित (152). गहरे खान में (155). गुब्बारे में (157).

अध्याय 7. ताप-संवृतियां 160

पंखा (160). हवा में ठंड क्यों लगती है? (160). मरु का ऊष्म उच्छ्वास (162). झीने घूंघट से गर्मी? (162). शीतकारी घड़ा (163). बिना ओला ठंड (164). हम कितनी गर्मी सहन कर सकते हैं? (165). तापमापी या दाबमापी (167). लालटेन में शीशा किस लिये है? (168). लपट अपने आप क्यों नहीं बुझती? (169) जूल वेर्न के उपन्यास का अलिखित अध्याय (170). भारहीन रसोई (170). पानी आग क्यों बुझाता है? (176). आग से अग्नि-शमन (177). उबलते पानी से पानी उबालना (180). क्या पानी को बर्फ से खौलाया जा सकता है? (181). बैरोमीटर का शोरबा (183). क्या उबलता पानी हमेशा गर्म होता है? (185). गर्म बर्फ (188). कोयले से ठंड (188).

अध्याय 8. चुंबकत्व. विद्युत 190

"प्यार भरा पत्थर" (190). कंपास का एक प्रश्न (191). चुंबकीय बल-रेखायें (192) इस्पात का चुंबकीकरण कैसे होता है (194). भीमकाय विद्युतीय चुंबक (196). चुंबक से जादू (198). खेती में चुंबक (199). चुंबकीय विमान (200). "मुहम्मद के ताबूत" की तरह (201). विद्युतचुंबकीय गाड़ी (204). पृथ्वीवासियों के साथ मंगलवासियों का युद्ध (206). घड़ी और चुंबकत्व (208). चुंबकीय "शाश्वत" चलित्र (210). संग्रहालयों की समस्या (211). एक और काल्पनिक शाश्वत चलित्र (212). लगभग शाश्वत चलित्र (213). बिजली के तार पर चिड़िये (215). तड़ित-प्रकाश (216). तड़ित की कीमत (217). कमरें में मुसलाधार वर्षा (219).

अध्याय 9. प्रकाश का परावर्तन और अपवर्तन. दृष्टि 221

पंच-पक्षीय चित्र (221). सौर चलित्र और सौर तापित्र (222). अदृश्य करने वाली टोपी (235). अदृश्य आदमी (227). अदृश्य

आदमी की शक्ति (230). पारदर्शक प्रासाधन (231). क्या अदृश्य आदमी देख सकता है? (232). रक्षी रंग (234). सुरक्षा-रंग (235). पानी में आदमी की आँख (236). गोताखोर कैसे देखता है? (238). काँच के लेंस पानी में (238). अनुभ-वहीन तैराक (239). अदृश्य सुई (242). पानी में से वाह्य जगत (245). पानी की गहराइयों में रंग (250). आँख में अंधा स्थल (252). चांद कितना बड़ा प्रतीत होता है? (255). नक्षत्रों के दृश्य-आकार (258). "स्फिंक्स". एडगर पो की कहानी (261). सूक्ष्मदर्शी से बड़ा क्यों दिखता है? (264). चाक्षुष आत्मवंचनायें (267). दर्जियों के लिये लाभदायक भ्रम (268). क्या बड़ा है? (269). कल्पना की शक्ति (269). चंद और दृष्टि-भ्रम '(271). यह क्या है? (274). असाधारण चक्के (275). प्राविधि में "काल-सूक्ष्मदर्शी" (277). निपकोव-चक्र (279). खरहा ऐंचा क्यों? (281). अंधेरे में सभी बिल्लियां भूरी क्यों? (282)

अध्याय 10. ध्वनि. लहरदार गति 284

ध्वनि व रेडियो-तरंगें (284). ध्वनि और बंदूक की गोली (285). मिथ्या विस्फोट (285). यदि ध्वनि-वेग घट जाये... (287). सबसे मंद वार्त्ता (287). क्षिप्रतम पथ (288). नगाड़े से टेलिग्राफ (289). ध्वनि-कुहरे और हवा से प्रतिध्वनि (291). ध्वनिहीन ध्वनि (293). प्राविधि में पराध्वनि (294). लीलीपुट और गुलीवर के स्वर (296). दिन में दो बार दैनिक पत्र (297). इंजन की सीटी (298). डोप्लर संवृति (300). किस्सा एक जुर्माने का (301). ध्वनि-वेग से (303).

संपादकीय

या. इ. पेरेलमान की "मनोरंजक भौतिकी" बीसवें रूसी संस्करण का हिंदी अनुवाद है। लेखक अनेक वर्षों तक पुस्तक को संसाधित एवं संवर्धित करते रहे। उनके योगदान से तैयार किया गया अंतिम (तेरहवां) संस्करण 1936 में प्रकाशित हुआ था। आगे के संस्करणों में कोई मौलिक परिवर्तन लाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। भौतिकी की नवीनतम उपलब्धियों को इस पुस्तक में प्रतिबिंबित करने का अर्थ है पुस्तक का आकार काफी बड़ा कर देना और इसके रूप को बदल देना। दोनों ही बातें पुस्तक की आत्मा के प्रतिकूल होतीं। लेखक द्वारा संकलित विषय-सामग्री आज भी अद्यतन है: वह भौतिकी के मूलभूत नियमों को समझाने का प्रयत्न करती है। उदाहरणार्थ, लेखक द्वारा वर्णित अंतरिक्षी उड़ान के सिद्धांत आज भी सही हैं। जहाँ तक इस क्षेत्र की तथ्यपरक सामग्री का संबंध है, उन्हें अन्य पुस्तकों से प्राप्त किया जा सकता है।

नये संस्करणों में सिर्फ पुराने आँकड़ों को बदला गया है; बाद में असफल सिद्ध हुई योजनाओं के वर्णन को हटा दिया गया है और चंद नयी बातों व टिप्पणियों को जोड़ा गया है।

प्राक्कथन
(तेरहवें संस्करण से)

द्वितीय भाग पुस्तक के प्रथम भाग का उत्तरार्ध नहीं है; दोनों पुस्तकें एक दूसरे से स्वतंत्र संकलन हैं। प्रथम संकलन की सफलता से प्रेरित हो कर लेखक ने अन्य इकत्रित सामग्रियों को संसाधित करने का निश्चय किया, जिसका परिणाम पाठकों के समक्ष है। इसमें भौतिकी के उन्हीं अध्यायों पर मनन किया गया है, जिनपर पहले भाग में किया गया था।

संकलनकर्ता ने पहले की तरह ही पाठकों को नया ज्ञान देने का विशेष प्रयत्न नहीं किया है; उसने पाठकों के ज्ञान को सजीव बनाने और उसे नयी स्फूर्ति प्रदान करने की चेष्टा की है। पुस्तक का लक्ष्य पाठक में वैज्ञानिक कल्पनाशक्ति को जागृत करना और समस्याओं पर भौतिकी की आत्मा के अनुरूप मनन करने की योग्यता का विकास करना है, ताकि वह अपने ज्ञान का बहुमुखी प्रयोग कर सके। इसीलिये "मनोरंजक भौतिकी" में आकर्षक व लुभावने प्रयोगों को गौण स्थान दिया गया है और मुख्य स्थान भौतिकी से संबंधित पहेलियों, रोचक समस्याओं, शिक्षाप्रद विरोधाभासों, सारगर्भित प्रश्नों और भौतिकीय संवृत्तियों की तुलनाओं आदि को दिया गया है। ऐसी सामग्रियों की खोज के लिये संकलनकर्ता को दैनंदिन जीवन की घटनाओं, विज्ञानगल्प के पृष्ठों और प्रकृति व प्राविधि का आश्रय लेना पड़ा है। ये वे क्षेत्र हैं, जो पाठ्य-पुस्तक व भौतिकी की प्रयोगशाला की सीमा से बाहर हैं और जिज्ञासु पाठक का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं।

पुस्तक गंभीर अध्ययन के लिये नहीं लिखी गयी है; इसे विश्राम के क्षणों में सिर्फ समय के सार्थक उपयोग के लिये पढ़ा जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रख कर लेखक ने शैली को यथासंभव रोचक बनाने का प्रयत्न किया है। लेखक का विश्वास है कि विषय में रुचि से ध्यान

केंद्रित होता है, चिंतन-क्रिया तीव्र होती है और विषय के सचेत अात्मसातन की संभावना बढ़ जाती है।

भौतिकीय कलन के प्रति रुचि जागृत करने के लिये इस संकलन के चंद निबंधों में कलन की प्रक्रियायें भी दिखायी गयी हैं (जो प्रथम पुस्तक में बिल्कुल नहीं की गयी थी)।

इस प्रकार, प्रस्तुत पुस्तक में ऐसी सामग्री का समावेश किया गया है, जिसके लिये पाठकों को विशेष ज्ञान की आवश्यकता पड़ सकती है। फिर भी "मनोरंजक भौतिकी" की प्रथम व द्वितीय पुस्तकों के बीच अंतर इतना नगण्य है कि इन्हें किसी भी क्रम में पढ़ा जा सकता है।

"मनोरंजक भौतिकी" की तीसरी पुस्तक नहीं है; इसके बदले में लेखक की अन्य पुस्तकें हैं: "मनोरंजक यांत्रिकी" और "क्या आप भौतिकी जानते हैं?"। खगोलशास्त्र पर एक पुस्तक अलग से है: "मनोरंजक खगोलशास्त्र"।

या. पेरेलमान

1936

अध्याय 1

यांत्रिकी के मूल नियम

यात्रा का सबसे सस्ता उपाय

XVII -वीं शती के कुशाग्रबुद्धि फ्रांसीसी लेखक सिरानो दे बेर्जेराक अपनी व्यंग्यात्मक कृति "चंद्रमा के राज्य का इतिहास" (1652 ई.) में एक आश्चर्यजनक घटना का वर्णन करते हैं, जो मानो उनके साथ घटी थी। भौतिकी का कोई प्रयोग करते वक्त एक बार वे अचानक अपने उपकरणों समेत हवा में काफी ऊपर उठ आये। कुछ घंटों बाद जब वे पुनः धरती पर उतरने में सफल हुए, तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा : वे अपने सगे फ्रांस तो क्या, युरोप में भी नहीं थे ; वे उत्तरी अमेरिका महादेश पर कनाडा में थे। ऐटलांटिक महासागर के पार इस आशातीत उड़ान को फ्रांसीसी लेखक ने बिल्कुल स्वाभाविक माना। उन्होंने समझाया कि जबतक वे धरातल से अलग थे, हमारे ग्रह ने पहले की तरह ही अपनी धुरी पर पूरब की दिशा में अपना घूर्णन जारी रखा। इसीलिये जब वे पृथ्वी पर उतरे, उनके पैरों के नीचे फ्रांस की बजाय अमेरिका महादेश आ गया।

लगता है कि यात्रा करने का कितना आसान व सस्ता उपाय है। जमीन से ऊपर उठ आये, कुछ मिनट हवा में रूके रहे और दूर पश्चिम में बिल्कुल नये स्थान पर उतर आये। महादेशों व महासागरों की यात्रा से थकने की बजाय पृथ्वी से ऊपर उठ कर इंतजार करना चाहिये कि कब वह स्वयं घूमती हुई आपकी मंजिल आपके पैरों तले पहुंचा दे।

पर अफसोस कि यह अनूठी विधि कोरी कल्पना के सिवा कुछ भी नहीं है। प्रथमतः, हवा में ऊपर उठ कर हम पृथ्वी के गोले से अलग नहीं हो जाते : हम उसके गैसीय आवरण के सहारे उससे जुड़े रहते हैं, उसके वातावरण में लटके रहते हैं, जो स्वयं भी पृथ्वी के अक्षीय घूर्णन में साथ देता रहता है। हवा (या और सही कहें, तो हवा की निचली अधिक घनी परत) पृथ्वी के साथ घूमती रहती है और जो कुछ भी उसमें होता
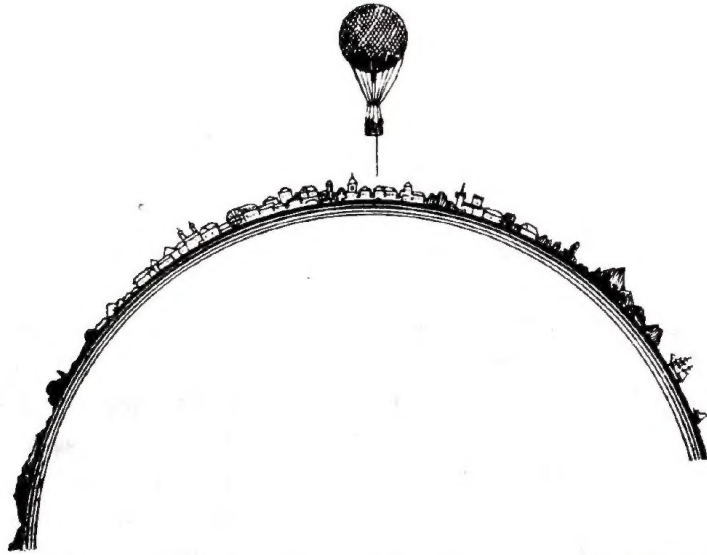
चित्र 1. क्या ऐरोस्टैट से पृथ्वी का घूर्णन दिख सकता है? (चित्र में सही पैमाने पर ध्यान नहीं दिया गया है।)

है, – बादल, विमान, उड़ते पक्षी, कीड़े-पतंगे आदि, – सबों को अपने साथ पृथ्वी की धुरी के गिर्द घुमाती रहती है। यदि हवा पृथ्वी के साथ नहीं घूमती होती, तो हम हमेशा हवा का तेज बहाव अनुभव करते ; इतना तेज की उसके सामने बड़ी से बड़ी आंधी भी समीर के हल्के झोंके सी लगती।[1] क्योंकि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि हम एक स्थान पर रूके हैं और हवा हमारे पास से गुजर रही है या हवा अचल है और हम उसमें गतिमान हैं। दोनों ही हालतों में हम हवा के तेज बहाव को महसूस करेंगे। मोटरसाइकिल पर 10 km/h के वेग से गतिमान व्यक्ति शांत मौसम में भी अत्यंत तेज हवा महसूस करता है।

---

[1] भयंकर आंधी, प्रभंजक (हरीकेन), का वेग है 40 m प्रति सेकंड या 144 km प्रति घंटे। पृथ्वी हमें लेनिनग्राद के अक्षांश पर (उदाहरणार्थ) हवा के बीच 230 m प्रति सेकेंड या 828 km प्रति घंटे के वेग से घुमाती!

यह तो पहली बात हुई। दूसरी बात: यदि हम वातावरण की ऊपरी परतों तक उठ आते या यदि वातावरण होता ही नहीं, तो भी हम यात्रा के इस सस्ते उपाय को काम में नहीं ला सकते, जिसकी फ्रांसीसी लेखक ने कल्पना की है। घूर्णनरत पृथ्वी के तल से अलग हो कर भी हम जड़त्व के कारण पुराने वेग से गतिमान रहते हैं। पुराने वेग से तात्पर्य है उस वेग से, जिससे हमारे पैरों तले पृथ्वी घूमती रहती है। जब हम पुनः नीचे उतरते हैं, हम अपने को उसी स्थान पर पाते हैं, जहां से ऊपर उठे थे। यह वैसी ही बात हुई, जैसे ट्रेन के डिब्बे में उछलने पर डिब्बे के सापेक्ष हम उसी पुराने स्थान पर गिरते हैं। यह सत्य है कि जड़त्व के कारण हम सरल रेखा पर (स्पर्शरेखा की दिशा में) गतिमान रहते, जबकि हमारे नीचे पृथ्वी गोल परिधि पर गतिमान रहती है ; पर समय के छोटे अंतरालों में इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

"थम जा, पृथ्वी!"

विख्यात अंग्रेज लेखक हरबर्ट वेल्स का एक विज्ञानगल्प है, जो एक चमत्कारी क्लर्क के बारे में लिखा गया है। युवक कोई ज्यादा अक्लमंद नहीं था, पर भाग्यवश एक अनूठा वरदान उसके हाथ लग गया : जो कुछ भी वह चाहता था, उसके बोलते ही पूरा हो जाता था। पर कहानी से पता चलता है कि इतना शक्तिशाली वरदान भी उसे या अन्य लोगों को दुख के सिवा और कुछ नहीं दे सका। हम इस कहानी के अंत से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

एक जगह रात भर पीने के बाद सुबह उजाले में घर लौटने के डर से चमत्कारी क्लर्क ने सोचा कि क्यों न रात को और लंबी कर दी जाये। पर कैसे यह किया जाये? आकाश के सारे तारों को आज्ञा देना पड़ता कि वे अपना चलना बंद कर दें। इतना बड़ा काम करने में वह डर रहा था और जब उसके साथी ने चांद को रोक लेने की सलाह दी, तो उसने गौर से आकाश में देखा और सोच में डूबे हुए स्वर में कहा :

> "– मुझे लगता है कि इस काम के लिये वह कुछ ज्यादा ही दूर है.... आप क्या सोचते हैं...?

–कोशिश तो करें।–मेडिग (यह साथी का नाम था–या. पे.) जिद कर रहा था।–वह तो निश्चय ही नहीं रूकेगा; आप सिर्फ पृथ्वी का घूमना बंद कर दें। उम्मीद है कि इससे किसी को नुकसान नहीं होगा।

–हूँ,–फोटेरिंग (क्लर्क– –या. पे.) ने कहा।–ठीक है, देखता हूँ।...

वह आज्ञा देने की मुद्रा में खड़ा हो गया और हाथ उठा कर घोषित किया:

–थम जा, पृथ्वी! बंद कर घूमना!

उसका कहना खत्म भी नहीं हुआ था कि उसके मित्र प्रति मिनट कुछेक दर्जन मील की गति से उड़ चले।

इसके बावजूद भी उसने सोचना जारी रखा। एक सेकेंड भी नहीं बीता कि उसने सोच कर मन ही मन कह दिया:

–फल जो भी हो, मेरा बाल बाँका न हो; मैं जीवित रहूँ।

मानना पड़ेगा कि यह इच्छा ऐन मौके पर प्रकट हुई थी। चंद सेकेंड बाद ही वह एक ताजे खुदे गडढे में जा गिरा। उसके ऊपर से ईंट-पत्थर, मकानों के टुकड़े, लोहे-लक्कड़ आदि उड़-उड़ कर गुजर रहे थे, पर गड्ढे में उसे चोट का कोई खतरा न था। जमीन से टकरा कर चूर हुई एक बेचारी गाय उड़ रही थी। हवा की गति भयानक रूप से तेज थी। वह इधर-उधर कुछ देखने के लिये भी सर थोड़ा ऊपर नहीं उठा सकता था।

–कुछ समझ में नहीं आता,–उसने टूटे से स्वर में कहा।–क्या हो गया? आंधी तो नहीं है? हो सकता है कि मुझसे कोई गलती हो गयी है।

हवा में कोट की फहरती किनारी से जितना देख सकता था, इर्द-गिर्द देख लेने के बाद उसने कहना जारी किया:

–आकाश में तो लगता है कि सब ठीक है। चांद भी अपनी जगह पर है। पर बाकी सब... शहर कहां गया? और मकान? गलियां? हवा कहां से आयी? उसे बहने को तो मैंने नहीं कहा था!

फोटेरिंग ने खड़ा होने की कोशिश की, पर यह बिल्कुल असंभव

लग रहा था, और इसीलिये वह चौपाये की तरह पत्थर आदि पकड़-पकड़ कर चल रहा था। वैसे, जाने लायक कोई जगह भी नहीं थी, क्योंकि हवा से उड़ कर उसके सर को ढक रही कोट की पिछली किनारी के नीचे से वह जितना देख सकता था, सब ओर बरबादी और तोड़-फोड़ ही नजर आ रहा था।

–ब्रह्मांड में कोई गंभीर गड़बड़ी हो गयी है,–उसने सोचा,–पर कैसी गड़बड़ी –पता नहीं।

गड़बड़ी सचमुच में थी। घर-बार, पेड़-पौधे, जीव-जंतु, आदि कुछ भी नजर नहीं आ रहे थे। चारों ओर बेतरतीबी से भग्नावशेष बिखरे थे और वे भी धूल की आंधी में मुश्किल से दिख रहे थे।

बात क्या थी–यह कसूरवार की समझ में आने को नहीं था। पर कारण बिल्कुल सरल था। पृथ्वी को एकबारगी से रोकते वक्त फोटेरिंग ने जड़त्व के बारे में नहीं सोचा। जड़त्व ऐसी चीज है, जो गति के एक-ब-एक रूकने से पृथ्वीतल पर स्थित सभी वस्तुओं को फेंक ही देती। इसीलिये जो कुछ भी पृथ्वी के मुख्य द्रव्यमान के साथ अटूट रूप से नहीं जुड़ा था, उसकी सतह की स्पर्श रेखा की दिशा में बंदूक की गोली के वेग से उड़ चला। इसके बाद वस्तुएं पुनः पृथ्वी पर गिरती थीं और चूर-चूर हो जाती थीं।

फोटेरिंग समझ गया कि जो चमत्कार उसने दिखाया है, कुछ सही नहीं था। इसीलिये उसका मन चमत्कारों के प्रति घृणा से भर गया और उसने भविष्य में कोई भी अलौकिक कार्य न करने की प्रतिज्ञा की। लेकिन पहले तो भूल सुधारनी थी। बर्बादी कम नहीं हुई थी। तूफान गर्ज रहा था, धूल का बादल चांद को ढके हुए था और दूर से पानी के आने का शोर सुनायी दे रहा था। बिजली की चमक में फोटेरिंग ने देखा कि उसकी ओर भयानक गति से पानी की पूरी दीवार बढ़ी आ रही है। उसकी हिचकिचाहट खत्म हो गयी और उसने अडिग निर्णय लिया:

–रूक जा!–पानी से उसने कहा।–एक कदम भी आगे नहीं!

इसके बाद उसने यही आज्ञा चमकती बिजली और तेज बहती हवा के लिये भी दुहरायी। सब शांत हो गया। वह बैठ गया और सोचने लगा।

–कहीं फिर कोई गलती न हो जाये, –उसने सोचा और कहा : –पहली बात, अभी मैं जो आज्ञा दूंगा, उसके पूर्ण होने के बाद मैं चमत्कार रचने की शक्ति खो दूं और वैसा ही हो जाऊँ, जैसे सभी साधारण लोग हैं। अलौकिक शक्ति नहीं चाहिये। बड़ा खतरनाक खिलौना है यह। और दूसरे, सब कुछ जैसा था, वैसा ही हो जाये – शहर, लोग, घर और मैं – सब कुछ वैसा हो जाये, जैसा पहले था।"

हवाई जहाज से चिट्ठी

कल्पना करें कि आप हवाई जहाज में बैठे हैं, जो पृथ्वी के ऊपर तेजी से उड़ रहा है। नीचे जानी-पहचानी जगहें हैं। अभी कुछ देर में आप उस घर के ऊपर से गुजरेंगे, जिसमें आप का मित्र रहता है। "उसे कम से कम नमस्कार तो भेज ही दें" – आपके दिमाग में विचार आता है। आप डायरी के पन्ने पर जल्दी-जल्दी कुछेक शब्द लिख मारते हैं और पुर्जी को किसी भारी चीज के साथ बांध कर रख लेते हैं (ऐसी चीज को आगे हम "बोझ" के नाम से पुकारेंगे)। जब आपके मित्र का घर आपकी जहाज के नीचे आता है, आप बोझ हाथ से गिरा देते हैं।

आपको पूरा विश्वास है कि बोझ बेशक घर के गिर्द बाग में कहीं पर गिरेगा। लेकिन वह वहां नहीं गिर रहा है, यद्यपि घर और बाग दोनों ही ठीक आपके नीचे हैं।

यदि जहाज से उसके अभिपातन को आप ध्यान से देखेंगे, तो एक विचित्र तथ्य सामने आयेगा : बोझ नीचे तो गिर ही रहा है, पर साथ ही साथ वह **हवाई जहाज का पीछा भी नहीं छोड़ रहा है**; जहाज के ठीक नीचे उसके साथ चला आ रहा है, मानों उसे अदृश्य धागे से बांध कर नीचे लटकाया जा रहा हो। और जब बोझ जमीन तक पहुंचेगा, वह इष्ट स्थान से बहुत ही दूर होगा।

इसमें भी उसी जड़त्व नियम की भूमिका है, जो बेर्जेराक द्वारा बतायी गयी मोहक विधि से यात्रा करने में बाधक बनता है। जबतक बोझ विमान में था, वह विमान के साथ चल रहा था। आपने उसे गिरा दिया। पर जहाज से अलग हो कर नीचे गिरते वक्त वह अपना प्रारंभिक वेग खो नहीं

देता। वह नीचे भी गिरता है और साथ-साथ पुरानी दिशा में भी गतिमान रहता है। अधोमुखी और क्षैतिज दोनों ही गतियां जुड़ जाती हैं और इसके परिणाम-स्वरूप बोझ नीचे की ओर वक्र रेखा पर चलना शुरू करता है; वह विमान के नीचे-नीचे क्षैतिज चलते हुए गिरता है (यदि विमान के उड़ने की दिशा या क्षिप्रता नहीं बदलती)। बोझ की गति ठीक वैसी ही होती है, जैसी क्षैतिज दिशा में प्रक्षिप्त पिंड की गति होती है। उदाहरण के तौर पर क्षैतिज दिशा में छोड़ी गयी बंदूक की गोली का पथ देखें : वह एक वक्र पथ पर चलती है, जो अंततोगत्वा जमीन पर समाप्त हो जाती है।
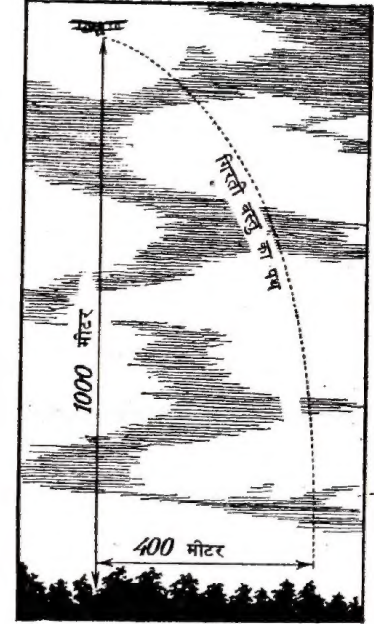
चित्र 2. उड़ते विमान से फेंका गया सामान उदग्र नहीं, वक्र पथ पर गिरता है।

एक बात बतानी रह जाती है : उपरोक्त सारी बातें पूर्णरूप से सही होतीं, यदि हवा का प्रतिरोध न होता। वास्तविकता में यह प्रतिरोध क्षैतिज और उदग्र–दोनों ही गतियों का ह्रास करता है, जिसके कारण बोझ पूरे काल तक विमान के नीचे नहीं रहता; कुछ पीछे छूटता जाता है।

यदि विमान बड़ी ऊँचाई और बड़े वेग से उड़ रहा हो, तो उदग्र रेखा से बोझ बहुत दूर चली जा सकती है। यदि हवा शांत हो, तो 1000 m की ऊंचाई पर 100 km प्रति घंटे के वेग से उड़ते विमान से गिराया गया बोझ उदग्र रेखा से कोई 400 मीटर दूर गिरेगा (चित्र 2)।

कलन (यदि वायु-प्रतिरोध को नगण्य माना जाये) जटिल नहीं है। समरूप त्वरण से गतिमान पिंड के पथ की लंबाई व्यक्त करने
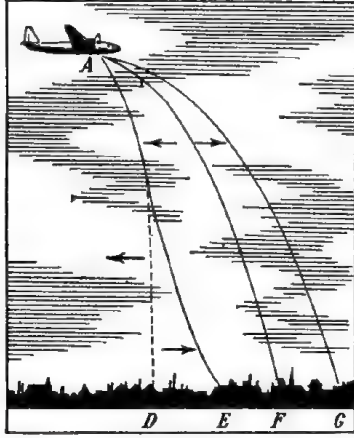
चित्र 3. विमान से गिरने वाले बम का पथ: AF – शांत हवा में; AG – विमान की दिशा में हवा बहने पर; AD – विमान के विपरीत हवा चलने पर; AE – जब ऊपर हवा विपरीत हो और नीचे – अनुकूल।

वाले सूत्र $S = gt^2/2$ से प्राप्त होता है: $t = \sqrt{2S/g}$। इसका मतलब है कि 1000 m की ऊँचाई से गिरने वाला पत्थर $\sqrt{\frac{2 \times 1000}{9.8}}$, अर्थात् 14 सेकेंड में जमीन पर पहुँचेगा। इस अंतराल में वह $\frac{100000}{3600} \times$ $\times 14 = 390$ m की क्षैतिज दूरी तय कर चुका होगा।

बमबारी

उपरोक्त बातों से स्पष्ट हो जाता है कि सैनिकविमान के चालक का काम कितना कठिन होता है, जब उसे किसी स्थान-विशेष पर बम गिराने की आज्ञा मिलती है। उसे हिसाब लगाते वक्त विमान के वेग और गिरने वाले पिंड पर वायु-प्रतिरोध के प्रभाव के अतिरिक्त हवा की गति को भी ध्यान में रखना पड़ता है। चित्र 3 में भिन्न परिस्थितियों में फेंके गये बम के भिन्न पथों के आरेख दिखाये गये हैं। यदि हवा शांत है, तो बम वक्र AF पर चलता हुआ गिरता है। यदि हवा विमान के उड़ने की दिशा में बह रही है, बम का पथ वक्र AG हो जाता है। साधारण शक्ति की प्रतिकूल हवा के कारण बम वक्र AD के सहारे गिरता है। ये पथ सिर्फ उस परिस्थिति में बनते हैं, जब ऊँचाई पर और नीचे हवा का वेग समान होता है। पर अक्सर ऊपर और नीचे हवा की दिशायें विपरीत होती हैं (जैसे ऊँचाई पर प्रतिकूल और नीचे – अनुकूल)। ऐसी परिस्थिति में वक्र का रूप बदल कर AE की भाँति हो जाता है।

रेल-गाड़ी, जो रुकती नहीं

जब आप अचल प्लेटफार्म पर खड़े रहते हैं और सामने से "एक्सप्रेस" गुजरती है, तो डिब्बे में छलांग लगाना समझदारी की बात नहीं होगी। लेकिन कल्पना करें कि प्लेटफार्म भी गाड़ी की दिशा में उसी के वेग से गतिमान है। तब क्या डिब्बे में चढ़ना कठिन होगा?

जरा भी नहीं। आप आराम से डिब्बे में प्रवेश कर सकते हैं। यह रुकी ट्रेन में चढ़ने जैसा ही होगा। यदि आप और गाड़ी समान क्षिप्रता से समान दिशा में गतिमान हैं, तो **आपके सापेक्ष गाड़ी अचल** है। उसके चक्के घूमते रहेंगे लेकिन आपको लगेगा कि चक्के अपनी जगह पर ही नाच रहे हैं, आगे नहीं बढ़ते। सच पूछें, तो सभी वस्तुएं, जिन्हें हम अचल मानते हैं (जैसे स्टेशन पर खड़ी गाड़ी), हमारे साथ-साथ पृथ्वी की धुरी व सूर्य का चक्कर लगाती रहती हैं। व्यावहारिकत: इस गति की उपेक्षा की जा सकती है, क्योंकि इससे हमें कोई असुविधा नहीं होती।

अत: गाड़ी को बिना रोके यात्रियों को बैठाने व उतारने की व्यवस्था की जा सकती है। यह कोई कोरी कल्पना नहीं होगी।

बड़ी-बड़ी प्रदर्शनियों में अक्सर ऐसी प्रयुक्तियां लगायी जाती हैं, ताकि दर्शक को देखने में सुविधा हो और उसका समय जाया न हो। प्रदर्शनी-क्षेत्र के छोर अंतहीन फीते जैसी रेलवे-लाइन से मिले रहते हैं; यात्री जहां चाहें, चलती गाड़ी में घुस सकते है और उसमें से निकल सकते हैं।

इस दिलचस्प प्रयुक्ति को चित्रों में दिखाया गया है। चित्र 4 में A व B अक्षरों द्वारा प्रदर्शनी के छोरों पर स्थित स्टेशन दिखाये गये हैं। हर स्टेशन पर एक अचल गोल चबूतरा होता है, जिसके चारों ओर ग्रामोफोन के रिकार्ड सा एक बहुत बड़ा क्षैतिज चक्का घूमता रहता है। इन चक्कों के चारों ओर लोहे की रस्सियों से जुड़े रेलगाड़ी के डिब्बे घूमते रहते हैं। डिब्बों की क्षिप्रता उतनी ही होती है, जितनी तेजी से चबूतरों की वाह्य किनारी घूमती है; अत: यात्री बिना
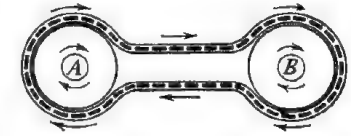
चित्र 4. स्टेशनों A व B के बीच अविराम रेलपथ की बनावट का आरेख। स्टेशन की बनावट अगले चित्र में दिखायी गयी है।
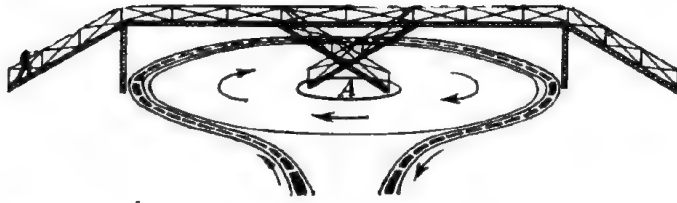
चित्र 5. सदा गतिमान रेलपथ का स्टेशन।

किसी खतरे के चबूतरे से गाड़ी में प्रवेश कर सकते हैं और गाड़ी से चबूतरे पर उतर सकते हैं। डिब्बे से निकल कर यात्री घूमते चबूतरे के केंद्र की ओर चलना शुरू करता है और अचल चबूतरे पर पहुँच जाता है। घूमते चबूतरे की बाहरी किनारी से भीतरी किनारी तक पहुँचना कठिन नहीं होता, क्योंकि जैसे-जैसे त्रिज्या कम होती जाती है, परिधि पर की गति भी कम होती जाती है।[1] भीतरी अचल चबूतरे पर पहुंच कर यात्री पुल के सहारे जमीन पर उतर आता है। (चित्र 5)।

कम स्टेशनों के होने से समय और ऊर्जा की काफी बड़ी बचत होती है। शहरों में ट्राम के रुक-रुक कर चलने के कारण दो-तिहाई ऊर्जा और समय का बहुत बड़ा भाग उसे रोकने व पुनः चालू करने में ही खर्च हो जाता है।[2]

रेलगाड़ी के स्टेशनों पर गतिमान प्लेटफार्मों के बिना भी काम चल सकता है। मान लीजिये कि कोई साधारण सा अचल स्टेशन है, जहां से एक्सप्रेस गाड़ी गुजरती है। हम चाहते हैं कि उसे बिना रोके यात्रियों को

[1] समझना सरल है कि भीतरी किनारी के बिंदु कहीं अधिक मंद गति से घूमते हैं, क्योंकि समान अंतराल में वाह्य किनारी के बिंदुओं की अपेक्षा कम लंबाई का गोल पथ तय करते हैं।

[2] ब्रेक लगाने में खर्च हुई ऊर्जा की बचत हो सकती है, यदि ट्राम के विद्युत-चलित्र ब्रेक लगाते वक्त डाइनेमो (जनित्र) की तरह काम करने लगते और थोड़ा विद्युत वापस लौटा देते। शार्लोटेन (बर्लिन के पास) इस विधि से 30% विद्युत की बचत की गयी। (यही विधि बड़े पैमाने पर व्लादीवस्तोक-मास्को विद्युत-ट्रेनों में उपयोग की जा रही है – संपादक)

उसमें बैठाया जाये। यात्रियों को पहले किसी खड़ी गाड़ी में जमा कर लेना चाहिये। जब यह गाड़ी एक्सप्रेस के समांतर चलती हुई एक्सप्रेस जितनी ही गति बढ़ा लेगी और उसकी बराबरी पर आ जायेगी, दोनों गाड़ियां **एक दूसरे के सापेक्ष** अचल हो जायेंगी। अब तख्ते का पुल खिसका कर दोनों गाड़ियों को जोड़ा जा सकता है। यात्री आराम से एक्सप्रेस गाड़ी में बैठ जायेंगे; एक्सप्रेस को रोकने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

चलते फूटपाथ

गति सापेक्षिकता नियम के आधार पर बनी एक और प्रयुक्ति है – "चलते फूटपाथ"। इनका व्यवहार अबतक प्रदर्शनियों तक ही सीमित था। पहली बार वे शिकागो प्रदर्शनी (1893 ई.) के लिये बनाये गये थे; बाद में उनका प्रयोग 1900 ई. की पेरिस विश्व प्रदर्शनी में हुआ था। इस प्रयुक्ति का आरेख चित्र 6 में दिखाया गया है। इसमें एक के भीतर एक कर के पांच संवृत फूटपाथी पट्टियां हैं, जो विशेष यंत्रों द्वारा अलग-अलग क्षिप्रताओं से गतिमान रहती हैं।

बाहरी पट्टी काफी धीरे – 5 km प्रति घंटे – की क्षिप्रता से चलती रहती है। यह पैदलयात्री की साधारण गति है और इतनी धीरे रेंगने वाली पट्टी पर चढ़ जाना कठिन नहीं है। इसके साथ वाली भीतर की पट्टी 10 km/h की क्षिप्रता से चल रही होती है। सड़क से सीधे इसपर चढ़ना
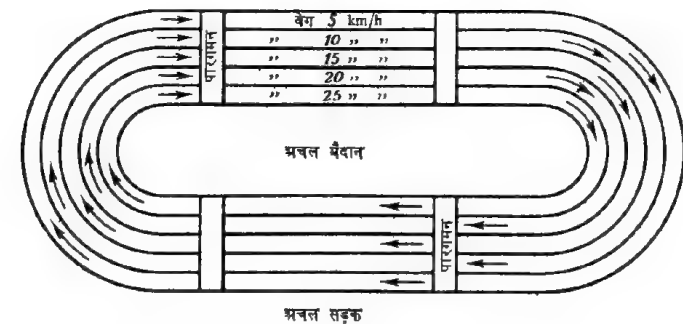
चित्र 6. चलते फूटपाथ।

थोड़ा खतरनाक होगा, पर पहली पट्टी से इस पर आने में कुछ खतरा नहीं है। कारण यह है कि 10 km/h की क्षिप्रता से चलने वाली दूसरी पट्टी 5 km/h की क्षिप्रता से गतिमान पहली पट्टी के सापेक्ष एक घंटे में सिर्फ 5 km की दर से चलती है। दूसरी पट्टी पर पहली पट्टी से आना उतना ही आसान है, जितना जमीन से पहली पट्टी पर। तीसरी पट्टी 15 km/h की दर से चलती है, लेकिन दूसरी पट्टी से उसपर आना बिल्कुल कठिन नहीं है। तीसरी से चौथी पर आना भी उतना ही आसान है: चौथी की चाल 20 km/h है। और अंत में दर्शक चौथी से 25 km/h की दर से दौड़ती पांचवी पट्टी पर खड़ा हो कर आवश्यक स्थान तक पहुँचता है और एक-एक कर पट्टियों पर चलता हुआ जमीन पर उतर आता है।

कठिन नियम

यांत्रिकी के तीन मुख्य नियमों में से शायद कोई भी इतना कठिन नहीं है, जितना "न्यूटन का तीसरा नियम"। यह **क्रिया और प्रतिक्रिया** से संबंधित नियम है। इसे सभी जानते हैं और कुछ स्थितियों में इसका सही-सही प्रयोग भी कर सकते हैं। पर बहुत कम ही लोग होंगे, जो इसे सही-सही समझते होंगे। हो सकता है कि आप, पाठकगण, खुशकिस्मत हों और इसे तुरत समझ गये हों। लेकिन मैं स्वीकार करता हूँ कि इस नियम के साथ प्रथम परिचय होने के दो साल बाद ही इसे समझ सका।

अलग-अलग कई लोगों से बातें करके मैंने देखा कि अधिकांश लोग इस नियम की सत्यता को मानने के लिये तैयार हैं, यदि इसमें कुछ महत्वपूर्ण सुधार कर दिया जाये। वे सहर्ष मान लेते हैं कि नियम अचल पिंडों के लिये सत्य है। पर गतिमान पिंडों की आपसी क्रिया में इसे कैसे लागू किया जाये, वे नहीं समझ पाते। नियम कहता है: क्रिया हमेशा प्रतिक्रिया के बराबर व विपरीत होती है। इसका अर्थ है कि यदि घोड़ा टमटम को आगे की ओर खींच रहा है, तो टमटम भी घोड़े को उसी बल से पीछे खींच रहा है। लेकिन इस स्थिति में टमटम को अपने स्थान पर ही टिका रहना चाहिये। फिर वह चल क्यों पड़ता है? ये दोनों बल एक दूसरे को संतुलित क्यों नहीं कर लेते, यदि वे आपस में बराबर हैं?

इस नियम से संबंधित ये प्रश्न लोगों को अक्सर परेशान करते हैं।

तो क्या नियम गलत है? नहीं, वह बिल्कुल सही है; सिर्फ हम उसे ठीक-ठीक नहीं समझते। बल एक दूसरे को संतुलित नहीं करते – इसका कारण है कि वे भिन्न पिंडों पर क्रियाशील हैं। एक बल टमटम पर लगा है और दूसरा – घोड़े पर। यह सही है कि बल बराबर हैं। पर क्या समान बल हमेशा समान क्रिया संपन्न करते हैं? क्या तुल्य बल सभी पिंडों को समान त्वरण संप्रेषित करते हैं? क्या पिंड पर बल की क्रिया बल के विरुद्ध पिंड के "प्रतिरोध" की मात्रा पर निर्भर नहीं करती?

यदि इन प्रश्नों पर मनन करें, तो स्पष्ट हो जायेगा कि क्यों घोड़ा टमटम को आगे खींच ले जाता है, जब कि टमटम भी उसी बल से घोड़े को पीछे खींच रहा है। टमटम पर क्रियाशील बल और घोड़े पर क्रियाशील बल हर क्षण बराबर हैं; पर चूंकि टमटम चक्कों पर स्वतंत्रतापूर्वक गति कर सकता है और घोड़ा जमीन पर पैर से टेक कर अड़ जाता है, इसलिये स्पष्ट है कि टमटम घोड़े की ओर लुढ़क पड़ता है। जरा सोचिये तो सही; यदि टमटम घोड़े की गतिदायक शक्ति का प्रतिरोध नहीं करता, तो... घोड़े के बिना भी काम चल जाता; क्षीण से क्षीण बल लगाने पर भी टमटम गतिमान हो जाता। घोड़ा इसीलिये तो चाहिये कि वह टमटम के प्रतिरोध को तोड़ सके।

नियम को आत्मसात् करने में आसानी होती और किसी तरह की गलतफहमी भी नहीं उत्पन्न होती, यदि नियम को ऐसे संक्षिप्त रूप में नहीं लिखा जाता: "क्रिया और प्रतिक्रिया बराबर होती हैं"। नियम को (उदाहरणार्थ) इस प्रकार भी लिखा जा सकता है: "प्रतिक्रियाशील बल बराबर होता है क्रियाशील बल के"। क्योंकि बराबर सिर्फ **बल** होते हैं, – और उनकी क्रियायें (यदि "बल की क्रिया" को साधारण अर्थ "पिंड के स्थानांतरण" में लिया जाये) साधारणतया भिन्न होती हैं, क्योंकि बल भिन्न पिंडों पर लगे होते हैं।

जब ध्रुववर्ती बर्फ के चट्टान जहाज "चेल्युस्किन" को दाब रहे थे, जहाज की वाह्य दीवारें भी बर्फ को दबा रही थीं। दुर्घटना तो इसलिये हो गयी कि शक्तिशाली बर्फ जहाज के प्रतिरोध को सहन कर गया और जहाज लोहे का होने के बावजूद भी, चूंकि खोखला था, इस बल के आगे झुक गया और पिचक कर टूट गया। ("चेल्युस्किन" को नष्ट करने वाले भौतिकीय कारणों के बारे में सविस्तार पढ़ें पृ. 54 पर)।

यहां तक कि पिंडों का अभिपातन (गिरना) भी प्रतिक्रिया के इस नियम का ठीक-ठीक पालन करता है। सेव के जमीन पर गिरने का कारण यह है कि पृथ्वी सेव को अपनी ओर आकर्षित करती है; पर **ठीक उसी बल से सेव भी हमारी पृथ्वी को अपनी ओर खींचता** है। यदि सच कहा जाये, तो सेव और पृथ्वी दोनों ही एक दूसरे पर गिरते होते हैं, पर अभिपातन का वेग सेव और पृथ्वी के लिये अलग-अलग है। पारस्परिक आकर्षण का बल सेव को $10 \, m/s^2$ का त्वरण संप्रेषित करता है, और वही बल पृथ्वी को – उससे उतना गुना कम, जितना गुना सेव से पृथ्वी का द्रव्यमान अधिक है। पर सेव के द्रव्यमान से पृथ्वी का द्रव्यमान इतना गुना अधिक है कि उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते; अतः पृथ्वी का स्थानांतरण इतना नगण्य होता है कि उसे शून्य मान सकते हैं। इसीलिये "सेव और पृथ्वी एक दूसरे पर गिर रहे हैं" कहने की बजाय हम कहते हैं: सेव पृथ्वी पर गिर रहा है।[1]

श्वेतगिरि-विक्रमबली की मृत्यु

आपने श्वेतगिरि-विक्रमबली[2] के बारे में लोकगाथा सुनी होगी, जो पृथ्वी को हाथों से उठा लेना चाहता था। यदि जनश्रुति का विश्वास किया जाये, तो आर्कमेडिस भी ऐसा पराक्रम दिखाने के लिये तैयार थे; उन्हें सिर्फ उत्तोलक के लिये आलंब-बिंदु की आवश्यकता थी। पर श्वेतगिरि को उत्तोलक की भी आवश्यकता नहीं थी। उसे सिर्फ खोज थी कि क्या पकड़ कर पृथ्वी को उठाया जाये और अपना पराक्रम दिखाया जाये। "पकड़ने को कुछ मिल जाये, तो पृथ्वी उठा लूं"। अवसर मिल गया: विक्रमबली को रास्ते में "कंधे के आर-पार लटकाने वाली बोरी" दिखी, जो "न फटने वाली थी, न हिलने वाली, न उठने वाली"।

उत्तम घोड़े से श्वेतगिरि उतरा
बाहों से दोनों बोरी पकड़ा,

---

[1] प्रतिक्रिया के बारे में और देखें: "मनोरंजक यांत्रिकी", मेरी, अध्याय 1।

[2] रूसी लोक-गाथाओं के एक नायक – स्व्यातोगोर-बगातीर।

उठा लिया बोरी घुटनों तक –
कि धंस गया श्वेतगिरि घुटनों तक,
और गालों पर अब आंसू नहीं,
बहता है रक्त।
श्वेतगिरी जहां धंस गया,
वहीं का वहीं वह रह गया
और वहीं हो गया उसका अंत।

यदि श्वेतगिरी को क्रिया-प्रतिक्रिया का नियम ज्ञात होता, तो वह समझ जाता कि जमीन पर लगाया गया उसका विक्रमी बल अपने तुल्य, अर्थात् उतना ही विक्रमी प्रतिक्रियाशील बल उत्पन्न करेगा, जो उल्टा उसे ही पृथ्वी में धँसा सकता है।

जो भी हो, गाथा से स्पष्ट है कि लोग उस समय भी पृथ्वी की प्रतिक्रिया से अनभिज्ञ नहीं थे; वे जानते थे कि जब पृथ्वी पर टेक लगाया जाता है, तो पृथ्वी प्रतिक्रिया करती है। न्यूटन द्वारा उसकी अमर पुस्तक "प्रकृति-दर्शन के गणितीय आधार" में (प्रकृतिदर्शन उस समय भौतिकी को कहा जाता था) प्रतिक्रिया के नियम की प्रथम घोषणा के हजारों साल पहले से ही लोग अनजाने में इसका उपयोग करते आ रहे हैं।

क्या बिना आलंब के चल सकते हैं?

पैदल चलते वक्त हम पैरों द्वारा जमीन या फर्श पर अड़ कर अपने को आगे की ओर धकेलते हैं; बहुत चिकने फर्श या बर्फ पर पैर हमें आगे धकेलने में असमर्थ होते हैं, इसीलिये वहां चलना असंभव होता है। इंजन चलते वक्त अपने "वाहक" चक्कों द्वारा पटरियों को पीछे धक्के देता है और खुद आगे की ओर धक्के खाता है। यदि पटरियों पर तेल फैला दिया जाये, तो इंजन आगे नहीं बढ़ सकेगा। कभी-कभी (जब जाड़ों में बर्फ की परत हर जगह फिसलनदार हो जाती है) रेल-गाड़ी आगे बढ़ाते रहने के लिये एक विशेष प्रयुक्ति द्वारा पटरियों पर बालू छिड़कते जाते हैं। शुरू-शुरू रेलगाड़ी का जब आविष्कार हुआ था, उसके चक्कों में दाँत लगे होते थे। लोग सोचते थे कि इसके बिना चक्के पटरियों पर गाड़ी को

आगे नहीं धकेल सकेंगे। स्टीमर चक्के की पंखुड़ियों द्वारा अपने को पानी से आगे धकेलता है। हवाई जहाज भी अपने को हवा से आगे धकेलता है इसमें उसका सहायक होता है प्रौपेलर (नोदक)। तात्पर्य यह है कि वस्तु चाहे किसी भी माध्यम में गतिमान हो, वह उस माध्यम पर टेक लगा कर अपने को आगे धकेलती है। पर क्या पिंड अपने बाहर किसी चीज पर टेक लगाये बिना अपने को आगे धकेल सकता है? क्या वह **बिना आलंब के** आगे बढ़ेगा?

प्रतीत होता है कि ऐसी गति प्राप्त करने का अर्थ है अपने को अपनी चुटिया पकड़ कर उठाने का प्रयत्न करना और हमें ज्ञात है कि इसमें अभी तक सिर्फ गपोड़ नबाब म्युनखाउजेन ही सफल हो सके हैं। लेकिन ऐसी असंभव गति भी संभव है; हम अक्सर उसे देखते हैं। यह सही है कि सिर्फ आंतरिक शक्तियों की सहायता से पिंड अपने को **पूर्णरूप से** गतिमान नहीं कर सकता, पर वह अपने द्रव्य के कुछ भाग को एक दिशा में गतिमान कर के स्वयं को विपरीत दिशा में गतिमान कर सकता है। आपने कितनी बार उड़ते हुए राकेट को देखा होगा, पर कभी आपने सोचा है कि वह कैसे उड़ता है? राकेट इसी प्रकार की गति का दृश्यमान उदाहरण है, जिसकी चर्चा हम करने जा रहे हैं।

राकेट क्यों उड़ता है?

भौतिकी का ज्ञान रखने वाले लोग भी अक्सर राकेट की उड़ान का कारण गलत बताते हैं: राकेट उड़ता है, क्योंकि उसके भीतर बारूद के जलने से बनी गैस उसको **हवा से आगे धकेलती रहती** है। पुराने जमाने में यही सोचते थे (राकेट का आविष्कार बहुत पुराना है)। पर यदि राकेट वातहीन व्योम में छोड़ा जाये, तो उसकी उड़ान और अच्छी ही होगी, बुरी नहीं होगी। राकेट की गति का यथार्थ कारण बिल्कुल दूसरा है। क्रांतिकारी किबाल्चिच की डायरी में इस कारण को बड़े ही स्पष्ट व सरल शब्दों में समझाया गया है, जिसे उन्होंने मृत्यु के पहले अपने द्वारा आविष्कृत उड़ने वाली एक मशीन का वर्णन करते हुए लिखा था। युद्ध-राकेटों की बनावट समझाते हुए वे लिखते हैं;

"टिन के खोखले बेलन में, जो एक तरफ से खुला हो और दूसरी तरफ से

बंद हो, एक दूसरा बेलन कस कर भर देते हैं। दूसरे बेलन में बारूद दबी हुई होती है, जिसके बीचों-बीच अक्ष के अनुलंब नाली छुटी रहती है। इस नाली की भीतरी सतहों से बारूद का जलना शुरू होता है और पूरी बारूद के जलने में थोड़ा समय लगता है। दहन से उत्पन्न गैस हर दिशा में दबाव डालती है, पर पार्श्वीय दबाव एक दूसरे को संतुलित कर लेते हैं। सिर्फ पेंदे पर गैस का दबाव विपरीत दबाव द्वारा संतुलित नहीं होता (क्योंकि इस दिशा में गैस के निकलने का रास्ता खुला होता है)। राकेट को यही दबाव आगे धकेलता है।"

तोप से जब गोला छोड़ते हैं, तो यही होता है: गोला आगे भागता है और तोप धक्का खा कर पीछे हटता है। बंदूक या किसी भी दूसरे आग्नेय अस्त्र के साथ यही होता है। यदि तोप हवा में लटका होता और कोई चीज रोकती नहीं, तो गोला छोड़ते ही वह पीछे की ओर चल पड़ता। उसका वेग गोले के वेग से उतना ही गुना कम होता, जितना गुना गोला उससे हल्का होता। जूल वेर्न के उपन्यास "उलट-पलट" में अमेरिकन लोग "पृथ्वी के अक्ष को सीधा करने के लिये" एक विराट तोप के प्रतिनोदन (पीछे की ओर झटका) को ही काम में लाना चाहते थे।

राकेट भी तोप है; अंतर सिर्फ इतना है कि तोप गोले छोड़ता है और राकेट—बारूदी गैस। आतिशबाजी में फुलझड़ियो की घिरनी आपने अवश्य देखी होगी; यह भी इसी कारण से घूमती है: चक्के से लगी नलियों में बारूद के जलने से गैस एक दिशा में निकलती है और नलियों समेत चक्का दूसरी दिशा में घूमने लगता है। दरअसल यह विख्यात भौतिकीय उपकरण सिग्नेट-चक्र का ही बदला हुआ रूप है।

यहां एक दिलचस्प बात बतायी जा सकती है कि स्टीमर के आविष्कार के पहले एक यांत्रिक जहाज की प्रायोजना दी गयी थी, जो इन्हीं बातों पर आधारित थी। प्रायोजना के अनुसार जहाज में पहले से जमा किये गये पानी को पंप द्वारा तेजी से पीछे की ओर निकालने पर जहाज आगे की ओर बढ़ता। स्कूलों में भौतिकी की प्रयोगशाला में इस सिद्धांत को सिद्ध करने के लिये प्रयुक्त तैरने वाले टिन के डिब्बों की तरह ही यह जहाज चलता। रेम्सी की यह प्रायोजना कार्यान्वित नहीं हो सकी, पर स्टीमर के आविष्कार में इस की भी भूमिका रही है; फ्यूल्टन के विचारों को इसी ने प्रेरित किया था।
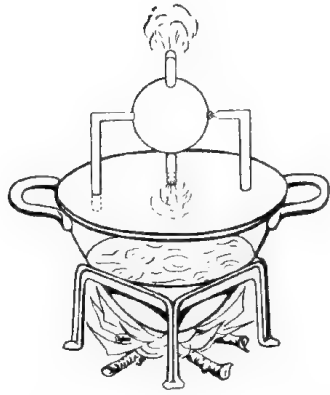
चित्र 7. प्राचीनतम वाष्प-इंजन (टर्बाइन), जिसके अविष्कारक अलेक्जेंड्रिया के हिरोन (II शती ईसा पूर्व) माने जाते हैं।

यह भी ज्ञात है कि प्राचीनतम वाष्प-इंजन ईसा पूर्व दूसरी शती में अलेक्जेंड्रिया के हिरोन द्वारा बनाया गया था और यह भी इसी सिद्धांत पर आधारित था: वाष्प एक नली द्वारा कड़ाह से निकल कर (चित्र 7) गोल बरतन में आता है और वहां से घुटने की तरह मुड़ी नलियों से बाहर निकलते हुए उन्हें पीछे धकेलने लगता है, जिससे गोल बरतन घूर्णन करने लगता है। खेद की बात है कि हिरोन का वाष्प-टर्बाइन उस जमाने में सिर्फ एक कौतूहलपूर्ण खिलौना बना रहा। गुलामों के सस्ते श्रम के कारण मशीनों के व्यावहारिक उपयोग का विचार किसी के दिमाग में नहीं आता था। पर तकनीकी विकास ने इसके सिद्धांत की अवहेलना नहीं की: इसका उपयोग आज प्रतिकारी टर्बाइनों को बनाने में हो रहा है।

वाष्प-इंजन की प्रथम परियोजनाओं में से एक के रचेता न्यूटन भी माने जाते हैं। इसका भी यही सिद्धांत है: चक्कों वाली गाड़ी पर रखे बरतन में से वाष्प एक दिशा में निकलता है और गाड़ी प्रतिनोदन शक्ति से दूसरी (विपरीत) दिशा में चल पड़ती है (चित्र 8)।
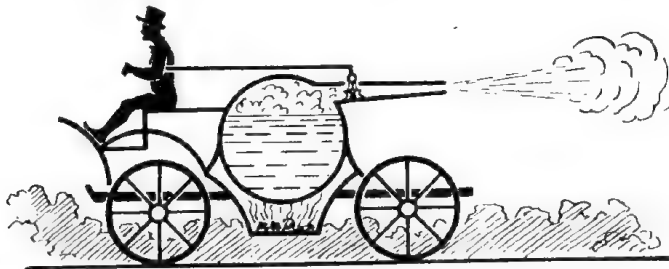
चित्र 8. इस वाष्प-गाड़ी के अविष्कारक न्यूटन माने जाते हैं।
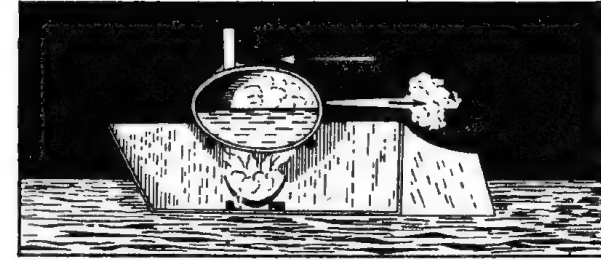
चित्र 9. कागज व अंडे के खोल से बना खिलौना स्टीमर। अंगुश्ताने में ढाला गया स्पिरिट इंधन का काम करता है। वाष्पित्र (छेद किये हुए अंडे के खोल) से निकलने वाला वाष्प स्टीमर को विपरीत दिशा में गति मान करता है।

1928 ई. के पत्र-पत्रिकाओं में राकेटी औटो-गाड़ियों की बड़ी जोर-शोर से खबरें छप रही थीं; उन पर नाना प्रयोग किये जा रहे थे। ये गाड़ियां न्यूटन की बग्गी का ही आधुनिक रूप थीं।

घर बैठे कुछ बनाने में दिलचस्पी रखने वालों के लिये चित्र 9 में इसी नियम पर चलने वाले कागजी जहाज का आरेख दिया जा रहा है: स्पिरिट में भीगी रूई धातु के अंगुश्ताने में रख कर दीया की तरह जला लेते हैं। इसकी लौ से अंडे के खोल में रखे पानी को गर्म करते हैं। वाष्प फुहारे के रूप में एक छेद से निकलने लगताहैऔर प्रतिनोदन के कारण जहाज दूसरी (विपरीत) दिशा में चल पड़ता है। पर इस खिलौने को बनाने के लिये निपुण हाथों की आवश्यकता है।

मसिधर कैसे तैरता है?

"अपना बाल पकड़ कर स्वयं को उठाना" हमारे लिये गलत हो सकता है, पर कई जीवों के लिये चलने का यही साधन है।

मसिधर जैसे अधिकतर शीर्षपादी मृदुपीन पानी में निम्न विधि से चलते हैं:[1] वे पार्श्व की दरार और एक विशेष शंकु से पानी अपने भीतर खींचते

[1] घोंघे, सीप, अष्टभुज (औक्टोपस), आदि जैसे कोमल मांस वाले (मृदुपीन) जीवों में से कुछ के पैर सिर पर होते हैं (शीर्षपादी); इनमें से एक, मसिधर, अपने आक्रामक की आँखों में स्याही झोंकता है।—अनु.
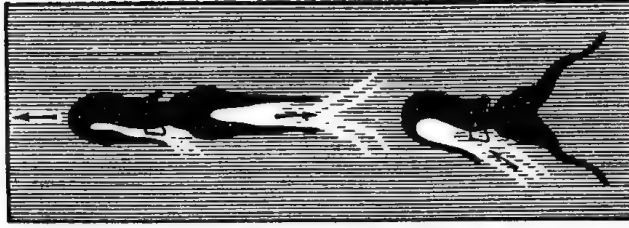
चित्र 10. शीर्षपाद जाति की कटल नामक मछली का तैरना।

हैं और फिर उसी शंकु से पानी तेज धार के रूप में बाहर निकालते हैं। प्रतिक्रिया के नियम के अनुसार इस से उन्हें विपरीत दिशा में धक्का लगता है, जो पीछे की दिशा में तेजी से तैरने के लिये पर्याप्त शक्तिशाली होता है। मसिधर शंकु की नली को किसी भी दिशा में घुमा सकता है और इसीलिये तेजी से पानी छोड़ते हुए किसी भी दिशा में भाग सकता है।

जेली-फिश (मिडूसा) भी इसी नियम के अनुसार चलती है: छाते-से अपने शरीर के नीचे इकत्रित पानी वे अपनी पेशियों का संकोचन कर के निकालती हैं, जिससे उन्हें विपरीत दिशा में धक्का मिलता है। व्याघ्र पतंग आदि के डिंभक (लार्वा) और कई अन्य जलवासी जीव इसी युक्ति से तैरते हैं। और हमें संदेह हो रहा था कि इस प्रकार भी चला जा सकता है!

राकेट में सितारों की ओर[1]

इससे बढ़ कर मोहक बात और क्या होगी कि पृथ्वी से दूर असीम ब्रह्मांड की यात्रा की जाये; पृथ्वी से चांद की ओर एक ग्रह के बाद दूसरे ग्रह की उड़ान भरी जाये? इस विषय पर कितने काल्पनिक उपन्यास लिखे जा चुके हैं। नक्षत्रों की काल्पनिक यात्रा से किसने हमारा मन मोहने की कोशिश नहीं की! वोल्टेर ने अपने "माइक्रोमेगास" में, जूल वेर्न ने "चंद्र-यात्रा" व "हेक्टर सेर्वादाक" में, वेल्स ने "चांद पर प्रथम लोग" और उनकी देखा-देखी करने वाले अनेक अन्य लेखकों ने कल्पना में ही सही, पर कितनी रोचक यात्रायें की हैं नभ में ज्योतिबिंदुओं की।

क्या आदिकाल से चले आ रहे सपनों को सच करने की कोई संभावना नहीं है? उपन्यासों में इतनी मोहक सत्यता से वर्णित एक से एक बुद्धिमान परियोजनाएं क्या सचमुच में पूरी नहीं होने वाली हैं? आगे चल कर हम अंतर्ग्रही यात्राओं की काल्पनिक परियोजनाओं पर और भी चर्चा करेंगे, पर अभी आपका परिचय कराते हैं ऐसी यात्राओं की एक यथार्थ परियोजना से, जो रूसी वैज्ञानिक त्सियलकोव्स्की द्वारा प्रस्तुत की गयी है।

क्या हवाई जहाज पर चांद तक उड़ा जा सकता है? बिल्कुल नहीं: हवाई जहाज और नियंत्रणीय गुब्बारे आदि के उड़ने का कारण हवा की मौजूदगी है; वे हवा में टिके रहते हैं, उससे धक्के खा कर आगे बढ़ते हैं। पर पृथ्वी और चांद के बीच हवा नहीं है। अंतरिक्ष में माध्यम इतना घना नहीं है, जिस पर "अंतर्ग्रही गुब्बारे" टिक सकें। इसका मतलब है कि हमें कोई ऐसा उपकरण सोच निकालना चाहिये, जो बिना किसी आलंबी माध्यम के ही गतिमान व नियंत्रित हो सके।

खिलौने के रूप में ऐसे उपकरण से हम परिचित हो चुके हैं। इसका नाम है राकेट। एक इतना बड़ा राकेट क्यों न बना लिया जाये, जिसमें लोगों के रहने के लिये अलग जगह हो, खाद्य-सामग्रियों का भंडार हो, जिसमें हवा भरे बैलून और अन्य सभी आवश्यक वस्तुएं रखी जा सकें? कल्पना कीजिये कि लोग ऐसे एक राकेट में इंधन का बहुत बड़ा भंडार साथ रखते हैं और बारूदी गैस के निकलने की दिशा इच्छानुसार बदल सकते हैं। आपके पास एक वास्तविक नियंत्रणीय अंतरिक्ष यान होगा, जिसमें

[1] 1957 ई. में अंतरिक्षी युग के आगमन के बाद से जिन युवा पाठकों ने होश सम्हाला है (या जिनका जन्म हुआ है), उन्हें या. इ. पेरेलमान द्वारा अंतर्ग्रही यात्रा के विचारों का प्रचार आज थोड़ा बालसुलभ लग सकता है, क्योंकि अब स्वचालित अंतरिक्ष-यान निकटवर्ती ग्रहों की उड़ान भर रहे हैं, चांद की मिट्टी जमीन पर भेज रहे हैं, लगभग हरदिन कृत्रिम उपग्रह भेजे जा रहे हैं, आदमी चांद पर उतर चुका है, आदि आदि। पर हम इस भाग को पुस्तक में ही रहने दे रहे हैं, क्योंकि यह इतिहास के दृष्टि-कोण से दिलचस्प है: या. इ. पेरेलमान अंतरिक्षी उड़ान के अथक प्रचारकों में से एक थे। —संपादक.

3-567

चित्र 11. राकेटनुमा अंतर्ग्रही विमान : एक योजना।

आप अथाह ब्रह्मांड में भ्रमण कर सकेंगे; चांद, ग्रहों... आदि की सैर कर सकेंगे। यात्री विस्फोटक्रिया को नियंत्रित कर सकेंगे और इस प्रकार से अंतर्ग्रही यान का वेग आवश्यकतानुसार धीरे-धीरे बढ़ा-घटा सकेंगे, ताकि उनके स्वास्थ्य पर असर न पड़े। मर्जी होने पर वे यान की दिशा मोड़ते हुए उसे धीमा कर के किसी भी ग्रह पर उतर सकेंगे। और अंत में, इसी विधि द्वारा वे वापस पृथ्वी पर लौट सकेंगे।

स्मरण करें की अभी हाल ही में जन्मा विमानन किस प्रकार शिशु की भाँति चलना सीख रहा था। आज हवाई जहाज ऊँचे हवा में मंडराते हैं, पहाड़ों, मरुभूमियों, महादेशों और महासागरों को भी लांघने में समर्थ हैं। शायद सितारों की यात्रा का भी ऐसा ही उज्वल भविष्य हो? शायद भावी 20-30 वर्षों में ही अंतरिक्ष-यात्रा का विकास ऐसी सफलता प्राप्त कर ले? तब इतने दिनों तक मानव को उसके सगे ग्रह के साथ बांध कर रखने वाले अदृश्य बंधन टूट जायेंगे और वह ब्रह्मांड की असीम गहराइयों में कुद पड़ेगा।

अध्याय 2

बल.कार्य.घर्षण

हंस, झींगा और रोहू

यह कहानी सभी जानते होंगे कि कैसे हंस, झींगा (चिंगट) और रोहू मिल कर सामान से लदी गाड़ी खींच रहे थे। पर यांत्रिकी के दृष्टि-कोण से शायद ही किसी ने इस आख्यायिका पर ध्यान दिया होगा। नीति-कथाकार क्रिलोव ने जो निष्कर्ष दिया था, यांत्रिकी उससे बिल्कुल भिन्न निष्कर्ष देती है।

हमारे सामने किन्हीं कोणों पर परस्पर झुके तीन बलों को जोड़ने की समस्या है, जिसे अक्सर यांत्रिकी में हल करना पड़ता है। कथा में बलों की दिशायें निम्न शब्दों में बतायी गयी हैं:

...हंस उड़ता बादलों को,
चिंगट खिसक रहा है पीछे,
और मछली रही तान पानी में।

इसका अर्थ है (चित्र 12) कि एक बल (हंस की खींच) ऊपर की ओर क्रियाशील है; दूसरा, मछली का बल (OB), बगल की ओर लग रहा है; तीसरा, चिंगट का (OC), – पीछे की ओर। यह नहीं भूलें कि एक चौथा बल भी लग रहा है – गाड़ी का भार, जो उदग्र अधोमुखी है। कथा के अनुसार "गाड़ी अब भी वहीं है," अर्थात् गाड़ी पर क्रियाशील सभी बलों का परिणामी बल शून्य के बराबर है।

क्या यह सत्य है? बादलों की ओर उन्मुख हंस चिंगट व मछली के कार्य में बाधक नहीं है, वह उनकी सहायता ही कर रहा है: उसका बल गुरुत्व बल की विपरीत दिशा में लगा है, अतः वह जमीन और अक्ष के साथ चक्कों के घर्षण के बल को कम कर रहा है; वह गाड़ी के भार को कम कर रहा है, या हो सकता है कि उसे पूरी तरह से संतुलित कर रहा
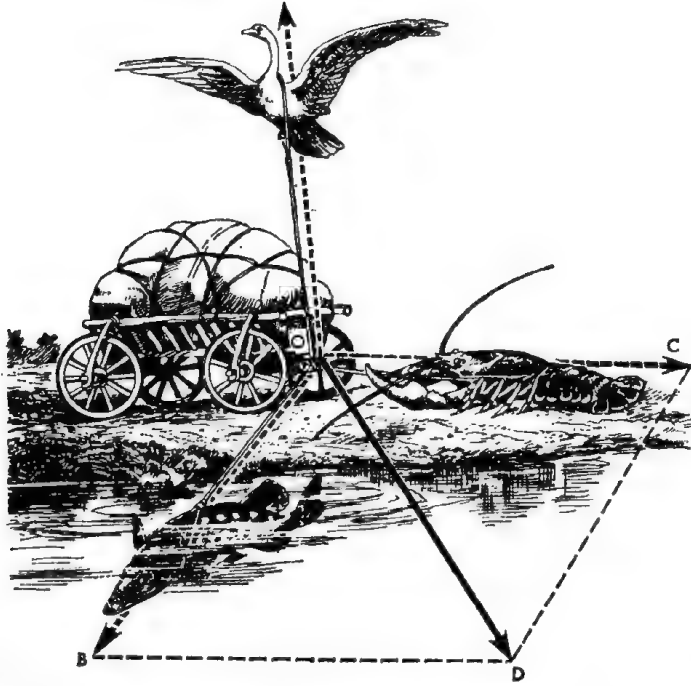
चित्र 12. झींगे, मछली और हंस के प्रश्न का यांत्रिकीय हल। परिणामी बल (*OD*) गाड़ी को नदी में खींच ले जायेगा।

है, क्योंकि गाड़ी का बोझ कुछ ज्यादा नहीं है (कथा के अनुसार "बोझ उनके लिये काफी हल्का होता")। यदि सरलता के लिये मान लें कि आखिरी स्थिति ही सत्य है (हंस का खिंचावबल और गाड़ी का भार एक दूसरे को संतुलित कर रहे हैं), तो हम देखते हैं कि सिर्फ दो बल बच जाते हैं – मछली और चिंगट के। इन बलों के बारे में कथाकार लिखता है कि "चिंगट खिसक रहा पीछे, और मछली रही तान पानी में"। जाहिर है कि पानी गाड़ी के सामने नहीं, कहीं बगल में था (क्रिलोव के ये परिश्रमी जीव गाड़ी को पानी में डुबाने के लिये ही थोड़े जमा हुए थे!)। इसका मतलब है कि मछली और चिंगट के बलों की दिशा परस्पर

कोई कोण बना रहे थे। यदि बल एक सरल रेखा पर क्रियाशील नहीं हैं, तो उनका परिणामी बल कभी भी शून्य के बराबर नहीं हो सकता।

यांत्रिकी के नियम के अनुसार दोनों बलों *OB* तथा *OC* पर एक समांतर चतुर्भुज बनायें। उसका कर्ण *OD* परिणामी बल की दिशा व मात्रा द्योतित करेगा। स्पष्ट है कि यह परिणामी बल गाड़ी को जरूर खींच ले जायेगा; विशेषकर उस स्थिति में, जब हंस उसके भार को अंशतः या पूर्णतः संतुलित कर रहा है। यह प्रश्न और है: किधर खींच ले जायेगा – आगे, पीछे या बगल की ओर? यह इन दो बलों के अनुपात और उनके बीच के कोण की मात्रा पर निर्भर करता है।

जिन पाठकों को बलों के संघटन व विघटन का थोड़ा-बहुत अभ्यास है, वे आसानी से देख सकते हैं कि यदि हंस का बल गाड़ी के भार को संतुलित नहीं भी करता है, तो भी गाड़ी अपने स्थान पर अचल नहीं खड़ी रह सकती। सिर्फ एक स्थिति है, जिसमें इन तीन बलों की क्रिया से भी गाड़ी रुकी रहेगी: यदि चक्कों का अक्ष व सड़क के साथ घर्षण काफी बड़ा हो, इतना बड़ा कि सभी तीन बलों के परिणामी से अधिक हो। पर यह बात कहानी के तथ्य के विरुद्ध है। कहानी में कहा गया है कि "बोझ उनके लिये कहीं हल्का होता"।

हर हालत में क्रिलोव विश्वास के साथ नहीं कह सकते थे कि "गाड़ी अभी भी नहीं चली", "गाड़ी अब भी वहीं है", आदि। वैसे, इन बातों से आख्यायिका से मिलने वाली शिक्षा पर कोई असर नहीं पड़ता।

क्रिलोव के विपरीत

हमने अभी-अभी देखा कि क्रिलोव की शिक्षा – "जब मित्रों में मेल नहीं, काम बेढंगा होगा" – यांत्रिकी में सदा खरी नहीं उतरती। बल एक दिशा में नहीं भी लग सकते हैं, पर इसके बावजूद भी कोई न कोई फल दे सकते हैं।

बहुत कम लोग जानते होंगे कि हृदय से परिश्रम करने वाली चींटियां, जिनका आदर्श श्रमिकों के रूप में इन्हीं क्रिलोव ने इतना महिमा-गान किया है, मिल-जुल कर इसी विधि से काम करती हैं, जिसकी आख्यायिकाकार ने हँसी उड़ायी थी। पर उनका काम ढंग से ही चलता है। मदद करता है

चित्र 13. कीड़े को चींटियां किस प्रकार घसीटती हैं।

यहां पर वही : बल-संयोजन का नियम। यदि चींटियों को उनके काम करते वक्त ध्यान से देखेंगे, तो आप मान लेंगे कि उनकी समझदारी भरी सहकारिता मात्र मिथक है। वास्तविकता में हर चींटी सिर्फ अपने लिये काम करती है; दूसरे की सहायता करने को सोचती भी नहीं।

एक जीवशास्त्री चींटियों के काम का वर्णन इस प्रकार से करते हैं: [1]

"यदि शिकार काफी बड़ा है और उसे अच्छी चौरस जमीन पर दसियों चींटियां खींच रही हैं, तो सब एक ही तरह से कार्यरत हैं और सहकारिता का आभास मिलता है। लेकिन शिकार – मान लें कि कोई कीड़ा – मार्ग में घास या कंकड़ जैसी किसी चीज से फँस जाता है। अब सीधा आगे नहीं घसीटा जा सकता, उसे घूमा कर ले जाना चाहिये। यहां पर बिल्कुल स्पष्टता के साथ दिख जाता है कि हर चींटी अपने साथी से कोई सलाह-मशविरा किये बगैर समस्या हल करने के लिये खुद खींच-तान शुरू कर
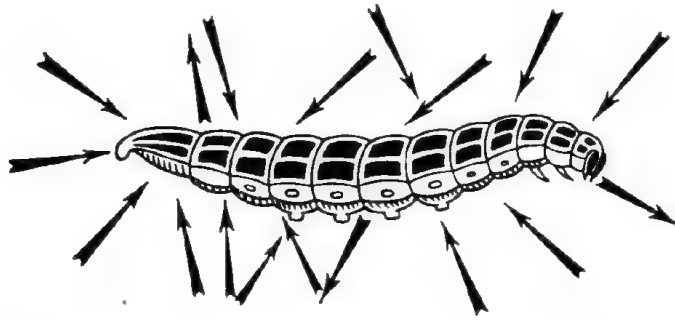
चित्र 14. चींटियां अपने शिकार को किस प्रकार खींचती हैं। तीरों द्वारा अलग-अलग चींटियों का प्रयत्न द्योतित किया गया है।

[1] ये. येलाच, "अंतर्वृत्ति"।

देती है। एक बायें खींचती है, दूसरी दायें; एक आगे, तो दूसरी पीछे। बार-बार जगह बदलती हैं, एक जगह छोड़ कर दूसरी जगह कीड़े को पकड़ती हैं, और हरेक अपनी मर्जी के अनुसार उसे खींचती या धकेलती रहती है। इसी चक्कर में कभी ऐसा भी हो जाता है कि कीड़े को एक तरफ से (उदाहरणार्थ) चार चींटियां खींचने लगती हैं और दूसरी ओर से छे, तो अंततोगत्वा कीड़ा उस ओर घिसटने लगता है, जिधर छे चींटिया लगी हैं।"

चित्र 15. तीर A की दिशा में स्थित मांद तक पनीर के टुकड़े को घसीटने के लिये चींटियों का प्रयत्न।

एक और उदाहरण (किसी दूसरे अन्वेषक से लिया गया) प्रस्तुत करते हैं, जिससे चींटियों की यह मिथ्या सहकारिता और भी स्पष्ट हो जाती है। चित्र 15 में पनिर का एक आयताकार टुकड़ा दिखाया गया है, जिसे 25 चींटियां पकड़ कर खींच रही हैं। पनीर मंद गति से तीर A की दिशा में बढ़ रहा है। आप सोच सकते हैं कि आगे की चींटियां पनीर को अपनी ओर खींच रही हैं, पीछे की – उसे आगे धकेल रही हैं और बगल की चींटियां दोनों की ही मदद कर रही हैं। पर आसानी से देखा जा सकता है कि बात ऐसी नहीं है: एक चाकू लीजिये और पनीर की पिछली किनारी (लंबाई के अनुतीर) काट कर अलग कर दीजिये। आगे वाला टुकड़ा और जल्दी से आगे बढ़ने लगेगा और कटी किनारी पीछे की ओर खिंचने लगेगी। स्पष्ट है कि पीछे से लगी 11 चींटियां पनीर को पीछे ही खींच रही थीं, आगे नहीं धकेल रही थीं। हरेक चींटी की कोशिश यही थी कि पनीर को इस प्रकार से घुमा लिया जाये कि उसे खींच कर पीछे चलते हुए मांद तक पहुँचा जा सके। इसका अर्थ है कि पीछे की चींटियां आगे वाली चींटियों की मदद नहीं कर रही थीं, बल्कि उल्टा, उनके प्रयत्नों को नष्ट करते हुए दिल लगा कर उन्हें बाधा पहुँचा रही थीं। पनीर के इस टुकड़े को खींच ले जाने के लिये चार चींटिया ही काफी थीं, पर बिना सहमति के काम करने का फल यह हुआ कि 25 चींटियों को लगना पड़ा।

चींटियों के सहकारी श्रम की इस विशेषता पर बहुत पहले मार्क ट्वेन

ने भी ध्यान दिया था। वे दो चींटियों के मिलने की एक घटना का वर्णन करते हैं (एक चींटी के पास टिड्डे की एक टांग थी): "दोनों ही टांग के दोनों सिरों को पकड़ लेती हैं और सारी शक्ति से अपनी-अपनी ओर विपरीत दिशाओं में खींचने लगती हैं। दोनों को ही महसूस हो जाता है कि काम में कोई गड़बड़ी है, पर क्या – यह उनकी समझ में नहीं आता। दोनों में तू-तू मैं-मैं शुरू हो जाती है; बहस मार-पीट में परिणत हो जाती है... फिर मेल हो जाता है, और फिर से वही अर्थहीन सम्मिलित श्रम शुरू हो जाता है। मार-पीट में घायल चींटी दूसरी के काम में सिर्फ बाधा ही डालती है। स्वस्थ चींटी सारी शक्ति से शिकार घसीटती चल पड़ती है और साथ-साथ घायल चींटी को भी घसीट ले जाती है। घायल चींटी काम छोड़ देने की बजाय शिकार से लटकी रहती है।" ट्वेन मजाक ही मजाक में बिल्कुल सही बात कहते हैं कि "चींटियां सिर्फ तभी अच्छी तरह से काम करती हैं, जब कोई अनाड़ी प्रकृति-वैज्ञानिक उनके काम का अवलोकन करता है और इन अवलोकनों से गलत-सलत निष्कर्ष निकालता है।"

क्या अंडे के खोल को तोड़ना सरल है?

"मृत कृषि-दास" के कीफा मकीयेविच अपनी कुशाग्र बुद्धि जिन दार्शनिक प्रश्नों पर खर्च करते थे, उनमें एक यह भी था: "और यदि हाथी अंडे से पैदा होता, तो ऐसे अंडे का खोल काफी मोटा होता – तोप के गोले से भी नही टूटता; उसके लिये शायद कोई दूसरा आग्नेयास्त्र ढूंढ़ना होगा"।

गोगल के इस दार्शनिक पात्र के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता, यदि उसे बताया जाता कि साधारण अंडे के खोल को भी तोड़ना इतना सरल नहीं है। वह काफी पतला होता है, पर इतना कोमल नहीं होता। उसके दोनों सिरों को हथेलियों से अड़ा कर उसे दबाने के लिये, कि वह टूट जाये, कुछ कम बल की आवश्यकता नहीं पड़ती है।[1] अंडे के खोल की यह असाधारण मजबूती सिर्फ उसके उत्तल

[1] इस प्रयोग में एक खतरा है, जिससे बचने का उपाय कर लेना चाहिये – खोल के नुकीले टुकड़े हथेली में चुभ जा सकते हैं।
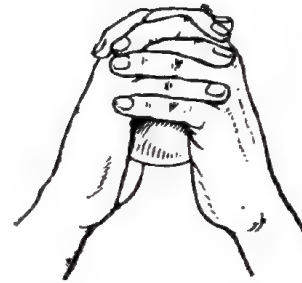
चित्र 16. इस विधि से अंडे को तोड़ने के लिये काफी बल की आवश्यकता है।
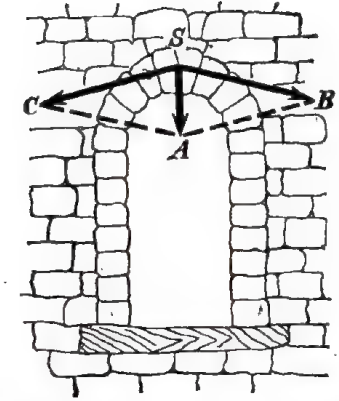
चित्र 17. मेहराब की मजबूती का कारण।

रूप पर निर्भर करती है। मकानों में मेहराबी बनावटों की मजबूती का यही कारण है।

चित्र 17 में खिड़की पर एक छोटा सा मेहराब दिख रहा है। बोझ S (अर्थात् ऊपरी ईंटों का भार) मेहराब के मध्य में स्थित शंक्वाकार ईंट को तीर A द्वारा द्योतित बल से नीचे दबाता है। पर यह ईंट नीचे नहीं गिर सकती, क्योंकि उसका आकार शंकु जैसा है। वह सिर्फ अगल-बगल के ईंटो पर दबाव डालती है। समांतर चतुर्भुज के नियम से बल A दो बलों में विघटित होता है, जिसे चित्र में तीर C व B द्वारा द्योतित किया गया है। ये बल पड़ोसी ईंटों के प्रतिरोध द्वारा संतुलित हो जाते हैं। ये पड़ोसी ईंट भी बगल के ईंटों द्वारा दबी रहती हैं। अतः मेहराब पर ऊपर से क्रियाशील बल उसे तोड़ नहीं सकता। पर उसे बहुत आसानी से तोड़ा जा सकता है, यदि उस पर नीचे (भीतर) से आक्रमण किया जाये। कारण स्पष्ट है: ईंटों का शंक्वाकार उन्हें नीचे नहीं गिरने देता, पर उनके ऊपर उठने में कोई बाधा नहीं डालता।

अंडे का खोल भी ऐसा ही मेहराब है। फर्क इतना है कि वह व्योम मेहराब है। **बाहर से** दबाव डालने पर वह इतनी आसानी से नहीं टूटता,

जितनी लोग ऐसी कमजोर वस्तु से आशा करते हैं। चार कच्चे अंडों पर काफी भारी टेबुल को रखा जा सकता है, यदि अंडों के सिरों को पेरिस-प्लास्टर लगा कर थोड़ा चौड़ा कर दिया जाये (कठोर चूने के बने खोल के साथ प्लास्टर सरलतापूर्वक चिपक जाता है)। इससे टेबुल को स्थिरता प्रदान की जा सकती है।

अब आप समझते होंगे कि मुर्गी जब सेने के लिये बैठती है, उसके भार से अंडे के टूटने का डर बिल्कुल नहीं रहता। और दूसरी ओर से, चुजे को जब अपनी प्राकृतिक कैद से निकलने की इच्छा होती है, तो भीतर से सरलतापूर्वक अंडे के कवच को तोड़ कर निकल आता है।

चम्मच की किनारी से ठोक कर अंडा फोड़ना बहुत आसान लगता है, इसीलिये हमें संदेह नहीं होता कि नैसर्गिक परिस्थितियों में अंडे पर पड़ने वाले दबावों के लिये उसका खोल कितना मजबूत होता है और उसके भीतर पलने वाले जीव के लिये प्रकृति ने कितना विश्वस्त कवच बनाया है।

विद्युत-बल्ब कमजोर लगते हैं, पर उनकी मजबूती का राज वही है, जो अंडे के खोल की मजबूती का। उनकी मजबूती पर आप और भी आश्चर्य करेंगे, यदि आप को याद दिला दूँ कि बहुत सारे प्रकार के बल्ब बिल्कुल खाली होते हैं (बात निर्वात बल्बों की चल रही है, गैसीय की नहीं) और वाह्य वातावरण के दबाव का प्रतिकार करने के लिये भीतर कुछ भी नहीं होता। बल्ब पर हवा का कोई कम दबाव नहीं पड़ता। 10 cm की चौड़ाई वाले बल्ब पर दोनों ओर से 75 kg का (आदमी के भार से अधिक) बल लगता है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध होता है कि निर्वात बल्ब इससे 2.5 गुना अधिक दबाव सह सकते हैं।

हवा के विरुद्ध पाल

पाल वाला जहाज हवा के विरुद्ध कैसे चलता है, इसकी कल्पना करना कठिन है। वैसे नाविक कहते हैं कि हवा के ठीक विपरीत नहीं चला जा सकता। पाल-जहाज को हवा के बहाव के साथ न्यून कोण बनाते हुए चलना पड़ता है। पर यह कोण अत्यंत छोटा है (समकोण के एक चौथाई अंश के बराबर है), अतः समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है: हवा के बहाव के साथ 22° का कोण बनाते हुए भी उसके विपरीत चलना संभव नहीं लगता।
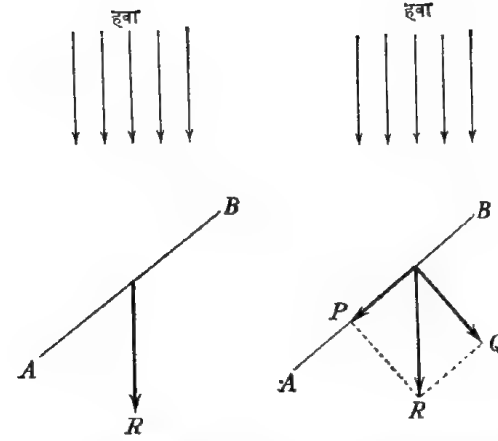
चित्र 18. हवा पाल को हमेशा उसकी सतह के अभिलंब धकेलती है।

यह कोण कम लगता है, पर व्यवहारतः यह नगण्य नहीं है और इसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि हवा के विरुद्ध चलने में उसी की शक्ति का उपयोग करना हो, तो उसके बहाव की दिशा के साथ इतना कम कोण बनाते हुए चलना ही श्रेष्ठ है। यहां हम इसी बात को दिखाने की कोशिश करेंगे। पहले यह देखें कि हवा पाल को प्रभावित किस प्रकार करती है, अर्थात् जब पाल को हवा के झोंके लगते हैं, तो किस दिशा में वह धक्के खाता है। आप शायद सोचते होंगे कि हवा जिस दिशा में बहती है, पाल को उसी दिशा में धक्के देती है। पर बात ऐसी नहीं है: हवा किसी दिशा में क्यों न बह रही हो, वह पाल को उसके तल के अभिलंब धकेलती है। मान लें कि हवा चित्र 18 में दर्शित तीरों की दिशा में बह रही है। *AB* रेखा पाल को द्योतित कर रही है। पाल के पूरे तल पर हवा का दबाव समरूप होता है, अतः इस दबाव को बल *R* द्वारा प्रतिस्थापित किया जा सकता है, जो पाल के मध्य में क्रियाशील है। इस बल को दो बलों *P* और *Q* में विघटित करते हैं। *Q* पाल के अभिलंब है और *P* पाल के समांतर क्रियाशील है (चित्र 18, दायें)। अंतिम बल *P* पाल को किसी भी दिशा में नहीं धकेलता, क्योंकि कपड़े और हवा के बीच घर्षण नगण्य है। सिर्फ बल *Q* रह जाता है, जो पाल को उसके अभिलंब धकेलता होता है।
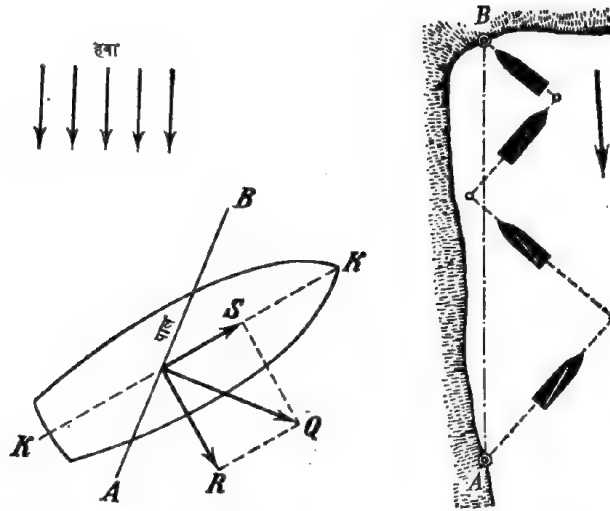
चित्र 19. पाल से हवा के विपरीत जाना।
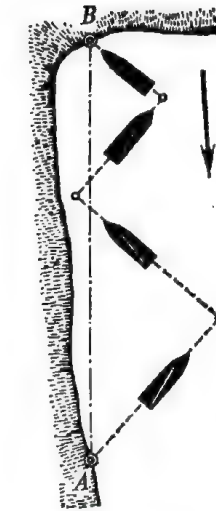
चित्र 20. पाल वाले जहाज की चाल।

यह जान लेने के बाद हम आसानी से समझ जायेंगे कि हवा के साथ न्यून कोण बनाते हुए पाल-जहाज उसके विपरीत कैसे चल सकता है। मान लें कि रेखा KK (चित्र 19) जहाज की लंबाई के अनुतीर है। हवा इस रेखा के साथ न्यून कोण बनाती हुई तीरों की दिशा में बह रही है। AB रेखा पाल को द्योतित करती है। उसकी स्थिति ऐसी होती है कि उसका तल हवा बहने की दिशा और जहाज के बीच के कोण को समद्विभाजित करता है। चित्र 19 में बल के विघटन पर ध्यान दें। पाल पर हवा के कुल दबाव को बल Q द्वारा दर्शाते हैं, जो पाल के अभिलंब है। इसे दो बलों R व S में विघटित करते हैं: बल R जहाज के अभिलंब है और बल S जहाज के अनुतीर क्रियाशील है। चूँकि R की दिशा में जहाज की गति को पानी अवरोधित करता है (पाल-जहाज का निचला भाग पानी में काफी नीचे डूबा रहता है), इसलिये R लगभग पूरी तरह पानी के प्रतिरोध द्वारा संतुलित हो जाता है। सिर्फ बल S बच जाता है, जो आगे की ओर क्रियाशील है और जहाज को हवा के विपरीत एक छोटे कोण पर धकेलता

रहता है।[1] साधारणतया जहाज को चित्र 20 में दिखाये गये टेढ़े-मेढ़े पथ पर चलाया जाता है। नाविकों की बोल-चाल में इसे "पैंतरेबाजी" कहते हैं।

आर्कमेडिस पृथ्वी उठा लेता या नहीं?

"आलंब-बिंदु दीजिये और मैं पृथ्वी को उठा लूंगा!" – लोग कहते हैं कि ये शब्द प्राचीन काल के महान यंत्रवेत्ता आर्कमेडिस के हैं, जिसने उत्तोलकों के नियम की खोज की थी। प्लुटार्क की एक रचना में आप पढ़ सकते हैं – "एक बार आर्कमेडिस ने सिराकुज के राजा हियेरोन को, जो उसका मित्र और सगोत्र था, लिखा कि इस बल से कोई भी भार उठाया जा सकता है। प्रमाणों के जोश में आकर उसने यह भी जोड़ दिया कि यदि एक और पृथ्वी होती, तो उस पर जाकर वह हमारी पृथ्वी को उठा लेता।"

आर्कमेडिस जानता था कि यदि उत्तोलक का व्यवहार किया जाये, तो ऐसा कोई बोझ नहीं है, जिसे क्षीण से क्षीण बल द्वारा भी नहीं उठाया जा सकता। इस बल को उत्तोलक के लंबे भाग पर लगाते ही उसका छोटा भाग बोझ पर प्रभाव डालने लगेगा। इसी लिये वह सोचता था कि यदि उत्तोलक के अत्यंत बड़े भाग पर जोर लगाया जाये, तो हाथ की शक्ति से ऐसा बोझ उठाया जा सकता है, जिसका द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान के बराबर हो।[2]

लेकिन यदि प्रचीन युग के महान यंत्रवेत्ता को मालूम होता कि पृथ्वी का द्रव्यमान कितना बड़ा है, तो शायद वह ऐसा वादा नहीं करता। क्षण भर को मान लें कि आर्कमेडिस को "दूसरी पृथ्वी" (अर्थात् आलंब-बिंदु), जिसे वह ढूँढ़ रहा था, मिल गयी है। यह भी मान लें कि उसने आवश्यक

---

[1] यह सिद्ध किया जा सकता है कि बल S का मान तब अधिकतम होता है, जब पाल का तल जहाज और हवा के बीच के कोण को समद्विभाजित करता है।

[2] समस्या को सही रूप देने के लिये "पृथ्वी को उठाना" शब्दों को कुछ दूसरे अर्थ में लेना चाहिये: पृथ्वी-तल पर हमारे ग्रह के द्रव्यमान के बराबर द्रव्यमान वाले बोझ को उठाना।
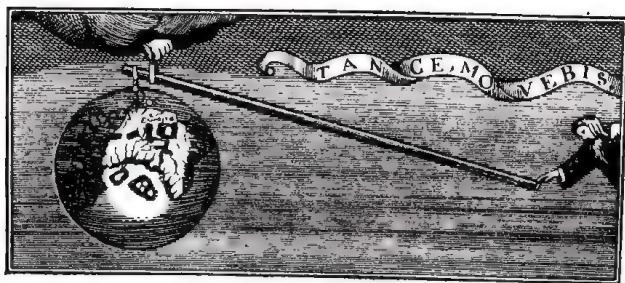
चित्र 21. "आर्कमेडिस उत्तोलक से पृथ्वी उठा रहे हैं" वैरीनियन (1787) द्वारा लिखित यांत्रिकी की पुस्तक से।

लंबाई का उत्तोलक भी तैयार कर लिया है। आप जानते हैं कि पृथ्वी के बराबर द्रव्यमान वाले बोझ को सिर्फ एक सेंटीमीटर उठाने में आर्कमेडिस को कितना समय लगेगा? ज्यादा नहीं, सिर्फ दस खरब वर्ष!

विश्वास करें। खगोलशास्त्रियों को पृथ्वी का द्रव्यमान ज्ञात है;[1] पृथ्वी पर इतने द्रव्यमान वाले पिंड का भार होता लगभग

6 000 000 000 000 000 000 000 टन।

यदि कोई आदमी हाथों से सिर्फ 60 kg उठा सकता है, तो इतने बड़े पिंड को उठाने के लिये उसे ऐसे उत्तोलक का सहारा लेना पड़ता, जिसका बड़ा भाग छोटे से अधिक होता

100 000 000 000 000 000 000 000 गुना!

साधारण कलन से यह दिखाया जा सकता है कि उत्तोलक के छोटे भाग के सिरे को 1 cm उठाने के लिये दूसरे सिरे को ब्रह्मांड में एक विशाल चाप पर चलाना होगा, जिसकी लंबाई होगी

1 000 000 000 000 000 000 km.

पृथ्वी को सिर्फ 1 cm "उठाने" के लिये उत्तोलक पर जोर लगाने

[1] यह कैसे ज्ञात किया जाता है, इसके बारे में दे. "मनोरंजक खगोल-शास्त्र"।

वाले हाथ को इतनी बड़ी कल्पनातीत दूरी तय करनी पड़ेगी! कितना समय लगेगा इसमें? यदि मान लें कि आर्कमेडिस 60 kg का बोझ एक सेकेंड में 1 m उठा सकता था (पूरी एक अश्व-शक्ति की कार्य क्षमता है यह!), तो पृथ्वी को 1 cm "उठाने" के लिये उसे लगते

1 000 000 000 000 000 000 000 सेकेंड,

या तीन सौ खरब वर्ष! अपने लंबे जीवन-काल में आर्कमेडिस पृथ्वी को महीन से महीन बाल की मुटाई जितना ऊँचा भी नहीं उठा सकता...

यह प्रतिभावान आविष्कारक इस अवधि को किसी भी उपाय से पर्याप्त रूप से कम नहीं कर पाता। यांत्रिकी के "स्वर्ण नियम" के अनुसार किसी भी मशीन में बल-लाभ के साथ-साथ स्थानांतरण-दीर्घता के कारण समय का नुकसान अवश्यंभावी है। यदि आर्कमेडिस सबसे बड़ी क्षिप्रता, जो प्रकृति में संभव है, — प्रकाश के वेग 300 000 km प्रति सेकेंड — से भी हाथ घुमाता, तो इस कल्पनातीत स्थिति में भी पृथ्वी को 1 cm "उठाने" में उसे सौ लाख से भी अधिक वर्षों तक काम करना पड़ता।

जूल वेर्न का भीम और ऐलर का सूत्र

आप को जूल वेर्न के हट्टे-कट्टे भीमकाय मैटिफ की याद है? विशाल कद के अनुपात में उसका सर भी काफी बड़ा था; छाती लुहार की भाँथी जैसी थी; पैर शहतीरों की तरह थे; हाथ भार उठाने वाले क्रेन की तरह और मुट्ठियां हथौड़े जैसी थीं... "उपन्यास" मैटियस सैंडोर्फ" में उसकी जिन वीर-गाथाओं का वर्णन किया गया है, उनमें से आपको एक किस्सा अवश्य याद होगा, जब वह निर्माण स्थल से पानी की ओर फिसलते जहाज "त्राबाकोलो" को अपने बाहुबल से खींच कर रोक लेता है। जहाज बिल्कुल नया था और उसे पहली बार पानी में छोड़ा जा रहा था।

उपन्यासकार इस कारनामे का वर्णन यूँ करता है:

"जहाज पार्श्वीय शिकंजों से छूट चुका था और नत चबूतरे पर फिसलता हुआ समुद्र में छूटने को तैयार था। सिर्फ रस्सा हटाने की देर

थी कि जहाज फिसल पड़ता। करीब आध दर्जन मिस्त्री जहाज की पेंदी के पास लगे हुए कुछ तैयारी कर रहे थे। दर्शकों की भीड़ उत्सुकतापूर्वक खड़ी देख रही थी। इसी बीच घाट के बगल से निकल कर एक विहार-नौका सामने आ गयी। बंदरगाह तक पहुँचने के लिये उसे त्राबाकोलो के छूटने की जगह के सामने से गुजरना था। जैसे ही उसने अपने आने की सीटी बजायी, दुर्घटना के डर से जहाज के उद्घाटन को कुछ देर के लिये स्थगित कर दिया गया। यदि नौका के पार्श्व में इतने बड़े जहाज का इतने वेग से धक्का लगता, तो नौका को खत्म ही हो जाना था। सभी इंतजार करने लगे कि नौका कब नहर में प्रवेश कर जाती है।

मिस्त्रियों ने ठोक-पीट बंद कर दी। सभी की आँखे इस भव्य पोत पर लगी हुई थीं। उसका सफेद पाल सूर्य की तिरछी किरणों से सुनहला हो रहा था। शीघ्र ही विहार-नौका पोत के निर्माण-स्थल के ठीक सामने से गुजरने लगी, जहाँ उत्सुक दर्शकों की भीड़ प्रतीक्षा कर रही थी। अचानक भय-मिश्रित चीखें सुनायी देने लगीं: "त्राबाकोलो" ने एक हिचकोला लिया और समूद्र की ओर सरकने लगा। विहार-नौका का पार्श्व ठीक सामने था। दोनों ही जहाज – एक छोटा और एक बड़ा – टकराने के लिये तैयार हो चुके थे। उन्हें रोकने के लिये न तो समय था, न कोई उपाय ही। "त्राबाकोलो" नत तल पर तेजी के साथ फिसल रहा था... घर्षण से उत्पन्न सफेद धुँआ उसके नाक के सामने नाच उठा और उसकी दुम या दुंबाल पानी में पहुँच चुकी थी (जहाज दुम की तरफ से पानी में उतर रहा था – या. पे.)।

उसी समय एक आदमी सामने आता है। वह "त्राबाकोलो" के पीछे से लटकते रस्से को पकड़ लेता है और जमीन की ओर झुक कर खींचते हुए उसे रोकने की कोशिश करता है। एक मिनट में वह जमीन में धँसे लोहे के पाइप पर रस्से से चंद लपेटें डाल लेता है और दस सेकेंड तक अमानवीय शक्ति से रस्से को खींच कर रोके रखता है। अंत में रस्सा टूट जाता है। पर ये दस सेकेंड काफी थे: "त्राबाकोलो" पानी में उतर आया और नौका को हल्के से छूता हुआ आगे बढ़ गया।

नौका बच गयी थी। और जिस आदमी ने उसकी रक्षा की थी, वह था मैटिफ।"

उपन्यासकार को कितना आश्चर्य होता, यदि उससे कहा जाता कि ऐसे कारनामे के लिये मैटिफ की तरह भीमसेन बनने की कोई जरूरत नहीं थी। चलते दिमाग का कोई भी आदमी यह कर लेता।

यांत्रिकी कहती है कि शहतीर या स्तंभ पर लिपटा रस्सा जब खिसकता है, तो दोनों के बीच का घर्षण-बल अत्यंत बड़ा होता है। रस्सा जितनी ही बार लपेटा जायेगा, घर्षण उतना ही अधिक होगा। घर्षण के बढ़ने का नियम इस प्रकार है कि यदि लपेटनों की संख्या समांतर श्रेढ़ी के रूप में बढ़े, तो घर्षण गुणोत्तर श्रेढ़ी की तरह बढ़ेगा। इसीलिये कमजोर बच्चा भी स्थिर बेलन पर तीन-चार बार लपेटे रस्से के छोर को पकड़े हुए काफी बड़े बल को संतुलित कर ले सकता है।

कच्ची उम्र के लड़के इसी विधि द्वारा सैकड़ों यात्रियों समेत जहाजों को नदी के घाट पर रोक कर रखते हैं। यह उनके बाहु-बल का कमाल नहीं है, खूँटे के साथ रस्से के घर्षण का कमाल है।

XVIII-वीं शती के विख्यात गणितज्ञ ऐलर ने खूँटे के गिर्द रस्से को लपेटने की संख्या पर घर्षण-बल की निर्भरता का निर्धारण किया था। जिन्हें बीजगणित की संक्षिप्त भाषा से डर नहीं लगता, उनके लिये हम ऐलर का सूत्र दे रहे हैं:

$$F = fe^{k\alpha}$$

यहां F वह बल है, जिसके विरुद्ध हम अपनी शक्ति f लगा रहे हैं। वर्ण e नैसर्गिक लघुगणक के आधार (संख्या 2.718...) को द्योतित करता है। k – रस्से के साथ खूँटे का घर्षण-गुणांक है। वर्ण α द्वारा "लपेटन कोण", अर्थात्, रस्से द्वारा बनाये गये चाप की लंबाई और इस चाप की त्रिज्या का अनुपात व्यक्त किया गया है।

सूत्र को उस स्थिति के लिये लागू करें, जिसका वर्णन जूल वेर्न ने किया है। परिणाम आश्चर्यजनक रहेगा। इस स्थिति में बल F डोक पर फिसलते जहाज का तनाव-बल होगा। जहाज का भार उपन्यास से ज्ञात है: 50 टन। निर्माण-चबूतरे का नतन यदि $^1/_{10}$ था, तो रस्से को जहाज अपने पूरे भार से नहीं, उसके $^1/_{10}$ अंश, अर्थात् 5 टन या 5000 kg से खींच रहा था।

राशि k – खूँटे के साथ रस्से के घर्षण-गुणांक – को $^1/_3$ मान लेते हैं।

4-567

α का मान सरलतापूर्वक निर्धारित हो सकता है, यदि मान लें कि मैटिफ ने खूँटे पर रस्से के तीन लपेटन डाले। इस स्थिति में

$$\alpha = \frac{3 \times 2\pi r}{r} = 6\pi$$

इन मूल्यों को उपरोक्त सूत्र में बैठाने पर निम्न समीकरण प्राप्त होगा :

$$5000 = f \cdot 2.72^{6\pi \cdot \frac{1}{3}} = f \cdot 2.72^{2\pi}$$

अज्ञात राशि f (अर्थात् जहाज को रोकने वाली शक्ति) इस समीकरण द्वारा ज्ञात हो सकती है, यदि लघुगणकों की सहायता ली जाये :

$$\lg 5000 = \lg f + 2\pi \lg 2.72, \text{ इससे } f = 9.3 \text{ kg}$$

इस प्रकार, वीरता का कार्य संपन्न करने के लिये "भीमसेन" को रस्सा सिर्फ 10 kg के बल से खींचना था।

यह मत सोचिये कि 10 kg सिर्फ सैद्धांतिक परिणाम है और वास्तविकता में इससे कहीं अधिक बल की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत, हमारा परिणाम कुछ बढ़ा-चढ़ा कर निकाला गया है। यदि रस्सा सन का होता और खूँटा लकड़ी का, तो घर्षण-गुणांक k और भी अधिक होता; अतः जहाज को रोकने के लिये और भी कम शक्ति लगानी पड़ती। यदि रस्सा इतना मजबूत हो कि तनाव से टूट न जाये, तो उसे 3–4 बार लपेट कर एक बच्चा भी जूल वेर्न के भीम की बराबरी ही नहीं कर लेता, उससे कहीं अधिक बढ़ जाता।

गाँठ की मजबूती

हमें संदेह भी नहीं होता कि दिनचर्या में हम जाने-अनजाने उसी गुण का उपयोग करते हैं, जिसके बारे में ऐलर का सूत्र बताता है। गाँठ और कुछ नहीं, खूँटे पर लपेटी गयी रस्सी ही है। सिर्फ यहाँ खूंटे का काम उसी रस्सी का दूसरा भाग करता है। किसी भी गाँठ की मजबूती सिर्फ घर्षण पर ही निर्भर करती है, जो सिर्फ इसलिये कई गुना बढ़ जाता है

कि रस्सी अपने चारों ओर लपेटी जाती है। यदि आप गाँठ में रस्सी के मोड़ों पर ध्यान देंगे, तो इस बात की सत्यता में कोई संदेह नहीं रह जायेगा। जितने ही अधिक मोड़ होंगे, रस्सी उतनी ही अधिक बार अपने गिर्द लिपटी होगी, अर्थात् उतना ही अधिक "लपेटन कोण" होगा और इसीलिये गाँठ उतना ही अधिक मजबूत होगा।

दर्जी जब बटन सीता है, वह भी अनजाने में इसी बात का उपयोग करता है। सिलाई के स्थान को वह धागे से कई बार लपेट लेता है और तब जाकर उसे तोड़ता है। यदि धागा खुद कमजोर नहीं है, तो बटन अलग नहीं होगा। यहाँ हमारा परिचित नियम ही व्यवहृत हुआ है; धागे की लपेटन-संख्या जब समांतर श्रेढ़ी के रूप में बढ़ती है, तो सिलाई की मजबूती गुणोत्तर श्रेढ़ी सी बढ़ती है।

यदि घर्षण नहीं होता, तो हम बटन का उपयोग नहीं कर सकते: उसके भार से धागा खुद खुल जाता और बटन गिर जाता।

यदि घर्षण नहीं होता

आप देखते हैं कि कितने भिन्न और अभी-कभी आशातीत रूपों में घर्षण प्रकट होता है। घर्षण की भूमिका उन घटनाओं में भी काफी गंभीर होती है, जहाँ हमें संदेह भी नहीं होता। यदि घर्षण दुनिया से अचानक गायब हो जाये, तो बहुत सारी साधारण परिघटनायें भी असाधारण रूप से घटने लगेंगी।

फ्रांसीसी भौतिकविद गिलियोम घर्षण की भूमिका का अत्यंत रोचक वर्णन करते हैं :

"फिसलन भरी बर्फ पर चलने का अवसर सबों को मिला होगा: गिरने से बचने के लिये वहां कितना प्रयत्न करना पड़ता है, खड़े रहने के लिये वहां कितनी हास्यजनक गतियां करनी पड़ती हैं! यह हमें मानने पर विवश कर देता है कि जमीन में, जिस पर हम चलते हैं, बहुमूल्य गुण है, जिसके कारण हम बिना किसी विशेष प्रयत्न के अपना संतुलन बनाये रखते हैं। हमारे मन में यही विचार उस समय भी उत्पन्न होता है, जब हम फिसलन भरे रास्ते पर साइकिल चलाते हैं, या जब आसफाल्ट पर घोड़ा फिसल कर गिरता है। इस तरह की संवृत्तियों को

देख कर हम उन परिणामों से अवगत होते हैं, जो घर्षण के कारण होते हैं। इंजिनियर मशीनों में उसे कम करने की कोशिश करते हैं; और ठीक ही करते हैं। व्यावहारिक यांत्रिकी में घर्षण को बिल्कुल ही अवांछित बात मानते हैं। यह भी अच्छी बात है, लेकिन सिर्फ संकीर्ण व विशेष क्षेत्र में। हर दूसरी स्थिति में हमे घर्षण के प्रति कृतज्ञ होना चाहिये: उसी के कारण हम उठते-बैठते और चलते हैं, काम कर सकते हैं और हमें इस बात का कोई भय नहीं होता कि किताब और दावात फर्श पर गिर जायेंगे, टेबुल तबतक फिसलता रहेगा, जबतक दीवार से नहीं अड़ जायेगा, कलम उंगलियों से फिसल कर गिर जायेगा।

घर्षण इतनी सामान्य संवृत्ति है कि कुछ विशेष स्थितियों को छोड़ कर हमें उसे सहायता के लिये निमंत्रण नहीं देना पड़ता: वह खुद आ जाता है।

घर्षण वस्तुओं को स्थिरता प्रदान करता है। फर्श ऐसा होता है कि टेबुल-कुर्सी वहीं पड़े रहते हैं, जहाँ उन्हें रखा जाता है। तश्तरी, गिलास आदि टेबुल पर स्थिर पड़े रहते हैं और इसके लिये हमें कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता (हिचकोले खाते जहाज पर बात दूसरी होती है)।

मान लें कि घर्षण बिल्कुल खत्म कर दिया जा सकता है। तब कोई भी पिंड, चाहे वे चट्टान हों या रेत-कण, एक दूसरे पर स्थिर नहीं रह सकेंगे; वे लुढ़कते व फिसलते रहेंगे, जबतक कि सभी एक स्तर पर नहीं आ जायेंगे। यदि घर्षण नहीं होता, तो पृथ्वी का गोला द्रव के गोले की तरह बिल्कुल चिकना होता।"

उपरोक्त कथन में और भी जोड़ा जा सकता है कि घर्षण की अनुपस्थिति में पेंच व कीलें दीवार में से फिसल कर बाहर आ जातीं, हाथ में किसी भी वस्तु को पकड़ कर रखना संभव नहीं होता, कोई भी आंधी कभी खत्म नहीं होती, कोई भी ध्वनि कभी चुप नहीं होती, वह बिना क्षीण हुए परावर्तित होती रहती (जैसे, कमरे की दीवारों से) और हम उसकी अनंत प्रतिध्वनियां सुनते रहते।

घर्षण कितना अधिक महत्व रखता है, इसका मूर्त्त ज्ञान हमें रास्ते की फिसलन भरी बर्फ देती है। यदि हमें ऐसे रास्ते से जाना पड़ता है, तो हम हर क्षण अपने को असहाय महसूस करते हैं और हर क्षण हमारे गिरने का खतरा रहता है। अखबारों में छपी चंद खबरें देखें ('दिसंबर, 1927):
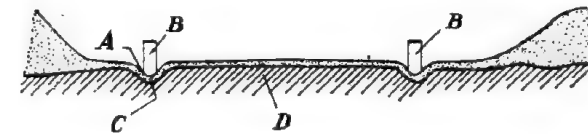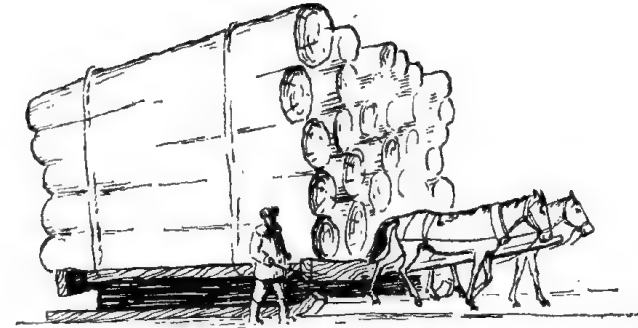
चित्र 22. ऊपर – बर्फीले पथ पर स्लेज-गाड़ी; दो घोड़े मिल कर 70 टन का भार खींच रहे हैं। नीचे – बर्फीला पथ; A – लीक; B – गाड़ी का बर्फ पर फिसलने वाला भाग; C – दबाव से घनित बर्फ; D – जमीन, जिस पर बर्फीला पथ है।

"लंडन, 21। पिच्छट बर्फ के कारण लंडन में सड़कों पर आवागमन कठिन हो गया है। हाथ-पैर आदि टूटने के कारण 1400 व्यक्ति अस्पतालों में दाखिल हुए हैं।"

"हाइड-पार्क के निकट दो ट्रामों के साथ टकराने के कारण तीन मोटर-कारों के पेट्रौल में विस्फोट हो गया। कारें पूर्णतया नष्ट हो गयीं...।"

"पेरिस, 21। पेरिस और उसके आस-पास पिच्छट बर्फ के कारण कई दुर्घटनायें हुई हैं...।"

लेकिन बर्फ के नगण्य घर्षण का उपयोग तकनीकी तौर पर सफलतापूर्वक किया जा सकता है। साधारण स्लेज गाड़ी का ही उदाहरण ले सकते हैं। और अच्छा उदाहरण है हिम-पथ। जाड़ों में जंगल से रेलवे स्टेशन तक शहतीरें ढोने के लिये इन पथों का निर्माण किया जाता है। इसमें बर्फ

की चिकनी "पटरियां" होती है (चित्र 22), जिस पर दो घोड़े 70 टन शहतीर खींच सकते हैं।

"चेल्यूस्किन" की दुर्घटना के भौतिक कारण

उपरोक्त बातों से यह निष्कर्ष निकालने की जल्दबाजी न करें कि बर्फ के साथ घर्षण हर परिस्थिति में नगण्य होता है। कभी-कभी वह काफी अधिक होता है, चाहे तापक्रम शून्य के निकट ही क्यों न हो। जब हिम-भंजक जहाजों के फौलादी अस्तर के साथ ध्रुववर्ती सागरों की बर्फ के घर्षण का बारीकी से अध्ययन किया गया, तो पता चला कि वह आशातीत
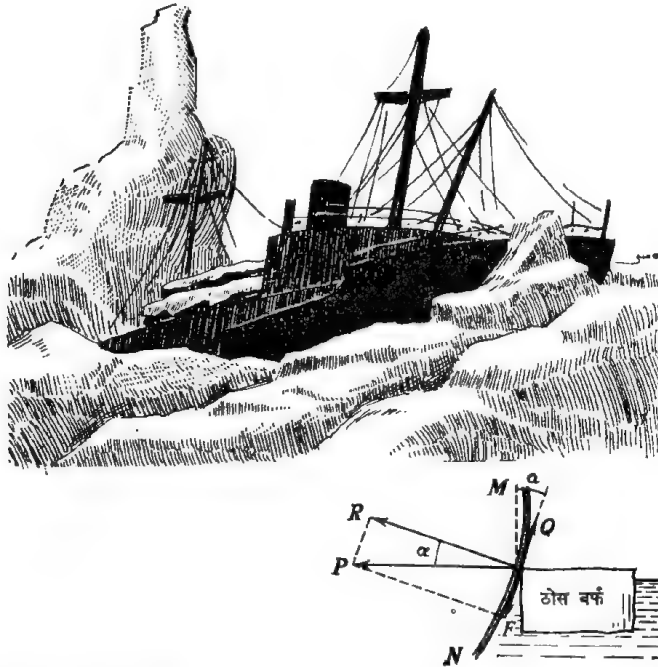
चित्र 23. हिम चट्टानों से दबा हुआ "चेल्यूस्किन"। नीचे : जहाज के पार्श्व MN पर बर्फ के दबाव से उत्पन्न बलों की क्रिया।

रूप से अधिक है। वह लोहे के साथ लोहे के घर्षण से कुछ कम नहीं होता : जहाज के फौलादी अस्तर के साथ बर्फ का घर्षण-गुणांक 0.2 के बराबर है।

बर्फ पर जहाज चलाने में इस सांख्यिक मान का कितना महत्त्व है, यह समझने के लिये चित्र 23 पर गौर करें। उसमें जहाज के पार्श्व MN पर हिम-दाब के बल की दिशा दिखायी गयी है। हिम-दाब का बल P दो बलों में विघटित होता है—R, जो पार्श्व के अभिलंब है और F, जो पार्श्व की स्पर्शरेखीय दिशा में क्रियाशील है। P और R के बीच का कोण उदग्र रेखा के साथ पार्श्व MN के झुकाव का कोण है। बर्फ के साथ पार्श्व के घर्षण का बल Q घर्षणगुणांक से गुणित बल R के बराबर है, अर्थात् $Q=0.2R$ । यदि F घर्षण-बल Q से अधिक है, तो वह हिम-शैलों को पानी के नीचे घसीट ले जाता है। हिम-शैल पार्श्व के सहारे फिसलते रहते हैं और जहाज को नुकसान नहीं पहुँचाते। पर यदि बल Q बड़ा है F से, तो घर्षण बर्फ के पिघलने में बाधक होता है। हिम का यह दबाव यदि दीर्घकाल तक बना रहे, तो जहाज का पार्श्व पिचक जा सकता है।

$Q<F$ कब होगा? सरलतापूर्वक देख सकते हैं कि $F=R\,\mathrm{tg}\,\alpha$; अतः $Q<R\,\mathrm{tg}\,\alpha$; पर $Q=0.2R$, अतः $Q<F$। दूसरी असमिका देती है :

$$0{,}2R<R\,\mathrm{tg}\,\alpha, \text{ या } \mathrm{tg}\,\alpha>0.2$$

सारणी में ऐसा कोण ढूँढ़ते हैं, जिसकी स्पर्शज्या 0.2 के बराबर होती है। ऐसा कोण $11°$ के बराबर होता है। अर्थात् $Q<F$ है तब, जब $\alpha>11°$। इससे ज्ञात होता है कि उदग्र रेखा के साथ पार्श्व का झुकाव कितना होना चाहिये, ताकि जहाज बिला खतरा बर्फ पर चल सके। यह झुकाव $11°$ से कम नहीं होना चाहिये।

अब "चेल्यूस्किन" की दुर्घटना की ओर लौटते हैं। वह हिम-भंजक नहीं, स्टीमर जहाज था। वह पूरे उत्तरी सागर-पथ को पार कर गया, लेकिन बेरिंग जलडमरूमध्य में हिम-शैलों के बीच फँस गया।

हिम-शैलों के साथ "चेल्यूस्किन" सुदूर उत्तर की ओर बह चला (फरवरी, 1934) और अंत में उनके दबाव से पिचक गया। दो महीनों लंबा यात्रियों का साहसपूर्ण जीवन और वीर विमान-चालकों द्वारा उनकी रक्षा की घटना बहुतों को याद होगी। दुर्घटना का एक वर्णन देखें :

"जहाज का फौलादी कोरपुस जल्द आत्म-समर्पण करने वाला नहीं था, – अभियान के नेता ओ. यू. श्मित ने रेडियो पर खबर दी। – साफ महसूस हो रहा था कि बर्फ जहाज को कैसे दोनों तरफ से दबा रहा है और उसका फौलादी अस्तर उसे वापस धकेलता हुआ चरमरा रहा है। बर्फ का आक्रमण धीमी गति से जारी रहा, पर उसका कोई निवारण नहीं था। अस्तर के जोड़ टूट रहे थे। कीलों के उखड़ने की चटचटाहट सुनायी दे रही थी। क्षण भर बाद ही वाम पार्श्व पूरी तरह उखड़ चुका था...।"

जो कुछ यहाँ कहा गया है, इससे पाठक दुर्घटना का भौतिक कारण समझ गये होंगे। व्यावहारिक निष्कर्ष यह है कि हिम-सागर पर चलने वाले जहाजों के पार्श्व का उदग्र रेखा के साथ झुकाव 11 डिग्री से कम नहीं होना चाहिये।

संतुलित डंडा
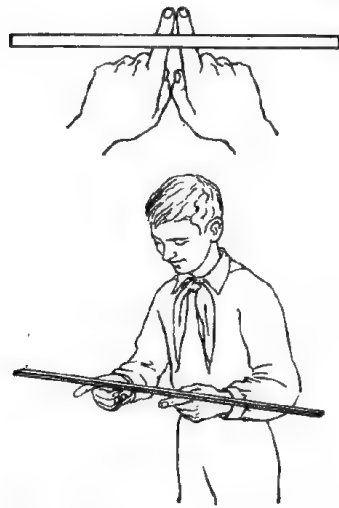
चित्र 24. गज के साथ प्रयोग, नीचे – प्रयोग का अंत।

तर्जनियों पर चित्र 24 की भांति एक चिकना डंडा रख लें और उंगलियों को एक दूसरे की ओर खिसकायें। जब वे आपस में सट जायेंगी, एक विचित्र बात देखने को मिलेगी – उंगलियों की इस अंतिम स्थिति में डंडा गिरता नहीं है, अपना संतुलन कायम रखता है। आप इस प्रयोग को कई बार दुहरा सकते हैं; उंगलियों की आरंभिक स्थिति जो भी रही हो, अंतिम परिणाम हमेशा यही होगा: डंडा संतुलित हो जाया करेगा। डंडे की जगह आप कोई भी छड़ी जैसी चीज ले सकते हैं, आपको यही विशेषता नजर आयेगी।
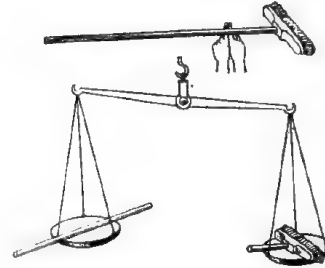
चित्र 25. वही प्रयोग झाड़ू के साथ। पलड़े संतुलित क्यों नहीं होते?

इसका रहस्य क्या है?

एक बात स्पष्ट है: यदि सटी उंगलियों पर डंडा संतुलित हो जाता है, तो इसका मतलब है कि उंगलियां डंडे के गुरूत्व-केंद्र के नीचे हैं (पिंड संतुलन की अवस्था में तभी रहता है, जब उसके गुरूत्व-केंद्र से गुजरने वाली शाहुल रेखा आलंब क्षेत्र के भीतर गिरती है)।

जब उंगलियां परस्पर दूर होती हैं, तो अधिक बोझ उस उंगली पर पड़ेगा, जो डंडे के गुरुत्व केंद्र के निकट होगी। दाब के साथ-साथ घर्षण भी बढ़ता है। गुरूत्व-केंद्र के निकट वाली उंगली अपेक्षाकृत अधिक घर्षण महसूस करती है और इसीलिये डंडे के नीचे आसानी से नहीं फिसलती; जो उंगली गुरूत्व-केंद्र से दूर होती है, वही खिसकती है। पर ज्यों ही वह दूसरी की अपेक्षा गुरूत्व-केंद्र से अधिक निकट हो जाती है, उंगलियों की भूमिकायें बदल जाती हैं: अब दूसरी उंगली खिसकने लगती है और पहली स्थिर रहती है। भूमिकाओं की अदला-बदली तबतक होती रहती है, जबतक कि दोनों आपस में सट नहीं जातीं। और चूँकि हर बार सिर्फ वह उंगली खिसकती है, जो गुरूत्व-केंद्र से दूर होती है, स्वाभाविक है कि दोनों उंगलियां अंततोगत्वा गुरूत्व-केंद्र के ठीक नीचे आकर सटती हैं।

अंत में यह प्रयोग फर्श साफ करने वाले ब्रश के साथ दुहरायें (चित्र 25, ऊपर) और निम्न प्रश्न का उत्तर सोचें: यदि ब्रश को ठीक उस स्थान से काट दिया जाये, जहां से वह उंगलियों पर संतुलित हो जाता है और दोनों टुकड़ों को तराजू के अलग-अलग पलड़ों पर रखा जाये (चित्र 25, नीचे), तो कौन सा पलड़ा भारी होगा – डंडे वाला या ब्रश वाला?

लगता है कि यदि ब्रश के दोनों टुकड़े एक दूसरे को संतुलित कर सकते हैं, तो तराजू के पलड़ों पर भी वे एक दूसरे को संतुलित रखेंगे। पर वास्तविकता में ब्रश वाला पलड़ा भारी निकलेगा। कारण समझना कठिन

नहीं है, यदि इस बात को ध्यान में रखें कि पहले दोनों टुकड़ों के भार-बल टेक (उंगलियों) से भिन्न दूरियों पर क्रियाशील थे। पलड़ों पर इन टुकड़ों को रखने से ये ही बल टेक-बिंदु से समान दूरियों पर क्रियाशील होते हैं।

लेनिनग्राद सांस्कृतिक उद्यान की "मनोरंजक विज्ञान प्रदर्शनी" में मैंने कई डंडे रखवाये, जिनमें गुरुत्व-केंद्रों की स्थितियां भिन्न थीं। हर डंडा ठीक उस स्थान से दो टुकड़ों में विभक्त हो सकता था, जहां उसका गुरुत्वकेंद्र था। दर्शक इन टुकड़ों को तराजू के पलड़ों पर रख कर आश्चर्यचकित हो जाते थे कि छोटा भाग बड़े वाले से अधिक भारी है।

अध्याय 3

चक्रगति

नाचता लट्टू नहीं गिरता

इसका सही कारण बहुत कम लोग बता सकते हैं, यद्यपि बचपन में लट्टू या घिरनी सभी ने नचाया होगा। नाचते लट्टू को सीधा भी रख सकते हैं, और तिरछा भी; वह गिरता नहीं है। कौन सी शक्ति उसे गिरने से रोकती है? क्या गुरुत्व उस पर अपना प्रभाव नहीं डालता? यहां बलों की आपसी क्रिया अत्यंत रोचक है, पर लट्टू का सिद्धांत सरल नहीं है और उसकी गहराइयों में हम नहीं जायेंगे। हम सिर्फ यह देख लें कि नाचते लट्टू (या घिरनी) के नहीं गिरने का मुख्य कारण क्या है।

चित्र 26 में एक घिरनी दिखायी गयी है, जो तीर की दिशा में नाच रही है। उसकी किनारी पर आमने-सामने के भागों A व B पर

चित्र 26. घिरनी गिरती क्यों नहीं?
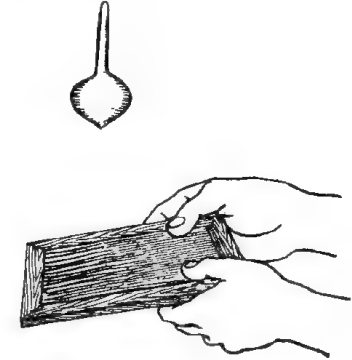
चित्र 27. नाचती घिरनी को उछालने पर वह अपने अक्ष की आरंभिक स्थिति अपरिवर्तित रखती है।

गौर करें। भाग A **आप से** दूर भाग रहा है और भाग B **आपकी ओर** आ रहा है। अब आप घिरनी को हल्की ठोकर देकर उसके अक्ष को थोड़ा **अपनी ओर** झुका दें और देखें कि इन भागों की गतियों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस ठोकर के कारण भाग A ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है और भाग B नीचे की ओर गतिमान हो जाता है। धक्का दोनों ही भागों को उनकी अपनी गतियों के लंब की दिशा में प्राप्त होता है। यदि घिरनी काफी तेजी से नाच रही है, तो इन भागों का घूर्णन वेग काफी अधिक होगा। बिंदुओं के इस बड़े वेग के साथ जब आपकी ठोकर से प्राप्त क्षुद्र वेग जुड़ता है, तो आरंभिक बड़े वेग पर बहुत कम असर पड़ता है और मिलने वाला परिणामी वेग इसके निकट होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि घिरनी ठोकर का प्रतिरोध करती सी क्यों प्रतीत होती है। घिरनी जितनी ही भारी होगी और उसका घूर्णन जितना ही तेज होगा, वह धक्के का उतना ही अधिक प्रतिरोध करेगी।

सारत: यह व्याख्या जड़त्व से संबद्ध है। घिरनी के सभी कण वृत्ताकार पथों पर घूमते हैं और ये पथ अक्ष के अभिलंब समतलों पर हैं। जड़त्व नियम के अनुसार कण हर क्षण वृत्ताकार पथ को छोड़ कर वृत्त की स्पर्शरेखा की दिशा में सरल रेखा पर भागने को प्रवृत्त रहता है। चूँकि किसी भी वृत्त की सभी स्पर्शरेखायें उसी समतल पर होती हैं, जिस पर स्वयं वृत्त होता है, इसलिये हर कण अपने वृत्ताकार पथ वाले समतल पर ही बने रहने की कोशिश करता है। हमें ज्ञात है कि यह समतल घिरनी के अक्ष पर लंब है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि घिरनी में अक्ष के अभिलंब सभी समतलों की प्रवृत्ति व्योम में अपनी स्थिति स्थायी बनाये रखने की होती है और इसीलिये उनका सामूहिक लंब, अर्थात् अक्ष, भी अपनी स्थिति स्थायी रखने की प्रवृत्ति रखता है।

हम घिरनी पर वाह्य बलों के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले सभी बलों को नहीं देखेंगे, क्योंकि व्याख्या काफी बड़ी व नीरस हो जायेगी। मैं सिर्फ इतना समझाना चाहता था कि हर घूर्णनरत पिंड घूर्णन के अक्ष की दिशा को स्थायी रखने की चेष्टा करता है।

आधुनिक तकनीकी में इस गुण का काफी विस्तृत उपयोग है। जहाजों व विमानों में कंपास, स्थावक (स्टैबिलाइज़र) आदि जैसे वलयदर्शी उपकरण लगाये जाते हैं और इनका आधार भी लट्टू का ही गुण है।

लट्टू, घिरनी जैसे साधारण खिलौनों के भी कितने लाभप्रद उपयोग हैं! घूर्णन तोप के गोलों को उनकी उड़ान के समय स्थिरता देता है। घूर्णन का उपयोग अंतरीक्षी तोप-गोलों – स्पूतनिकों व राकेटों – को भी स्थिरता प्रदान करने के लिये किया जा सकता है।

बाजीगरी

बाजीगरी के कमाल दिखाने में भी अधिकतर उसी गुण का उपयोग किया जाता है, जिसके कारण घूर्णनरत पिंड अपने अक्ष की दिशा को स्थायी बनाये रखता है। अंग्रेज भौतिकविद् जोन पेरी अपनी पुस्तक "लट्टू का नाच" में लिखते हैं:

"विक्टोरिया रंगशाला के आलीशान कक्ष में एक दिन मैं कौफी और सिगरेट का मजा लेते दर्शकों को कुछ प्रयोग दिखा रहा था। मैं यथासंभव रोचक शब्दों में बता रहा था कि छल्ले को घूर्णन-गति के साथ फेंकना चाहिये, यदि आप पहले से जानना चाहते हैं कि वह कहां और कैसे
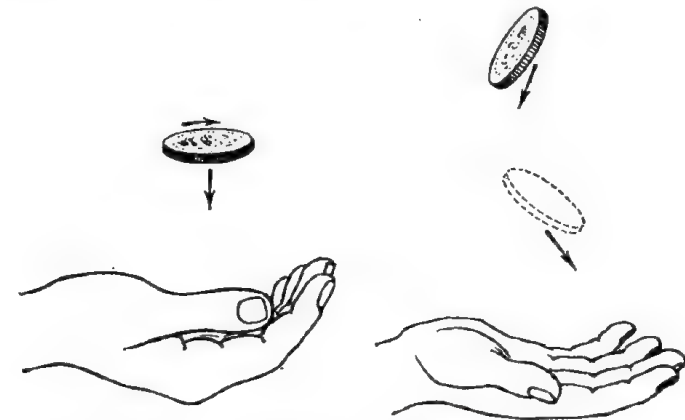
चित्र 28. घूर्णन के साथ उछालने पर सिक्के की उड़ान।

चित्र 29. बिना घूर्णन दिये उछालने पर सिक्का किसी भी स्थिति में गिर सकता है; यह सिर्फ संयोग की बात होगी।
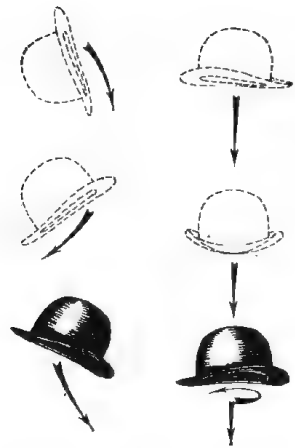
चित्र 30. टोप को लोकना आसान है, यदि उसे अक्ष के गिर्द घूर्णन दे कर उछाला जाये।

गिरेगा। टोप को छड़ी की नोक पर लोक सकने के लिये उसे चक्कर देते हुए ही ऊपर उछालते हैं। घूर्णनरत पिंड अक्ष की स्थिति में किसी भी परिवर्तन का प्रतिरोध करता है – इस गुण का सदा ही भरोसा किया जा सकता है; आप धोखा नहीं खायेंगे। इसके बाद मैंने समझाया कि भीतर से बिल्कुल चिकनी नली वाले तोप से सही निशाना नहीं लगाया जा सकता। अक्सर नली की भीतरी दीवार पर पेंचदार कटाव बने होते हैं, जिसमें गोले की निकली हुई किनारी फँसी रहती है। तोप दागने पर बारूद की विस्फोट-शक्ति जब गोले को निकालने के लिये धक्का देती है, गोला सीधा नहीं, पेंच के सहारे चक्कर खाता हुआ निकलता है। निकलते वक्त उसकी एक विशेष घूर्णन गति होती है।

अपने व्याख्यान में मैं इससे अधिक कुछ नहीं कर सकता था, क्योंकि मुझे बाजीगरों की तरह टोप और तश्तरियां उछालना नहीं आता। पर मेरे व्याख्यान के समाप्त होते ही मंच पर दो बाजीगर आ गये। कहना नहीं होगा कि जिन नियमों को मैं समझाने की कोशिश कर रहा था, उन्हें दृश्य-सुगम बनाने के लिये इन कलाकारों के करतब से बढ़ कर दूसरा कोई प्रयोग नहीं दिखाया जा सकता था। वे चुस्ती के साथ टोप, छाते, मुग्दर, तश्तरियां आदि एक दूसरे की ओर फेंकते और लोकते जा रहे थे...। एक बाजीगर एक के बाद एक कई छूरे हवा में उछाल कर उन्हें लोके जा रहा था और पुनः वापस फेंके जा रहा था। कोई चूक नहीं हो रही थी। दर्शक अभी-अभी इन संवृत्तियों की व्याख्या सुन चुके थे, अतः वे प्रसन्न हो रहे थे कि वे इन खेलों का रहस्य जानते हैं। बाजीगर छूरी को फेंकते वक्त किस प्रकार उन्हें घूर्णन देता है, ताकि उसे पता रहे कि छूरी किस स्थिति में उसके पास लौटेगी – दर्शक यह सब देख रहे थे।

स्वयं मैं दंग था कि वहां बाजीगरी के सारे खेल उपरोक्त नियम की सत्यता को ही दर्शा रहे थे।"

कोलंबो की समस्या का नया हल

अंडे को कैसे खड़ा किया जाये – इस विख्यात समस्या का हल कोलंबो ने कुछ ज्यादा ही सरलता से किया था: उसने अंडे के खोल को थोड़ा दबा कर तोड़ दिया और उसे टेबुल पर खड़ा कर दिया।[1]

सच पूछें, तो समस्या का यह हल सही नहीं है: अंडे का खोल तोड़ कर कोलंबो ने उसका **रूप** बदल दिया और इसका अर्थ है कि उसने अंडे
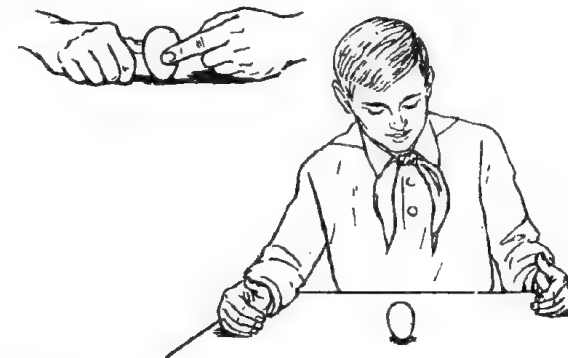
चित्र 31. कोलंबो की समस्या का हल: अंडा घूर्णन करता हुआ अपने सिरे पर खड़ा है।

[1] वैसे, इस किस्से का कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। प्रसिद्ध नाविक कोलंबो ने ऐसा किया था – यह अफवाह ही है। यह किया था बिल्कुल दूसरे व्यक्ति ने और बिल्कुल दूसरी परिस्थितियों में। इतालियन वास्तुकार ब्रुनेल्स्की (1377-1446) कोलंबो से बहुत पहले हुए थे। फ्लोरेंस के गिरजे का विशाल गुंबज बना कर उन्होंने कहा:" मेरा गुंबज इतना टिकाऊ है, जितना यह अंडा अपनी नोक पर!" (और उन्होंने नोक तोड़ कर अंडे को टेबुल पर खड़ा कर दिया)।

को नहीं, बिल्कुल दूसरे पिंड को खड़ा किया था। समस्या का सार तो अंडे के रूप में ही था। रूप बदल जाने से अंडा अंडा नहीं रह गया, वह दूसरे पिंड में परिणत हो गया। कोलंबो ने उस पिंड के लिये हल नहीं दिया, जिसके लिये ढूँढा जा रहा था।

समस्या का हल अंडे का रूप बदले बगैर भी संभव है। आपको बस लट्टू के गुण का उपयोग करना पडेगा। अंडे को उसके लंबे अक्ष के गिर्द घूर्णन गति देने से अंडा अपने पतले या चौडे सिरे पर खड़ा नाचता रहेगा; वह गिरेगा नहीं। चित्र में दिखाया गया है कि अंडे को घूर्णन गति उंगलियों के सहारे दिया जाता है। हाथ हटा लेने के बाद आप देखेंगे कि अंडा कुछ समय तक नाचता रहता है। हल यही है।

प्रयोग के लिये उबला अंडा ही लेना चाहिये। यह रोक कोलंबो के प्रश्न की शर्तों का विरोध नहीं करती। कोलंबो ने अपना प्रश्न सुना कर वहीं खाने की मेज से एक अंडा उठाया और उसे खड़ा कर दिया। खाने की मेज पर कच्चा अंडा शायद ही रखा गया होगा। कच्चे अंडे को आप घूर्णन-गति नहीं दे सकते: अंदरूनी द्रव घूर्णन-गति में अवरोध डालेगा। इससे कच्चे व उबले अंडे की पहचान का एक आसान तरीका ज्ञात होता है, जिसे अनेक गृहस्थिनें जानती हैं।

"नष्ट" गुरुत्व

अरस्तू ने दो हजार वर्ष पूर्व लिखा था कि "वलनरत (वृत्ताकार पथ पर गतिमान) बरतन में से पानी नहीं गिरता,–तब भी, जब बरतन उलट जाता है, क्योंकि वलन इसमें बाधक होता है।" यह प्रभावशाली प्रयोग, जिसे निस्संदेह बहुत से लोग जानते होंगे, चित्र 32 में दिखाया गया है: पानी से भरी बाल्टी को चित्र की भाँति तेजी से घुमाने पर उसमें से पानी नहीं गिरता; पथ के उस भाग में भी नहीं, जब बाल्टी औंधी हो जाती है।

बोल-चाल में इस संवृति को "केंद्रापसारी बल" द्वारा समझाया जाता है। यह एक काल्पनिक बल है और माना जाता है कि यह पिंड पर क्रियाशील हो कर उसे वलन-केंद्र से दूर भागने को प्रवृत्त करता है। पर ऐसा कोई बल है नहीं। केंद्र से दूर भागने की प्रवृत्ति और कुछ नहीं,

जड़त्व की अभिव्यक्ति है और जड़त्व से प्रेरित गति के पीछे कोई बल नहीं होता। भौतिकी में केंद्रापसारी बल उस यथार्थ बल को कहते हैं, जिससे वलनरत पिंड उसे बांधने वाली रस्सी को खींचता है या जिससे वह अपने वक्र पथ को दबाता है। यह बल गतिमान पिंड पर नहीं, बल्कि उस **बाधा** पर क्रियाशील होता है, जो उसे सरलरेखीय पथ पर चलने से रोकती है। इस तरह की बाधा का काम धागा, वक्र-पथ पर रेल की पटरी आदि कर सकते हैं।
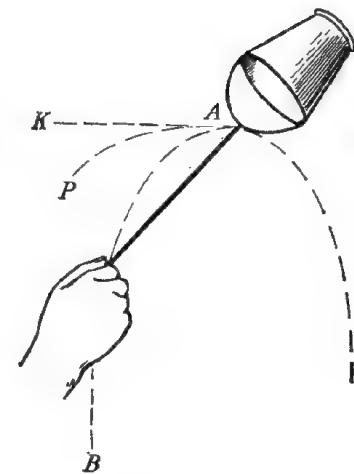
चित्र 32. चक्कर खाती बाल्टी से पानी क्यों नहीं गिरता?

आइये, वलनरत बाल्टी के अध्ययन से इस संवृत्ति का कारण समझने की कोशिश की जाये, ताकि "केंद्रापसारी बल" जैसे द्वयर्थी शब्द का इस्तेमाल न करना पड़े। पहले इस प्रश्न पर गौर करें: यदि बाल्टी की दीवार में एक छेद बना दिया जाये, तो पानी की धार किस दिशा में बहेगी? गुरुत्व-बल की अनुपस्थिति में धार जड़त्ववश वृत्त AB की स्पर्शरेखा AK की दिशा में बहती (चित्र 32)। पर गुरुत्व पानी की धार को क्रमशः नीचे उतरने को बाध्य करता है, अर्थात धार का पथ वक्र हो जाता है (परवलय AP)। यदि वलन का वेग पर्याप्त अधिक होगा, तो वक्र AP वृत्त AB के बाहर रहेगा। यदि पानी बाल्टी की पकड़ (अर्थात् उसकी दीवारों के दबाव) से मुक्त होता, तो वह उसी पथ AP पर गतिमान होता। इससे स्पष्ट हो जाता है कि बाल्टी के वलन से पानी में नीचे गिरने की कोई प्रवृत्ति नहीं रह जाती और इसीलिये वह नीचे नहीं गिरता। पानी गिरे, इसके लिये आवश्यक है कि बाल्टी का मुँह वलन की दिशा में हो।

अब कलन करें कि इस प्रयोग में बाल्टी को किस वेग से घुमाना चाहिये कि उसमें से पानी नीचे नहीं गिरे। यह वेग ऐसा होना चाहिये

कि वलनरत बाल्टी का केंद्रोन्मुखी त्वरण गुरूत्व बल के त्वरण से कम हो: इस स्थिति में पानी का संभव पथ बाल्टी द्वारा निरूपित वृत्त के बाहर रहेगा और पानी बाल्टी से कहीं भी पीछे नहीं छूटेगा। केंद्रोन्मुखी त्वरण W ज्ञात करने के लिये सूत्र है:

$$W = v^2/R$$

जहाँ v – वलन-वेग और R – वृत्ताकार पथ की त्रिज्या है। पृथ्वी-तल पर गुरूत्व का त्वरण $g = 9.8\ m/s^2$ है, अतः हमें असमिका $v^2/R \geqslant 9.8$ प्राप्त होती है। यदि $R = 70\ cm$ लिया जाये, तो

$$\frac{v^2}{0.7} \geqslant 9.8 \text{ तथा } v \geqslant \sqrt{0,7 \cdot 9.8};\ v \geqslant 2.6\ m/s$$

सरलता से ज्ञात कर सकते हैं कि ऐसा वलनवेग प्राप्त करने के लिये आपके हाथ को प्रति सेकेंड करीब डेढ़ चक्कर लगाना पड़ेगा। इतना तेज वलन आसानी से प्राप्त किया जा सकता है और प्रयोग करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

जब द्रव बरतन में अपने क्षैतिज अक्ष के गिर्द घूर्णन करता है, तो वह बरतन की दीवार को दबाता हुआ उसके निकट होने की प्रवृत्ति रखता है। द्रव का यह गुण तकनीकी में तथाकथित "केंद्रापसारी ढलैया" के लिये प्रयुक्त होता है। यदि द्रव एकरूप नहीं होता, तो विशिष्ट भारों के अनुसार उसके अवयवों की परतें बन जाती हैं: अधिक भारी अवयव अक्ष से अधिक दूर होते हैं और हल्के अवयव अक्ष के निकट परतें बनाते हैं। फलस्वरूप पिघली धातु में उपस्थित गैसें, जिनके बुलबुले ढलैया में "गुफायें" बना देते हैं, धातु से अलग हो कर ढलैया के अंदरूनी खोखले भाग में इकत्रित हो जाती हैं। ऐसी ढलैया से बनी वस्तुएं "गुफाओं" से मुक्त होती हैं। केंद्रापसारी ढलैया साधारण दबावी (प्रेस) ढलैया से सस्ता पड़ता है और इसका उपकरण अधिक जटिल नहीं होता।

आप और गैलीली

जो सनसनीखेज अनुभूतियों के प्रेमी हैं, उनका मनोरंजन तथाकथित "शैतानी झूले" से किया जा सकता है। ऐसा एक झूला लेनिनग्राद में

भी था। चूँकि मुझे उस पर झूलने का सुअवसर नहीं मिला, मैं उसका वर्णन फेडो की पुस्तक से उद्धृत कर रहा हूँ, जिसमें अनेक वैज्ञानिक मनोरंजन संकलित हैं:

चित्र 33. "शैतान का झूला": आरेख

"झूला एक विशेष ऊँचाई पर कमरे के आर-पार लगे क्षैतिज छड़ से लटका होता है। जब सभी अपने स्थान पर बैठ जाते हैं, झुलाने वाला व्यक्ति कक्ष का दरवाजा बंद कर देता है और झूले पर चढ़ने के लिये रखे तख्त को हटा लेता है। वह एक छोटी सी हवाई यात्रा की घोषणा करता है और झूला झुलाना शुरू कर देता है। झुलाते-झुलाते वह उछल कर झूले पर टमटम वाले की तरह नीचे बैठ जाता है या थोड़ा झुला कर कक्ष से बाहर निकल जाता है।

झूले का झूलना क्रमशः तेज होने लगता है, पेंगे लंबी होने लगती हैं, झूला छड़ की ऊँचाई तक पहुँचने लगता है, धीरे-धीरे छड़ को पार करने लगता है और अंततोगत्वा गोल चक्कर काटने लगता है। गति क्षिप्र होती जाती है। यद्यपि लोग पहले से सावधान कर दिये जाते हैं; तेज गति और झूलन की अनुभूति से उनका सर चकराने लगता है, उन्हें लगता है कि वे सिर के बल नीचे किसी गहरी खाई में गिरते जा रहे हैं और इसीलिये डर के मारे कुर्सियों के हत्थे पकड़ लेते हैं।

झूलना धीरे-धीरे कम होने लगता है, अब वह छड़ से अधिक ऊँचा नहीं उठता... कुछ क्षण और बीतते हैं और वह पूरी तरह रूक जाता है।

पर वास्तविकता में झूला **पूरे काल तक स्थिर** था। झूल रहा था कमरा। जटिल यंत्रों की सहायता से कमरा अपने क्षैतिज अक्ष के गिर्द घुमाया जाता है। कमरे में सभी टेबुल, कुर्सी आदि फर्श से जड़े रहते हैं। टेबुल पर रखा लैंप भी टेबुल के साथ जड़ा रहता है। झुलाने वाला व्यक्ति सचमुच में नहीं झुलाता, वह कमरे की गति के लय में झुलाने
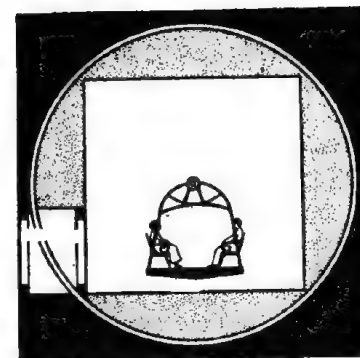
की नकल करता है। सारी स्थिति ऐसी होती है कि धोखा पूर्णतया सफल रहता है।"

भ्रम का रहस्य इतना सरल है कि आपको हँसी आती होगी, पर इसका ज्ञान हो जाने पर भी यदि आपको झूले पर बैठा दिया जाये, तो आप धोखे में आने से बचेंगे नहीं। इतना शक्तिशाली है यह भ्रम!

आपको पुश्किन की कविता "गति" याद है?

> गति नहीं है,—यति[1] बोला;
> दूसरा[2] लगा टहलने चुपचाप।
> बढ़ कर इससे क्या तर्क देते आप
> और यश पाया उसने पीट ढिंढोला।
> पर, श्रीमान्, यह किस्सा मजेदार
> याद दिलाता एक और तकरार:
> हर दिन सूरज घूमता नभ के आर-पार,
> पर सच कहता गैलीली जिद्दीदार।

झूले में इस रहस्य से अनभिज्ञ लोगों के बीच आप की स्थिति गैलीली की तरह होगी। गैलीली सिद्ध कर रहा था कि सूरज और तारे अचल हैं, और हम (पृथ्वी के साथ) घूमते हैं। आप सिद्ध करेंगे कि कमरा आपके गिर्द घूम रहा है और आप (झूले के साथ) अचल हैं। संभवतः आप को गैलीली की तरह ही इसके दुखद परिणाम भी भोगने पड़ेंगे: आप ऐसे आदमी समझे जाने लगेंगे, जो बिल्कुल साफ दिखने वाली बात का विरोध करता है...।

मेरी आपकी बहस

आपके लिये अपने कथन की सत्यता सिद्ध करना इतना सरल नहीं होगा, जितना आप सोचते हैं। कल्पना करें कि आप सचमुच शैतानी झूले

[1] प्राचीन यूनानी दार्शनिक क्सेनोन एलियन (ई.पू. V-शती), जिसके अनुसार विश्व में सब कुछ अचल है और गति की प्रतीति का कारण भ्रम है

[2] डायोगेन

में बैठे हैं और अपने पड़ोसियों को समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि वे गलत हैं। अपने तर्क आप मुझे पेश कर सकते हैं। आइये, हम दोनों इस झूलें में बैठते हैं। झूला चक्कर खाने लगता है और हम विवाद शुरू करते हैं कि क्या घूम रहा है—कमरा या झूला। आपको सिद्ध करना है कि कमरा घूम रहा है। सिर्फ एक बात को ध्यान में रखें: बहस के दरम्यान आप को झूले से उतरना नहीं होगा। आवश्यक वस्तुएं आप अपने साथ पहले से रख लें।

आप—इसमें शक की कोई बात ही नहीं है कि हम स्थिर हैं और कमरा घूम रहा है। यदि हमारा झूला इस तरह चक्कर लगाता, तो ऊपर जा कर यह उल्टा हो जाता और हम जमीन पर गिर जाते; सर नीचे और पैर ऊपर किये हुए हम लटके नहीं रहते। चूँकि हम गिरते नहीं हैं, इसलिये झूला स्थिर है और कमरा चक्कर खा रहा है।

मैं—आप पानी भरे बाल्टी को घुमाने का प्रयोग याद करें: इसमें बाल्टी के उलटने पर भी पानी नहीं गिरता (पृ. 65)। "शैतानी फंदे" को देखें; साइकिल सवार इसमें बिल्कुल उल्टा होकर साइकिल चलाता है, पर गिरता नहीं है (दे. आगे पृ. 77)

आप—यदि ऐसा है, तो आइये, अभिकेंद्री त्वरण ज्ञात करते हैं। देखें कि वह हमें गिरने से रोकने के लिये पर्याप्त है या नहीं। घूर्णन अक्ष से हमारी दूरी और प्रति सेकेंड की घूर्णन संख्या मालूम करना सहज है और अभिकेंद्री त्वरण ज्ञात करने का सूत्र है...

मैं—तकलीफ मत कीजिये। झूला बनाने वाले मुझे बता चुके हैं कि घूर्णन-संख्या मेरे पक्ष में निर्णय देगा। अतः आपके कलन से बहस का अंत होने वाला नहीं है।

आप—लेकिन मैंने उम्मीद नहीं छोड़ी है। देखिये, गिलास से पानी नहीं गिर रहा है...। अरे नहीं, यह तर्क नहीं चलेगा; आप फिर बाल्टी घुमाने वाला प्रयोग सुनाने लगेंगे। दूसरा तर्क सुनें: मेरे हाथ में शाहुल है वह नीचे की ओर हमारे पैरों के पास लटक रहा है। यदि कमरा अचल होता और हम घूमते होते, तो शाहुल कभी हमारे सर के पास आ जाता, तो कभी बगल की ओर खिंचने लगता।

मैं—आप गलत हैं। यदि हमारी गति पर्याप्त है, तो शाहुल हर वक्त

घूर्णन की त्रिज्या की दिशा में भागने की कोशिश करेगा, अर्थात् वह हमारे पैरों के पास लटकता रहेगा, जैसा कि हम देख रहे हैं।

बहस का अंत

यदि आप बहस में जीतना ही चाहते हैं, तो मेरी सलाह सुनिये। झूले पर अपने साथ एक कमानीदार तुला रख लीजिये। जब झूला झूलने की बजाय चक्कर खाने की अनुभूति होने लगे, उससे कोई वजन (जैसे 1 kg का) लटका दीजिये और उसकी सूई की गति को देखिये। यदि झूला स्थिर लटक रहा है, तो सूई हमेशा एक ही वजन – 1 kg – दिखायेगी।

यदि हम तुला के साथ-साथ अक्ष के गिर्द घूमते होते, तो वजन पर गुरुत्व बल की क्रिया के अतिरिक्त केंद्रापसारी प्रभाव भी देखने को मिलता। इस प्रभाव के कारण पथ के निचले बिंदुओं पर वजन 1 kg **से अधिक** नजर आता और ऊपरी बिंदुओं पर 1 kg **से कम**। हमारे अवलोकन में तुला से लटकायी गयी वस्तु का भार कभी अधिक होता, तो कभी कम। यदि ऐसा नहीं है, तो कमरा चक्कर लगा रहा है; हम नहीं।

"तिलस्मी" गोले में

अमेरीका के एक उद्योगपति ने कमाने के लिये एक मजेदार घुरनी (चक्रदोला) बनवायी। उसका आकार गोलाकार कमरे की तरह था, जो अपनी धुरी पर घूम सकता था। भीतर बैठे लोगों को ऐसी अनुभूतियां होती थीं, जैसी सिर्फ सपने या परिकथाओं में होती हैं।

पहले यह देखें कि गोल घूर्णनरत चबूतरे पर आदमी क्या अनुभव करता है।

चक्रगति आदमी को दूर फेंकने की कोशिश करती है। केंद्र से आप जितना ही दूर होंगे, आपको फेंकने की कोशिश करने वाला बल उतना ही अधिक होगा। आँखें बंद करने पर आपको लगेगा कि आप क्षैतिज चबूतरे पर नहीं, किसी ढालू तल पर खड़े हैं, जहां संतुलन कायम रखना बहुत कठिन है। यह समझने के लिये हमें शरीर पर क्रियाशील सभी बलों का अध्ययन करना होगा (चित्र 34)। घूर्णन-गति हमारे शरीर को
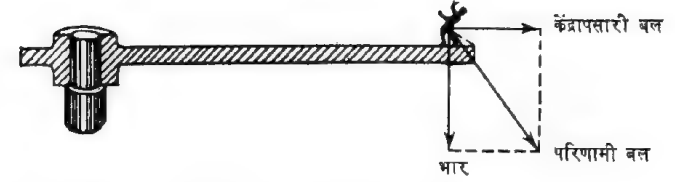
चित्र 34. घूर्णनरत चबूतरे पर आदमी क्या अनुभव करता है।

चबूतरे से बाहर फेंकने की कोशिश करती है और भार हमें नीचे की ओर खींचता है। बाहर की ओर फेंकने और नीचे की ओर खिंचने की गतियां समांतर चतुर्भुज के नियम से जुड़ती हैं। इस तरह से प्राप्त परिणामी गति की दिशा **नीचे की ओर झुकी होती** है। घूर्णन गति जितनी ही अधिक होगी, उदग्र रेखा के साथ परिणामी बल का कोण और बड़ा होता जायेगा।

अब कल्पना करें कि चबूतरे की किनारी थाली जैसी मुड़ी हुई है और आप इसी ढालू भाग पर खड़े हैं (चित्र 35)। यदि चबूतरा अचल है, तो आप ससरते हुए नीचे आ जायेंगे या हो सकता है कि गिर जायेंगे। पर यदि चबूतरा घूर्णनरत है, तो दूसरी बात है। घूर्णन के एक विशेष वेग पर ढालू तल आपके लिये क्षैतिज सा हो जायेगा, क्योंकि आपको खींचने वाली दोनों गतियों से प्राप्त परिणामी गति की दिशा बाहर की ओर ढलान के लंब होगी।[1]
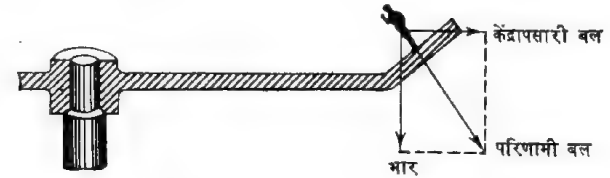
चित्र 35. आदमी घूर्णनरत चबूतरे की ढालू किनारी पर स्थिर खड़ा है।

[1] इन्ही तथ्यों से कुछ अन्य बातें भी समझी जा सकती हैं। रेल-पथ के मोड़ पर बाहरी पटरी भीतरी से कुछ ऊँची होती है। साइकिल व मोटरसाइकिल रेस के पथ मोड़ों पर वक्रता-केंद्र की ओर झुके होते हैं। पेशेवर मोटरसाइक्लिस्ट खड़ी ढलान वाले पथों पर भी बिना किसी डर के मोटरसाइकिल चला सकते हैं।
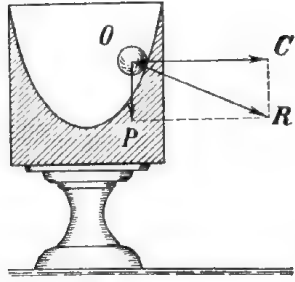
चित्र 36. यदि गिलास को पर्याप्त वेग से घूर्णित रखा जाये तो गोली पेंदी की ओर नहीं लुढ़केगी।

यदि विशेष वेग से घूर्णनरत चबूतरे के तल को ऐसी वक्रता प्रदान की जाये कि उसके हर बिंदु पर प्राप्त परिणामी गति की दिशा उसके अभिलंब हो, तो उसके किसी भी बिंदु पर आप नहीं महसूस करेंगे कि आप ढलान पर खड़े हैं; आपको लगेगा कि आप क्षैतिज तल पर खड़े हैं। गणितीय कलनों से ज्ञात है कि इस तरह के वक्रतल का एक विशेष ज्यामितीय रूप होता है – **परवलयी**। यदि गिलास को पानी से आधा भर कर उदग्र अक्ष के गिर्द नचाया जाये, तो पानी का क्षैतिज तल परवलयी तल में परिणत हो जायेगा: किनारी पर पानी ऊपर उठ आयेगा और बीच में गहरा गड्ढा सा बन जायेगा।

यदि हम पानी की जगह पिघला हुआ मोम लें और गिलास को मोम के जम जाने तक घूर्णित रखें, तो हमें परवलयी तल प्राप्त हो जायेगा। वेग-विशेष पर ऐसा तल भारी पिंडों के लिये क्षैतिज तल का काम करता है। उदाहरणार्थ, उसके किसी बिंदु पर रखी गयी गोली नीचे नहीं लुढ़केगी, उसी ऊंचाई पर स्थित रहेगी (चित्र 36)।

अब आप "तिलस्मी" गोले की बनावट समझ सकते हैं।

यह परवलयी तल वाला एक बहुत बड़ा चबूतरा होता है (चित्र 37)। इसकी घूर्णन-गति शांत व बिना किसी झटके की होती है, फिर भी उस पर खड़े लोगों के सर में चक्कर आना शुरू हो जाता है। इससे बचने के लिये चबूतरे को एक अल्पपारदर्शी काँच के गोले में बंद रखते हैं। गोला चबूतरे के साथ घूर्णन करता रहता है। चबूतरे पर घूमते व्यक्ति को जब परिवेशी वस्तुएं उसी की गति से घूमती दिखती हैं, तो वह अपनी गति का अवलोकन नहीं कर पाता; उसे सब कुछ अचल सा प्रतीत होता है और उसका सर नहीं घूमता।

तिलस्मी गोला नामक इस मोहक घुरनी की बनावट यही है। इसके भीतर चबूतरे पर खड़े हो कर आप क्या अनुभव करते हैं? आप चाहे
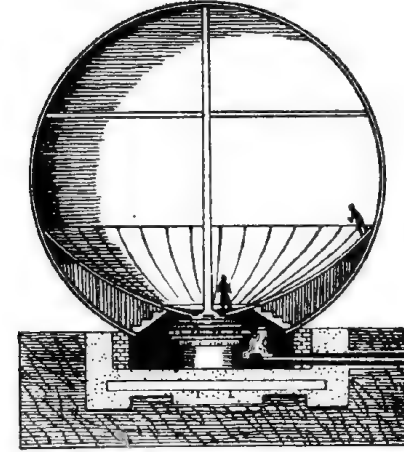
चित्र 37. "तिलस्मी" गोला (अनुच्छेद)।

अक्ष के समीप खड़े हों या उससे दूर, जहां 45° की ढलान है, हर बिंदु पर आपको लगेगा कि आप क्षैतिज समतल पर खड़े हैं। आँखें साफ-साफ दिखाती हैं कि चबूतरे का तल वक्र है, पर पेशियों की संवेदना बताती है कि पैरों तले जमीन समतल है।

दोनों संवेदनाओं का यह परस्पर विरोध ही उन विचित्र अनुभूतियों का कारण है, जिसे आप गोले में प्राप्त करते हैं। उदाहरणार्थ, यदि आप चबूतरे के एक छोर से दूसरे पर पहुँचेंगे, तो आप को लगेगा कि गोला आपके भार से इस ओर झुक गया है और वह भाग, जहां आप पहले खड़े थे, ऊपर उठ आया है। कारण स्पष्ट है: आपको हर जगह लगता है कि आप समतल पर खड़े हैं। चबूतरे की ढलान पर खड़े लोगों की स्थिति और भी विचित्र लगेगी। वे छत पर रेंगती मक्खियों की तरह उल्टा लटके नजर आयेंगे (चित्र 38)।

चबूतरे पर गिरा हुआ पानी उसके पूरे वक्र तल पर फैल कर समान मुटाई की परत बना लेगा। लोगों को प्रतीत होगा कि उनके सामने पानी की ढालू दीवार खड़ी है।
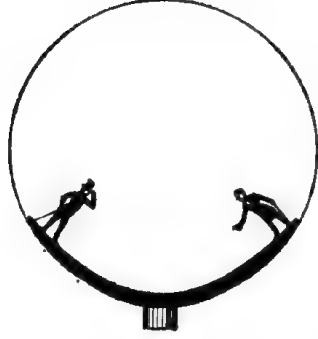
चित्र 38. "तिलस्मी" गोले में लोगों की वास्तविक स्थिति।
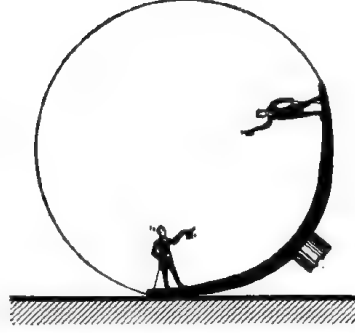
चित्र 39. हरेक सोचता है कि जमीन पर सिर्फ वही खड़ा है।

आप देखते हैं कि गुरुत्व नियम की आम धारणायें यहां नष्ट हो जाती हैं और हम परिकथाओं की जादुई दुनिया में पहुँच जाते हैं...।

विमान-चालकों को हवाई जहाज घुमाते वक्त ऐसी ही अनुभूति होती है। मान लें कि वह 200 km प्रति घंटे की चाल से उड़ रहा है। पथ
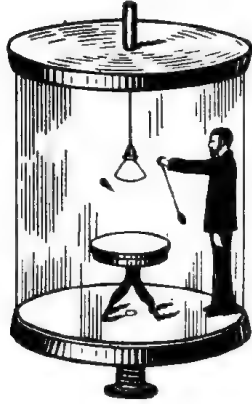
चित्र 40. घूर्णनरत प्रयोगशाला – वास्तविक स्थिति।

चित्र 41. उसी प्रयोगशाला की प्रतीयमान स्थिति।

की वक्रता-त्रिज्या 500 m है। चालक को जमीन थोड़ी उभरी हुई 16° की ढलान बनाती नजर आयेगी।

जर्मनी के हेटिंग्टन शहर में ऐसी ही एक घूर्णनरत प्रयोगशाला बनायी गयी थी, जिसका आकार बेलनाकार कमरे जैसा था (चित्र 40)। इसका व्यास 3 m था और प्रति सेकेंड 50 चक्करों की चाल से नाचता था। चूँकि फर्श समतल था, अंदर खड़े प्रेक्षक को लगता था कि कमरा पीछे की ओर झुक गया है और वह पीठ के सहारे दीवार पर अधलेटी स्थिति में पड़ा हुआ है (चित्र 41)।

द्रव निर्मित दूरदर्शी

परावर्तक दूरदर्शी के दर्पण का इष्टतम रूप परवलयी ही है। यह वही परवलयी तल है, जो घूर्णनरत बरतन में रखे द्रव की सतह का रूप होता है। दर्पण को ऐसा रूप देने के लिये दूरदर्शी बनाने वालों को काफी कड़ी मिहनत करनी पड़ती है। दूरदर्शी का दर्पण बनाने में वर्षों का समय व्यतीत होता है। पर अमेरिकन भौतिकविद वुड ने इन परेशानियों से बचने के लिये **द्रव से एक दर्पण** बना लिया। उन्होंने एक चौड़े बरतन में पारे को घूर्णित कर एक आदर्श परवलयी तल प्राप्त किया, जो दर्पण का काम कर सकता था, क्योंकि पारा प्रकाश का अच्छा परावर्तक है। वुड का दूरदर्शी एक कम गहरे कुएं में रखा गया था। गतिदायक पट्टी पारे के बरतन के साथ-साथ उसमें प्रतिबिंबित प्रो. वुड की शक्ल भी घुमाती रहती थी।

इस दर्पण की कमी यह है कि हल्की सी ठोकर भी सतह पर हिलकोरें ला देती है, जिससे प्रतिबिंब विकृत हो उठता है। इसके अतिरिक्त, दर्पण सिर्फ क्षैतिज स्थिति में रखा जा सकता है, अतः इसके सहारे आप सिर्फ उन्हीं नक्षत्रों का अवलोकन कर सकते हैं, जो नभ में ठीक दर्पण के ऊपर (खमध्य में) हैं।

आश्चर्य नहीं कि बनावट में इतना सरल होने के बावजूद भी प्रो. वुड के पारद दूरदर्शी का कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं हो पाया। इसे गंभीरता से कोई ले भी नहीं रहा था – न ही आविष्कारक और न ही तत्कालीन भौतिकविद।

उदाहरणार्थ, ए. जी. वेब्स्टर ने, जो अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में भौतिकी विभाग के अध्यक्ष थे, इस मौलिक उपकरण को देखने के बाद निम्न पंक्तियां लिख कर छोड़ गये:

डिंग, डौंग – घंटा बोला,
कुएं में प्रो. डोला
क्या रखा उसमें आस से?
कठौता भरा बकवास से।
और क्या लाये साथ?
कुछ नहीं, आये खाली हाथ।

"शैतान का फंदा"

आपने सरकस में साइकिल का एक कौशल देखा होगा। आदमी नीचे से ऊपर की ओर साइकिल चलाता हुआ गोल पथ तय करता है। इस पथ के ऊपरी भाग पर उसे पैर ऊपर व सर नीचे किये हुए चलना पड़ता है। इसके लिये लीला स्थल पर लकड़ी का एक पथ रखा जाता है, जिसका रूप फंदे जैसा होता है (चित्र 42)। उसमें एक से अधिक फंदे भी हो सकते हैं। कलाकार साइकिल चलाता हुआ पथ के ढालू भाग से उतरता है और फिर तेजी से ऊपर चढ़ता हुआ गोल चक्कर लगाता है। इस क्रिया में उसके पैर ऊपर हो जाते हैं और सर नीचे, लेकिन वह गिरता नहीं है; सकुशल वापस लौट आता है।[1]

साइकिल का यह सर चकरा देने वाला कौशल दर्शकों को कलाबाजी का शिखर प्रतीत होता है। लोग सोचते हैं कि कोई रहस्यमय अलौकिक शक्ति ही साइकिल सवार को गिरने से रोकती है। उन्हें यह भी शक होता है कि इसमें कोई धोखा है। पर इस ट्रिक के पीछे कोई दिव्य चमत्कार नहीं है। इसे यांत्रिकी के नियमों से समझाया जा सकता है। इस पथ पर यदि भारी गेंद भी तेजी से लुढ़का दिया जाये, तो वह भी नहीं गिरेगा। स्कूलों में भौतिकी की प्रयोगशालाओं में भी ऐसे फंदों का नन्हा प्रतिमान देखा जा सकता है।

---

[1] "शैतान के फंदे" का आविष्कार सरकस के दो कलाकारों ने एक ही साथ 1902 ई. में किया था। एक का नाम था "दियाबोलो" (जोन्सन) और दूसरे का "मेफिस्तो" (नुवाजेत)। दियाबोलो और मेफिस्तो शैतान के नाम हैं।
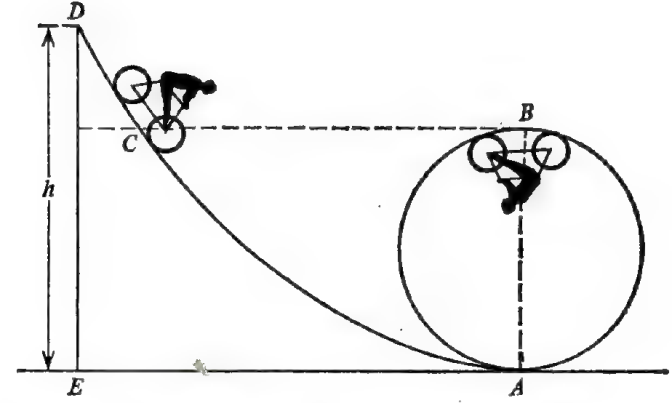
चित्र 42. "शैतान का फंदा"। कलन के लिये आरेख।

इस कलाबाजी के विख्यात आविष्कारक एवं प्रदर्शक कलाकार "मेफिस्तो" फंदे की मजबूती जाँचने के लिये एक गोला रखते थे, जिसका भार सवार समेत साइकिल के भार के बारबर था। गोले को फंदे के पथ पर तेजी से लुढ़काया जाता था। यदि गोला पूरा पथ सकुशल तय कर लेता था, तब कलाकार अपनी कला दिखाने को तैयार होते थे।

पाठक बेशक समझ गये होंगे कि इस विचित्र संवृत्ति का कारण वही है, जो घूमती बाल्टी से पानी को गिरने से रोकता है (पृ. 65)। पर ट्रिक हमेशा सफल नहीं होता। जिस स्थान से साइकिल सवार अपनी गति आरंभ करता है, उसकी ऊँचाई का सही-सही कलन कर लेना चाहिये, अन्यथा दुर्घटना हो जायेगी।

सरकस का गणित

मैं जानता हूँ कि भौतिकी के कुछ प्रेमी ऐसे भी हैं, जो नीरस सूत्रों को देख कर डर जाते हैं। पर घटनाओं के गणितीय पक्ष को जानने से इन्कार करने पर हम उनके बारे में न कोई भविष्यवाणी कर सकते हैं,

न उन परिस्थितियों को ही निर्धारित कर सकते है, जो दी हुई घटनाओं के लिये आवश्यक हैं। उदाहरणार्थ, "शैतानी फंदे" जैसी कलाबाजी दिखाने के लिये आवश्यक बातें दो-तीन सूत्रों की सहायता से ज्ञात हो जा सकती हैं।

आइये, कलन करते हैं।

आरंभ करते हैं वर्णों द्वारा कलन के लिये आवश्यक राशियों के द्योतन से :

वर्ण h द्वारा द्योतित करते हैं ऊँचाई, जिससे कलाकार साइकिल लुढ़काना आरंभ करता है ;

वर्ण x द्वारा ऊँचाई h के उस भाग को द्योतित करते हैं, जो "फंदे" के उच्चतम बिंदु से ऊपर है ; चित्र 42 से स्पष्ट है कि $x=h-AB$; वर्ण r द्वारा फंदे की त्रिज्या द्योतित करते हैं ;

वर्ण m द्वारा – सवार व साइकिल का सम्मिलित द्रव्यमान ; उनका सम्मिलित भार होगा mg, जहाँ :

वर्ण g द्वारा पृथ्वी के गुरुत्व-बल से प्राप्त त्वरण को द्योतित किया गया है ; ज्ञात है कि $g=9.8$ m प्रति सेकेंड प्रति सेकेंड ;

वर्ण v उस क्षण पर साइकिल का वेग द्योतित करता है, जब वह वृत्त के उच्चतम बिंदु पर पहुँचता है।

इन सभी राशियों को दो समीकरणों की सहायता से संबद्ध किया जा सकता है। यांत्रिकी से ज्ञात है कि ढालू पथ के बिंदु C पर (जो बिंदु B जितना ही ऊँचा है) साइकिल का वेग उतना ही होगा, जितना उसका वेग फंदे के ऊपरी भाग के बिंदु B पर होगा (चित्र 41 में नीचे बायें,)। C पर साइकिल के लुढ़कने का वेग होगा [1]

$$v=\sqrt{2gx}, \text{ या } v^2=2gx$$

अतः बिंदु B पर साइकिल का वेग $v=\sqrt{2gx}$, अर्थात् $v^2=2gx$।

अब आगे चलें : साइकिल चालक वृत्ताकार पथ के ऊपरी भाग में पहुँच कर नीचे न गिर जाये, इसके लिये आवश्यक है कि केंद्रोन्मुखी त्वरण

[1] यहाँ हम चक्कों के घूर्णन की ऊर्जा को ध्यान में नहीं रखते, क्योंकि कलन के परिणाम पर उसका प्रभाव नगण्य होता है (दे. मेरी पुस्तक "आप को भौतिकी का ज्ञान है?" § 47)।

अधिक हो गुरुत्व के त्वरण से (दे. पृ 65-66), अर्थात्

$$\frac{v^2}{r}>g \text{ या } v^2>gr$$

पर हम निर्धारित कर चुके हैं कि $v^2=2gx$; अतः

$$2gx>gr \text{ या } x>\frac{r}{2}.$$

अंतिम असमिका बताती है कि सफलतापूर्वक खेल दिखाने के लिये ढालू पथ की चोटी फंदे के शिखर से ऊँची होनी चाहिये। कितनी ? फंदे की $\frac{1}{2}$ त्रिज्या से अधिक। पथ की ढलान का कोई महत्त्व नहीं होता। मुख्य बात यह है कि जिस बिंदु से साइकल चलती है, उसे फंदे से उसके $1/4$ व्यास ऊपर होना चाहिये। उदाहरणार्थ, यदि फंदे का व्यास 16 m है, तो कलाकार को साइकिल लुढ़काने का काम 20 m से अधिक की ऊँचाई से शुरू करनी चाहिये ; कम से नहीं, अन्यथा उसका गिरना अवश्यंभावी हो जायेगा। यह ट्रिक की आवश्यक शर्त्त है।

हमारा कलन साइकिल में उपस्थित घर्षण बल को ध्यान में नहीं रखता : हम यह मान कर चलते हैं कि बिंदु B व बिंदु C पर साइकिल का वेग समान रहता है। अतः फंदे तक पहुँचने लिये पथ के ढालूपन को कम नहीं करना चाहिये ; इससे पथ की लंबाई बढ़ जायेगी। और इसके फलस्वरूप साइकिल का वेग बिंदु B पर बिंदु C की तुलना में कम हो जायेगा।

आप इस पर भी ध्यान दें कि इस कला के प्रदर्शन में साइकिल का चेन निकाल लिया जाता है। पैडल मारने की जरूरत नहीं पड़ती ; साइकिल सिर्फ गुरुत्व के प्रभाव से गतिमान रहती है। चेन के बिना कलाकार न तो साइकिल की चाल तेज कर सकता है, न धीमी। और उसे यह करना भी नहीं चाहिये। उसकी कला इसी में है कि वह काष्ठ-पथ की लीक पर साइकिल स्थिर रख सके। थोड़ा भी इधर-उधर होने पर पथ से विचलित होने और गिर जाने का खतरा होता है। वृत्ताकार पथ पर वेग काफी अधिक होता है : व्यास 16 m होने पर साइकिल 3 सेकेंड में एक चक्कर पूरा करती है। यह प्रति घंटे 60 m के तुल्य है। इस वेग से चलने पर साइकिल को नियंत्रण में रखना मुश्किल होता है ; पर इसकी

आवश्यकता भी नहीं है। यांत्रिकी के नियम काफी हैं। "साइकिलबाजी का यह कौशल, – एक पेशेवर कलाकार लिखते हैं, – खतरनाक नहीं है, यदि सारे कलन सही हैं। खतरा खुद कलाकार में होता है। यदि कलाकार का हाथ काँप जाये, वह आत्मनियंत्रण खो बैठे या अचानक उसका सर चकराने लगे, तो दुर्घटना की संभाव्यता तेजी से बढ़ जाती है।"

विमान-संचालन में "मृत-फंदा" आदि जैसी कलाबाजियां इन्हीं नियमों पर आधारित हैं। "मृत-फंदे" में विमान को वक्र पथ पर सही वेग देने और उसे पूरी तरह नियंत्रण में रखने की समस्या मुख्य भूमिका अदा करती है।

डंडीमारी

किसी ने मजाक में कहा कि वह डंडी मारने की एक गुप्त विधि जानता है। उसने बताया कि माल विषुवत रेखा के पास खरीदना चाहिये, और बेचना चाहिये ध्रुववर्ती देशों में। सभी जानते होंगे कि विषुवत रेखा के समीप वस्तुओं का भार कुछ कम होता है और ध्रुव के पास कुछ अधिक। विषुवत रेखा के पास यदि किसी वस्तु का भार 1 kg है, तो ध्रुव पर उसके भार में 5 g की वृद्धि हो जायेगी। लेकिन यहां साधारण तुला से काम नहीं चलेगा: वस्तु के भार के साथ-साथ बाटों का भार भी बढ़ जायेगा। इस काम के लिये कमानीदार तुला चाहिये, और वह भी ऐसी, जिसमें भारों का निशान विषुवत रेखा के पास लगाया गया हो। अन्यथा आपको कोई लाभ नहीं होगा। वैसे भी, डंडीमारी की यह विधि इतनी लाभदायक नहीं है। यदि पेरू के पास एक टन सोना खरीदा जाये, और उसे आइसलैंड में बेचा जाये, तब कहीं कुछ फायदा होगा; और वह भी उस हालत में, जब यातायात का साधन मुफ्त का हो।

मैं नहीं सोचता कि इस व्यापार से कोई बहुत मालामाल हो जायेगा, पर मजाक में सत्य का कुछ अंश जरूर है: विषुवक (विषुवत रेखा) से दूर जाने पर भार में सचमुच कमी आ जाती है। इसके दो कारण हैं। प्रथमतः, पृथ्वी के घूर्णन के कारण विषुवक पर स्थित पिंड सबसे बड़ा वृत्त निरूपित करता है। और दूसरे, पृथ्वी का गोला विषुवक पर कुछ फूला सा है।

पर भार में अधिकांश कमी का कारण घूर्णन है। यह ध्रुव से विषुवक पर लाये गये पिंड के भार में $^1/_{290}$ अंश की कमी ला देता है।

कम भारी पिंडों को एक अक्षांश से दूसरे पर लाने से उनके भारों में कमी नगण्य होती है। पर अधिक भारी वस्तुओं के लिये यह राशि पर्याप्त बड़ी हो सकती है। किसी ने संदेह नहीं किया होगा कि मास्को में 60 टन भार रखने वाला रेल-इंजन अर्खांगेल्सक में 60 kg अधिक भारी हो जाता है और ओडेसा में उतना ही हल्का हो जाता है।

श्पित्सबेर्गेन द्वीप से एक जमाने में 300 000 टन से अधिक कोयला भेजा जाता था। यदि कोयले की यह मात्रा किसी विषुवकवर्ती बंदरगाह पर आती और वहाँ कोयले को कमानीदार तुला पर तौला जाता, तो पता चलता कि 1200 टन कोयला घट रहा है। अर्खांगेल्सक में 20 000 टन भार रखने वाला जहाज विषुवकवर्ती सागरों में 80 टन भार खो देता है। हम इसे महसूस नहीं करते, क्योंकि अन्य सभी वस्तुएं भी इसी अनुपात में हल्की हो जाती हैं। खुद सागर का पानी ध्रुव की अपेक्षा विषुवक पर अधिक हल्का होता है।[1]

यदि पृथ्वी का गोला अपने अक्ष के गिर्द और तेजी से घूर्णन करता, तो ध्रुव व विषुवक पर वस्तुओं के भारों में और गहरा अंतर होता। उदाहरणार्थ, यदि पृथ्वी इतनी तेजी से घूर्णन करती कि एक दिन-रात 24 घंटे का नहीं होकर 4 घंटे का होता, तो ध्रुव पर 1 kg भार रखने वाला पिंड विषुवक पर सिर्फ 875 g भारी होता। शनि ग्रह पर लगभग ऐसी ही स्थिति है: वहाँ विषुवक की तुलना में ध्रुव पर पिंड का भार $^1/_8$ भाग अधिक होता है।

केंद्रोन्मुखी त्वरण वेग के वर्ग के समानुपाती होता है, अतः कलन द्वारा सरलतापूर्वक वह घूर्णन-वेग ज्ञात किया जा सकता है, जिसके लिये केंद्रोन्मुखी त्वरण 290 गुना अधिक हो जाये। यह तब होगा, जब पृथ्वी अपने वर्तमान वेग से 17 गुना अधिक तेज घुर्णन करने लगे ($17 \times 17 = 290$ लगभग)। इस अवस्था में वस्तुएं अपने अवलंब पर दबाव डालना बंद कर देंगी। दूसरे शब्दों में, यदि पृथ्वी 17 गुना अधिक तेजी से घूर्णन करने लगेगी, तो विषुवक पर वस्तुओं का भार कुछ भी नहीं रह जायेगा। शनि पर यह स्थिति उसके 2.5 गुना तेजी से घूमने पर ही आ जायेगी।

---

[1] इसी लिये विषुवकवर्ती क्षेत्रों में जहाज का उतना ही भाग पानी में डूबा रहता है, जितना ध्रुववर्ती क्षेत्रों में।

6–567

अध्याय 4

गुरूत्वाकर्षण बल

गुरुत्वाकर्षण बल की मात्रा

"यदि हम वस्तुओं का हमेशा नीचे गिरना नहीं देखते, तो हमारे लिये यह अत्यंत आश्चर्य की बात होती" – विख्यात फ्रांसीसी खगोलशास्त्री अरागो ने यह लिखा था। हम इस बात के आदी हो गये हैं कि पृथ्वी हर पार्थिव वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है, इसीलिये यह संवृत्ति सामान्य व नैसर्गिक प्रतीत होती है। लेकिन जब हमें कहा जाता है कि दुनिया में सभी वस्तुएं एक दूसरे को आकर्षित करती हैं, तो विश्वास मुश्किल से होता है। कारण यह है कि दैनंदिन जीवन में हमें ऐसी कोई बात देखने को नहीं मिलती।

आखिर क्या बात है कि साधारण परिस्थितियों में हमारे इर्द-गिर्द गुरूत्वाकर्षण-बल अपने व्यापक रूप में प्रकट नहीं होता? टेबुल, लोग, तरबूज आदि क्यों नहीं एक दूसरे को आकर्षित करते? क्योंकि छोटी वस्तुओं के बीच गुरूत्वाकर्षण-बल नगण्य होता है: औसत भार वाले दो व्यक्तियों के बीच इस बल का मान सिर्फ 1/100 मिलिग्राम होता है। इसका अर्थ है कि दो आदमी एक दूसरे को अपनी ओर उसी बल से खींचते हैं, जिससे 1/100 000 ग्राम का बाट तराजू के पलड़े को दबाता है; इतने नन्हे बोझ का पता विज्ञान-प्रयोगशालाओं में व्यवहृत अतिसंवेदनशील तुला ही दे सकती है। स्पष्ट है कि ऐसा बल किसी व्यक्ति को अपने स्थान से नहीं खिसका सकता, – इसमें जूते और फर्श के बीच का घर्षण बाधक होगा। लकड़ी के फर्श पर खड़े आदमी को घसीटने के लिये 20 kg से अधिक का बल चाहिये (जूते के तल्ले और लकड़ी के फर्श के बीच क्रियाशील घर्षण-बल का मान आदमी के भार का 30% जितना होता है)। इतने बड़े बल के साथ मिलिग्राम के शतांश जितने गुरूत्वाकर्षण-बल की तुलना करना हास्यास्पद ही है। मिलिग्राम एक ग्राम का हजारवां अंश है; अर्थात 0,01 mg हमें खिसका सकने वाले बल का **एक अरबवां अंश**
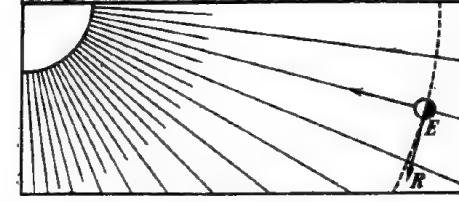
चित्र 43. सूर्य का गुरूत्वाकर्षण पृथ्वी E का पथ वक्रित कर देता है। जड़त्व के कारण पृथ्वी स्पर्शरेखा ER पर भागने को प्रवृत्त रहती है।

है। इसीलिये इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं होनी चाहिये कि आम परिस्थितियों में पार्थिव पिंडों के बीच लागू आकर्षण-बल का लेश मात्र भी दर्शन नहीं होता।

यदि घर्षण नहीं होता, तो बात दूसरी होती; पिंडों को निकट लाने में इन क्षीण बलों का कोई बाधक नहीं होता। पर 0.01 mg बल से लोग बहुत मंद गति से एक दूसरे की ओर खिंचेंगे। कलन किया जा सकता है कि घर्षण की अनुपस्थिति में एक दूसरे से दो मीटर की दूरी पर खड़े दो व्यक्तियों को यह बल प्रथम घंटे में सिर्फ 3 cm निकट लायेगा; अगले घंटे में उनके बीच की दूरी और 9 cm कम हो जायेगी। तीसरे घंटे के दरम्यान वे 15 cm और नजदीक हो जायेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि गति बढ़ती जायेगी, पर दोनों व्यक्ति एक दूसरे से सट जायेंगे, इसमें 5 घंटे से कम समय नहीं लगेगा।

घर्षण जैसी बाधा की उपस्थिति में भी पार्थिव पिंडों के पारस्परिक आकर्षण का पता लगाया जा सकता है। धागे से लटका हुआ मनका पार्थिव आकर्षण के प्रभाव में होता है, अतः धागे की दिशा उदग्र होती है। यदि निकट कोई भारी पिंड हो, तो वह मनके को अपनी ओर आकर्षित करेगा। फल यह होगा कि धागा अपनी उदग्र दिशा से विचलित हो जायेगा। अब उसकी दिशा मनके को आकर्षित करने वाले दो बलों – पृथ्वी और पिंड के आकर्षण-बलों – के परिणामी बल की दिशा बतायेगी। मनके के इस विचलन का प्रथम अवलोकन स्कौटलैंड के मास्केलाइन ने 1775 ई. में एक पहाड़ के निकट किया था। उसने पहाड़ के दोनों तरफ से शाहुल और तारक-नभ के ध्रुव की दिशाओं की तुलना की। इसी के बाद

पार्थिव पिंडों के आकर्षण संबंधी अधिक परिष्कृत प्रयोग कार्यान्वित किये गये, जिनमें विशेष बनावट वाली तुला की सहायता से गुरुत्वाकर्षण-बल का अधिक शुद्ध मान ज्ञात किया जा सका।

कम द्रव्यमान वाले पिंडों के बीच गुरुत्वाकर्षण-बल नगण्य होता है। द्रव्यमानों के बढ़ने पर वह उनके गुणनफल के अनुपात में बढ़ता है। इसी तथ्य के आधार पर बहुत से लोग इस बल का अतिमूल्यांकन करने लग जाते हैं। एक वैज्ञानिक, – वैसे वे भौतिकविद नहीं, जीवशास्त्री थे, – मुझे विश्वास दिलाना चाहते थे कि समुद्री जहाजों के पारस्परिक खिंचाव का कारण गुरुत्वाकर्षण-बल ही है! कलन द्वारा दिखाया जा सकता है कि इस खिंचाव के पीछे गुरुत्वकर्षण की कोई भूमिका नहीं है। 25000 टन भार वाले दो जहाज 100 m की आपसी दूरी से एक दूसरे को सिर्फ 400 g के गुरुत्वाकर्षण-बल से खींचते हैं। स्पष्ट है कि इतना क्षीण बल इतने बड़े जहाजों को बाल भर भी अपने स्थान से नहीं खिसका सकता। जहाजों के बीच इस रहस्यमय खिंचाव का कारण हम द्रवों के गुण वाले अध्याय में समझायेंगे।

गुरुत्वाकर्षण-बल का प्रभाव तब महत्त्व रखता है, जब विराट ख-पिंडों की बात चल रही होती है। नेपचून ग्रह हमसे काफी दूर है, पर पृथ्वी को 18 टन के तुल्य गुरुत्वाकर्षण-बल से प्रभावित करता है। पृथ्वी सूरज से इतनी दूर है, पर गुरुत्वाकर्षण-बल के कारण ही वह अपनी कक्षा पर स्थित है। यदि सूर्य की आकर्षण-शक्ति किसी कारणवश नष्ट हो जाये, तो पृथ्वी अपने अक्ष की स्पर्शरेखा की दिशा में भाग जाती और ब्रह्मांड की गहराइयों में अनंत काल तक बिना किसी ठौर-ठिकाने के भटकती रहती।

पृथ्वी को रोकने के लिये फौलादी रस्सा

कल्पना कीजिये कि सूर्य की आकर्षण-शक्ति सचमुच लुप्त हो गयी है और पृथ्वी की क़िस्मत में सदा के लिये ठंडे और अंधेरे ब्रह्मांड में भटकना रह गया है। इंजिनियर लोग पृथ्वी को रोकने के लिये गुरुत्वाकर्षण-बल के अदृश्य बंधन की जगह मूर्त्त फौलादी रस्से का इस्तेमाल करना चाहते हैं। वे इस रस्से से पृथ्वी को सूर्य के साथ बांधना चाहते हैं, ताकि वह भागे नहीं, अपने अक्ष पर बनी रहे। कहना नहीं होगा कि यह सब कल्पना की बात है, पर फौलादी रस्से के बारे में थोड़ा सोचें। फौलाद से बढ़ कर मजबूत चीज और क्या होगी, जो हर वर्ग मिलिमीटर पर 100 kg का तनाव सहन कर सके। अब आप 5 m व्यास वाले विराट लौह-स्तंभ की कल्पना करें। उसके अनुप्रस्थ-काट का क्षेत्रफल लगभग 20 000 000 वर्ग मिलिमीटर होगा; अतः यह खंभा 20 000 000 टन के तनाव से टूट सकता है। अब कल्पना करें कि ऐसे ही अत्यंत लंबे खंभे (या खंभे जितने मोटे फौलादी तार) से पृथ्वी को सूर्य के साथ बांधना है। आप जानते हैं कि पृथ्वी को उसके अक्ष पर रोके रखने के लिये ऐसे कितने खंभों की जरूरत पड़ेगी? करोड़ो करोड़। सूर्य की ओर वाले पृथ्वी के पूरे अर्द्ध पर यदि इन खंभों का घनघोर जंगल बना दिया जाये, और ये सारे खंभे सूर्य से जुड़े हों, तब जाकर काम चल सकता है। इतने तारों को ऐंठ कर बने रस्से को तोड़ने वाले बल की यदि आप कल्पना कर सकें, तो आप समझ जायेंगे कि पृथ्वी और सूर्य के बीच गुरुत्वाकर्षण-बल का अदृश्य बंधन कितना विराट है।

और यह विराट बल करता क्या है? पृथ्वी को स्पर्शरेखा से प्रति सेकेंड 3 mm का विचलन देते हुए उसके पथ को वक्रित करता रहता है। इसी के कारण पृथ्वी का पथ बंद दीर्घवृत्तीय घेरे जैसा होता है। आश्चर्य की बात है कि पृथ्वी को प्रति सेकेंड 3 mm (अर्थात इन अक्षरों की ऊँचाई के बराबर) खिसकाने के लिये इतने बड़े बल की आवश्यकता पड़ती है! यदि यह विराट बल पृथ्वी को इतना नगण्य स्थानांतरण देता है, तो इससे आप पृथ्वी के द्रव्यमान का अंदाजा लगा सकते हैं। कितना बड़ा है वह!

गुरुत्वाकर्षण-बल के प्रभाव से कैसे बचें?

अभी हमने कल्पना-दृष्टि से देखा कि पृथ्वी और सूर्य को जोड़ने वाले गुरुत्वाकर्षण-बल के अदृश्य बंधन के टूट जाने पर पृथ्वी ब्रह्मांड में भटकना शुरू कर देगी। अब देखें कि पृथ्वी पर स्थित वस्तुओं के साथ क्या होगा, यदि गुरुत्व का लोप हो जाये। वस्तुओं को हमारे ग्रह पर रोक रखने वाला बंधन नष्ट हो जायेगा, वे हल्का सा भी ठोकर लगने पर ब्रह्मांड में उड़ना शुरू कर देंगी। ठोकर देने की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी: हमारे ग्रह का घूर्णन उन सभी वस्तुओं को व्योम में फेंक देगा, जो उसके साथ मजबूती से नहीं जुड़ी हैं।

अंग्रेज लेखक वेल्स ने इस विचार का उपयोग अपने उपन्यास में चंद्रमा की काल्पनिक यात्रा का वर्णन करने के लिये किया है। "चंद्रमा के प्रथम यात्री" नामक इस कृति में उपन्यासकार ने अंतर्ग्रही यात्राओं की एक मौलिक विधि बतायी है। उपन्यास का नायक कैवर एक विशेष प्रकार के पदार्थ का आविष्कार करता है, जो गुरुत्वाकर्षण-बल के लिये अबेध्य होता है। किसी पिंड के नीचे इस पदार्थ की एक परत बना देने पर पिंड पृथ्वी के आकर्षण-बल के बंधन से मुक्त हो जाता है। इस काल्पनिक पदार्थ का नाम वेल्स ने "कैवरीट" रखा।

उपन्यास का एक अवतरण पढ़ें:

"हम जानते है कि गुरुत्वाकर्षण, या गुरुत्व बल, सभी वस्तुओं के आर-पार जा सकता है। प्रकाश के मार्ग में दीवार डाल कर आप उसे वस्तु तक पहुँचने से रोक सकते हैं। रेडियो या टेलीग्राफ संचार के वैद्युत-तरंगों का पथ धातुई चद्दर से रोका जा सकता है। पर वस्तु को सूर्य या पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से बचाने वाला कोई कवच नहीं है। प्रकृति में ऐसे पदार्थ की अनुपस्थिति का कारण ज्ञात नहीं है, पर कैवर के विचार में गुरुत्व के लिये अवेध्य पदार्थ बनाया जा सकता है और वह सोचता है कि बना भी लेगा।

यदि किसी में थोड़ी भी विचारशक्ति हो, तो वह सरलतापूर्वक ऐसे पदार्थ के लाभ की कल्पना कर सकता है। यदि कोई भार उठाना हो, तो उसके नीचे इस पदार्थ का चदरा बिछा देना काफी रहेगा। वस्तु कितनी भी भारी क्यों न हो, उसे उठाना बिल्कुल कठिन नहीं रह जायेगा।"

ऐसे पदार्थ का आविष्कार कर लेने के बाद उपन्यास का नायक एक यान बनाता है, जिसमें चंद्रमा की यात्रा को निकल पड़ता है। यान की बनावट जटिल नहीं है। उसमें कोई चलित्र (मोटर) नहीं है; वह नक्षत्रों के गुरुत्वाकर्षण-बल से चलता है।

यान की बनावट का वर्णन देखें:

"आप मोटे काँच के एक बड़े गेंद की कल्पना करें, जिसमें आवश्यक सामान सहित दो आदमी अँट सकते हैं। यह गेंद एक फौलादी गेंद के भीतर ठीक-ठीक अँट जाता है। साथ में आप संघनित वायु, जलासवन यंत्र, सांद्रित खाद्य-सामग्री आदि रख ले सकते हैं। फौलादी गेंद पर बाहर से "कैवरीट" की परत चढ़ी होगी। अंदरूनी काँच का खोल दरवाजे की जगह छोड़ कर

सर्वत्र एकाश्म होगा। फौलादी गेंद अलग-अलग खिड़कियों में बँटा होगा। हर खिड़की पर्दे की तरह मोड़ी जा सकेगी। इसके लिये विशेष कमानियों व विद्युत का प्रयोग करना होगा। बिजली भीतर से खिड़कियों तक प्लैटिनम के तारों की मदद से लायी जायेगी। ये सब तो तकनीकी विवरण हुए। मुख्य बात यह है कि बाहरी खोल "कैवरीट" के पर्दों से बना होगा, जो जरूरत पड़ने पर हटाये जा सकेंगे। जब सारे पर्दे गिरे होंगे, यान के भीतर कोई भी किरण के रूप में बाह्य ऊर्जा नहीं आ सकेगी—चाहे वह प्रकाश हो, या किरण के रूप में कोई अन्य ऊर्जा, या गुरुत्वाकर्षण-बल। अब मान लें कि एक खिड़की खुली हुई है। इस स्थिति में खिड़की के सामने जो भी बड़ा पिंड होगा, यान को अपनी ओर खींचना शुरू कर देगा। व्यवहारतः ब्रह्मांड में हम किसी भी दिशा में यात्रा कर सकेंगे। इसके लिये सिर्फ आवश्यक दिशा में खिड़की खोलनी होगी।"

चंद्रमा की ओर

उपन्यासकार ने प्रस्थान का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। यान की सारी खिड़कियां बंद हैं। "कैवरीट" की परत के कारण वह बिल्कुल भारहीन हो गया है। आप समझते होंगे कि भारहीन वस्तु हवा के तल पर नहीं रह सकती। गहरे झील के तल पर रखा हुआ लकड़ी का हल्का काग जैसे तेजी से ऊपर उठता है, वैसे ही यान हवा में ऊपर उड़ना शुरू करता है और हवा की सीमा पर आकर काग की तरह ही हवा से ऊपर उछलता है और अंतरिक्ष में चलना शुरू कर देता है। पृथ्वी का घूर्णन भी उसे फेंकता हुआ उसकी उड़ान में सहायक होता है। उपन्यास के नायक इसी प्रकार अपनी यात्रा आरंभ करते हैं। अंतरिक्ष में वे कभी सूरज, तो कभी पृथ्वी, तो कभी चंद्रमा के आकर्षण बल से खिंचते हुए हमारे एकमात्र उपग्रह की सतह तक पहुँच जाते हैं। बाद में उनमें से एक यात्री इसी यान में पृथ्वी पर वापस भी लौट आता है।

वेल्स के विचार का विश्लेषण हम यहाँ नहीं करेंगे; यह मैं पहले कर चुका हूँ और दिखा चुका हूं कि इसका कार्यान्वयन संभव नहीं है।[1] फिलाहाल

---

[1] दे. "अंतर्ग्रही यात्रायें"।

उपन्यासकार की बातों का विश्वास कर लेते हैं और देखते हैं कि आगे क्या होता है।

चांद पर आधा घंटा

उपन्यास के पात्र एक ऐसी दुनिया में पहुँच गये हैं, जहाँ गुरुत्व-बल पृथ्वी की तुलना में अत्यंत क्षीण है। उनके विचित्र अनुभवों का रोचक वर्णन उन्हीं में से एक की मुजबानी सुनें: [1]

"मैंने ढक्कन घुमा कर खोलना शुरू किया। घुटनों पर खड़ा हो कर छेद में से बाहर झाँकने लगा; मेरे सर से तीन फूट की दूरी पर नीचे चांद का अक्षत हिम पड़ा हुआ था।

कैवर कंबल ओढ़ कर छेद की किनारी पर बैठ गया और सावधानी से पैर नीचे करने लगा। जमीन से करीब आधा फूट ऊपर तक पैर लटका चुकने के बाद वह थोड़ा हिचकिचाया और फिर कूद गया। उसके पैर अब चांद की धरती पर थे।

मैं शीशे के खोल में बैठा उसे देख रहा था। कुछ कदम चलने के बाद वह रुक गया, मिनट भर अपने इर्द-गिर्द देखता रहा और अंत में उसने आगे की ओर छलांग लगा दी।

शीशे से साफ नहीं दिख रहा था, पर मुझे लगा कि छलांग कुछ ज्यादा ही लंबी थी। कैवर एक छलांग में ही 6-10 मीटर दूर पहुँच गया था। वहाँ चट्टान पर खड़ा हो कर उसने मुझे कुछ इशारे किये; हो सकता है कि चिल्ला कर कुछ कहा भी हो,—पर आवाज मुझ तक नहीं आ रही थी... पर इतनी लंबी छलांग उसने कैसे लगा ली?

मैं चक्कर में पड़ा छेद के बाहर निकला और नीचे उतर आया। पैरों तले बर्फ थी। मैंने कदम उठाया और छलांग लगा दी.

मुझे लगा कि मैं उड़ रहा हूँ; पर जल्द ही उस चट्टान पर

---

[1] "चांद के प्रथम यात्री" उपन्यास का यह अवतरण बीच-बीच से कुछ छोड़ कर दिया जा रहा है।

उतर आया, जहाँ कैवर मेरा इंतजार कर रहा था। मैं आश्चर्य से किंकर्त्तव्यविमूढ़ चट्टान का कोना पकड़े लटका हुआ था।

कैवर झुका हुआ खसखसी आवाज में चिल्ला रहा था कि मुझे सावधानी बरतनी चाहिये। मैं तो बिल्कुल भूल गया था कि चांद पर गुरुत्व की प्रचंडता पृथ्वी से छे गुनी कम है। पर यहाँ की वास्तविकता स्वयं इस बात की याद दिला रही थी।

सावधानी से अपनी गति नियंत्रित करते हुए मैं चट्टान की चोटी पर चढ़ आया और गठिये के बीमार जैसा रेंगता हुआ कैवर के पास खड़ा हुआ। हमारा यान हमसे करीब 30 फूट की दूरी पर खड़ा था। उसके नीचे पड़ी बर्फ हल्के-हल्के पिघल रही थी।

—देखिये,—मैंने कैवर की ओर मुड़ते हुए कहा।

पर कैवर गायब था।

क्षण भर मैं आश्चर्य से ठगा खड़ा रहा। होश में आते ही चट्टान की किनारी से झांकने के लिये मैंने जल्दी-बाजी में एक कदम बढ़ाया। पृथ्वी पर यह कदम एक मीटर लंबा होता, पर मैं भूल गया था कि यह चांद है। यहाँ इस कदम से मैं अपने स्थान से 6 मीटर आगे बढ़ गया। मैं चट्टान की किनारी से 5 मीटर दूर था।

मैं चक्कर खाता हुआ गिर रहा था। अनुभव वैसा ही था, जैसे आप सपने में किसी खाई में गिरते जा रहे हों। पृथ्वी पर गिरता हुआ आदमी प्रथम सेकेंड में कोई 5 मीटर की दूरी तय करता है। चांद पर सिर्फ 80 सेंटीमीटर। इसीलिये मैं करीब 9 मीटर नीचे उड़ता हुआ बिना किसी चोट के जमीन पर पहुँच गया। मुझे लगा कि मैं काफी देर से गिर रहा था, पर इसमें तीन सेकेंड से अधिक नहीं लगे थे। मैं रूई के फाहे की तरह हौले से जमीन पर गिरा और घुटनों तक नर्म बर्फ में धँस गया।

—कैवर!—मैंने निगाहों से उसे ढूँढ़ते हुए पुकारा। पर वह कहीं नजर नहीं आ रहा था।

—कैवर!—मैंने और जोर से पुकारा।

अचानक मेरी नजर उस पर पड़ी: वह हँस रहा था। मुझसे करीब 20 मीटर की दूरी पर खड़ा वह मुझे कुछ इशारे कर रहा था। उसकी आवाज मुझे सुनायी नहीं दे रही थी, पर उसके इशारों

का अर्थ मैं समझ गया: वह मुझसे अपनी ओर छलांग लगाने को कह रहा था।

पहले तो मैं थोड़ा हिचकिचाया, क्योंकि हम दोनों के बीच दूरी बहुत बड़ी थी। पर मैंने सोचा कि यदि कैंवर इतनी लंबी छलांग लगा सकता है, तो शायद मैं भी लगा लूंगा।

एक कदम पीछे हट कर मैंने सारी शक्ति से छलांग लगा दी। मैं तीर की तरह हवा में उड़ गया। मुझे लगा कि अब जमीन पर कभी नहीं उतरूंगा। यह कल्पनातीत उड़ान थी। जैसा कि सपने में होता है, डर भी लग रहा था और मजा भी ले रहा था।

छलांग काफी बड़ी निकली: मैं कैंवर के सर के ऊपर से गेंद की तरह निकल गया।"

चांद पर चांदमारी

विख्यात सोवियत आविष्कारक क. ए. त्सियलकोव्स्की के उपन्यास "चांद पर" की यह कहानी गुरुत्व-बल के अधीन संपन्न होने वाली गतियों की प्रकृति समझने में सहायक होगी। वातावरण गति में बाधक होता है, इसीलिये पृथ्वी पर अभिपातन के सरल नियम साफ प्रकट नहीं होते। पिंड पर गुरुत्व-बल के साथ-साथ वातारण का घर्षण बल भी क्रियाशील हो जाता है, जिसके कारण स्थिति की जटिलता बढ़ जाती है और चित्र साफ नहीं मिलता। चांद पर हवा बिल्कुल नहीं है, अतः वह पिंडों का अभिपातन अध्ययन करने के लिये अच्छी प्रयोगशाला सिद्ध हो सकता है, यदि वहाँ पहुँच कर वैज्ञानिक अध्ययन करने का मौका मिले।

निम्न अवतरण में चंद्रमा पर स्थित दो व्यक्ति बंदूक से निकली गोली की गति का अध्ययन करना चाहते हैं:

"–लेकिन क्या बारूद यहाँ विस्फोट करेगा?

–विस्फोटक पदार्थ हवा की बनिस्बत शून्य में और अधिक शक्ति से काम करते हैं, क्योंकि हवा उनके प्रसार में बाधक होती है। जहाँ तक औक्सीजन का सवाल है, उन्हें इसकी जरूरत नहीं है, क्योंकि औक्सीजन की आवश्यक मात्रा इन पदार्थों में पहले से मौजूद रहती है।

–बंदूक उदग्र खड़ा रखते हैं, ताकि विस्फोट के बाद गोली यहीं नजदीक में ढूँढ़ा जा सके...

आग, हल्का सा धमाका, धरती में क्षीण कंपन।[1]

–खोल कहाँ गया? उसे तो आस-पास ही होना चाहिये।

–खोल गोली के साथ ही उड़ गया और शायद ही उसका पीछा छोड़े। पृथ्वी पर वातावरण का घर्षण खोल को सीसे से अलग कर देता है, पर यहाँ रूई का फाहा भी इतनी तेजी से गिरता या उठता है, जैसे पत्थर हो। तुम रूई का गोला लो और मैं लोहे का गोला लेता हूँ। दोनों अपना-अपना गोला फेंकते हैं। जितनी आसानी से मैं फेंकूगा उतनी ही आसानी से तुम भी फेंक लोगे। मैं करीब 400 m तक फेंक सकता हूँ। तुम भी करीब इतना ही दूर फेंक लोगे। यह बात दूसरी है कि तुम्हारे गोले से किसी को चोट नहीं आयेगी। तुम महसूस भी नहीं करोगे कि कुछ फेंक रहे हो। आओ, दोनों अपना-अपना गोला फेंकते है उस लाल ग्रैनाइट पर... तुम देखोगे कि ज्यादा अंतर नहीं है।

रूई का गोला लोहे वाले से कुछ आगे निकल गया, मानों उसे कोई आंधी उड़ा ले गयी हो।

–पर यह क्या बात है? गोली छोड़े तीन मिनट बीत चुके हैं और वह अभी तक लौटी नहीं?

–दो मिनट और ठहर जाओ; लौटेगी जरूर।

दो मिनट बाद गोली सचमुच में वापस आ गिरी: जमीन में हल्का सा कंपन हुआ और थोड़ी दूर पर खोल उछलता हुआ नजर आया।

–कितनी देर तक वह उड़ती रही! कितनी ऊँची वह गयी होगी?

–करीब सत्तर किलोमीटर। इतनी ऊँचाई तक जा सकने के दो कारण हैं–क्षीण गुरुत्व और वातावरण के प्रतिरोध की अनुपस्थिति।"

---

[1] धमाके की आवाज कानों तक जमीन और आदमी के शरीर से गुजरती हुई पहुंचती है, हवा के माध्यम से नहीं। चांद पर हवा नहीं है।

देखा जाये कि यह ऊँचाई कहाँ तक सच है। यदि बंदूक से निकलते वक्त गोली का वेग 500 m प्रति सेकेंड माना जाये (आधुनिक अस्त्र डेढ़ गुने अधिक वेग से गोली फेंकते हैं), तो पृथ्वी पर वातावरण की अनुपस्थिति में गोली के उठने की ऊँचाई होती

$$x = \frac{v^2}{2g} = \frac{500^2}{2 \cdot 10} = 12500\ \text{m},$$

अर्थात $12^1/_2$ km। चांद पर गुरुत्व की प्रचंडता 6 गुनी कम है, अतः g के स्थान पर 10/6 m/s^2 रखना चाहिये; इस स्थिति में गोली के उड़ने की ऊँचाई होगी

$$12500 \cdot 6 = 75\ \text{km}$$

तलहीन कुएं में

पृथ्वी के गर्भ में क्या हो रहा है, इसके बारे में हमें बहुत कम ज्ञान है। कुछ लोग मानते हैं कि पृथ्वी में सैकड़ों किलोमीटर मोटी ऊपरी ठोस परतों के नीचे गर्म तरल पदार्थ भरा हुआ है। दूसरों का कहना है कि पृथ्वी केंद्र तक ठोस ही ठोस है। असलियत क्या है, इसका उत्तर देना कठिन है, क्योंकि पृथ्वी में बनाया गया सबसे गहरा सुराख 7.5 किलोमिटर से अधिक गहरा नहीं हैं और सबसे गहरा खान, जिसमें आदमी उतर सका है, 3300 m की गहराई पर स्थित है।[1] पर पृथ्वी की त्रिज्या है 6400 km। यदि जमीन में इतना गहरा कुआं खोदा जाये कि पृथ्वी में आर-पार छेद ही हो जाये और यह छेद पृथ्वी के केंद्र से होता हुआ, अर्थात व्यास के सहारे गुजरे, तब शायद ऐसे प्रश्नों का उत्तर देना संभव होगा। आधुनिक तकनीकी उपलब्धियों के वश का यह काम नहीं है, यद्यपि पृथ्वी में जितने सुराख अबतक किये जा चुके हैं, उनकी लंबाइयों का कुल योग हमारे ग्रह के व्यास से अधिक ही होगा। पृथ्वी के आरपार सुराख बनाने का सपना अठारहवीं शती के गणितज्ञ मोपेर्टी और दार्शनिक वोल्टर देखा करते थे।

[1] बोक्सबर्ग (दक्षिणी अफ्रीका, ट्रांसवाल) में सोने के खान की बात चल रही है। ज्ञातव्य है कि इसका मुहाना सागर-तल से 1600 m ऊपर है। सागर-तल से नीचे इसकी गहराई सिर्फ 1700 m है। — संपादक।

फ्रांस के खगोलशास्त्री फ्लैमारियन ने बाद में इस योजना को पुनर्जन्म दिया, पर इनकी योजना उतने बड़े पैमाने की नहीं थी। इस विषय पर उनका निबंध छपा था, जिसके प्रथम पृष्ठ से एक चित्र यहाँ दिया जा रहा है (चित्र 44)।

चित्र 44. यदि पृथ्वी में उसके व्यास के सहारे एक छेद किया जाये...

पर अभी तक इस तरह का कुछ किया नहीं जा सका है, अतः हम काल्पनिक तलहीन कुएं से संबंधित एक रोचक प्रश्न का उत्तर ढूँढ़नें की कोशिश करते हैं। यदि आप ऐसे कुएं में गिर जायें, तो क्या होगा (हवा के प्रतिरोध को आप थोड़ी देर के लिये भूल जा सकते हैं)? आपके चूर होने का कोई डर नहीं है, क्योंकि तल है ही नहीं। कहाँ आप रुकेंगे?

पृथ्वी के केंद्र में? नहीं।

जब आप गिरते हुए पृथ्वी के केंद्र तक पहुँचेंगे, आपकी गति इतनी विशाल होगी (करीब 8 km/s) कि रुकने का प्रश्न ही नहीं उठता। आप केंद्र से आगे बढ़ते जायेंगे, पर इस क्षण से आपका वेग कम होने लगेगा। जब आप कुएं के दूसरे छोर पर पहुँचेंगे, तब आप रुकेंगे। यहाँ आपको कस के किनारी पकड़ लेनी चाहिये, अन्यथा फिर से आपको पूरे कुएं की सैर करनी पड़ेगी; आप वापस उस छोर पर पहुँच जायेंगे, जहाँ से आप का गिरना शुरू हुआ था। यदि यहाँ भी कुछ पकड़ने को नहीं मिला, तो आप इसी तरह कुएं के दोनों छोरों के बीच अविराम झूलते रहेंगे। यांत्रिकी बताती है कि इन परिस्थितियों में (मैं एक बार फिर से दुहरा दूँ कि कुएे में हवा का प्रतिरोध नहीं है), पिंड अनंत काल तक इधर-उधर झूलता रहेग।[1]

[1] यदि कुएं में वायु का प्रतिरोध होगा, तो झूलने की गति शनैः शनैः धीमी पड़ने लगेगी और आदमी अंततोगत्वा केंद्र पर आकर रुक जायेगा।
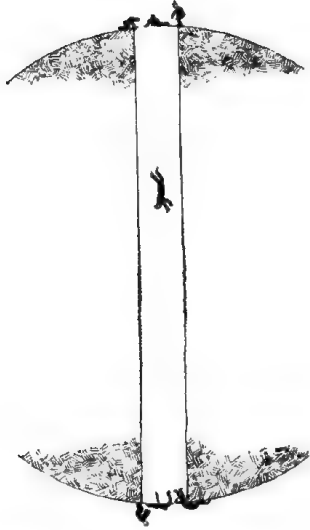
चित्र 45. पृथ्वी के केंद्र से हो कर आर-पार खोदे गये कुएं में गिरने पर आदमी एक छोर से दूसरे छोर तक अविराम झूलता रहेगा और एक पूर्ण झूलन में उसे 1 घंटा 24 मिनट का समय लगेगा।

एक बार एक छोर से दूसरे तक जाने और वहाँ से लौटने में कितना समय लगेगा? कलन से ज्ञात होता है कि ऐसे एक पूर्ण झूलन में 84 मिनट 24 सेकेंड, अर्थात लगभग डेढ़ घंटा खर्च होगा।

"ये बातें होतीं, – फ्लैमारियन आगे लिखते हैं, – यदि कुआँ पृथ्वी के अक्ष के सहारे एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव तक खोदा गया होता। लेकिन कुआं किसी दूसरे अक्षांश पर युरोप, एशिया या अफ्रीका में कहीं खोदा जायेगा, तो पृथ्वी के घूर्णन के प्रभाव को भी ध्यान में रखना होगा। ज्ञात है कि विषुवक पर पृथ्वी तल का हर बिंदु एक सेकेंड में 465 m तय करता है और पेरिस के अक्षांश पर – 300 m । चूँकि घूर्णनाक्ष से दूर जाने पर वलन-वेग बढ़ता है, सीसे का गोला कुएं में फेंकने पर वह उदग्र दिशा में नहीं, पूरब की ओर थोड़ा झुकता हुआ गिरेगा। यदि तलहीन कुआं विषुवक पर खोदना हो, तो उसका मुँह बहुत चौड़ा बनाना पड़ेगा, या कुएं को सीधा नीचे की ओर नहीं, बल्कि बहुत तिरछा खोदना पडेगा, क्योंकि पृथ्वी-तल से उसमें गिरता हुआ पिंड उसके केंद्र से बहुत दूर पूरब की दिशा में चला जायेगा।

यदि कुएं का एक मुहाना दक्षिणी अमेरिका के किसी 2 किलोमीटर ऊँचे पठार पर हो और दूसरा मुहाना सागर-तल की ऊँचाई पर हो, तो पठार वाले मुहाने से गिरता हुआ आदमी दूसरे मुहाने से इतनी तेजी से निकलेगा कि वह दो किलोमीटर ऊँचा चला जायेगा।

यदि कुएँ के दोनों ही मुहाने सागर-तल की ऊँचाई पर बने हों, तो
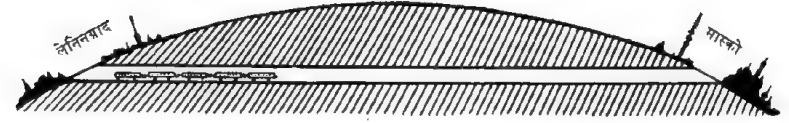
चित्र 46. यदि मास्को और लेनिनग्राद के बीच एक सुरंग खोदी जाये, तो उसमें रेलगाड़ी सिर्फ अपने भार से चला करेगी; इंजन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

एक से गिर कर दूसरे तक पहुँचने के क्षण आदमी का वेग शून्य होगा और कोई भी दूसरा आदमी हाथ बढ़ा कर उसे पकड़ ले सकेगा। इसके पहले वाली स्थिति में कोई हाथ देने में भी डरेगा।"

जादूई पथ

सान-पिटरबुर्ग [1] में एक छोटी सी पुस्तिका छपी थी, जिसका नाम कुछ विचित्र सा था: "सुरंग में बिना इंजन के चलने वाली मास्को-पिटरबुर्ग गाड़ी। कल्पनातीत उपन्यास, जो अब तक सिर्फ तीन खंडों में है और वे भी पूरे नहीं हैं।" इसके लेखक आ. आ. रदनिख एक योजना प्रस्तुत करते हैं, जो वैज्ञानिक विरोधाभासों के प्रेमियों को बहुत पसंद आयेगी।

योजना थी " 600 km लंबी सुरंग बनाने की, जो हमारी दोनों राजधानियों को बिल्कुल सरल रेखा द्वारा मिला सके। इसके फलस्वरूप मनुष्य-जाति को पहली बार सीधे पथ पर चलने का मौका मिलता। अबतक हमें वक्र पथों पर ही चलना पड़ता है।" (लेखक कहना चाहता है कि पृथ्वी-तल के वक्र होने के कारण उस पर बने सभी पथ भी वक्र ही हैं, पर योजनाधीन सुरंग सीधी रेखा पर, अर्थात् पृथ्वी के गोले के चापकर्ण पर चलने का अवसर देगी।)

यदि ऐसी सुरंग खोदी जा सकती, तो इस पर बने पथ में एक खासियत होती, जो किसी दूसरे पथ में नहीं है। इसपर कोई भी गाड़ी बिना किसी इंजन के चला करती। पृथ्वी के आर-पार बने कुएं को स्मरण करें। लेनिन-

[1] लेनिनग्राद का पुराना नाम।

ग्राद-मास्को सुरंग ऐसा ही एक कुआं है। अंतर इतना ही है कि यह पृथ्वी के व्यास के सहारे नहीं, चापकर्ण के सहारे बनाया गया है। चित्र 46 को देखने पर आपको लग सकता है कि सुरंग क्षैतिज स्थिति में है और इसीलिये इस में कोई भी गाड़ी स्वयं अपने भार से नहीं चलेगी। पर यह दृष्टि-भ्रम है। आप मन ही मन सुरंग के दोनों छोरों से पृथ्वी की त्रिज्या खींच कर देखें (त्रिज्या की दिशा शाहुल-रेखा की दिशा बताती है); आप समझ जायेंगे कि सुरंग उदग्र शाहुल-रेखा के साथ समकोण नहीं बनाती, अर्थात् वह क्षैतिज नहीं **तिरछी** है।

ऐसे तिरछे कुएं में कोई भी वस्तु गुरुत्व-बल के प्रभाव से आगे-पीछे झूलना शुरू कर देगी। पर इस कुएं में पिंड बीचों-बीच नहीं गिरेगा, वह पृथ्वी के केंद्र की ओर वाली दीवार के सहारे फिसलता हुआ यात्रा करेगा। यह दीवार ही सुरंग का तल है। इस पर यदि पटरियां बिछा दी जायें, तो उन पर रेलगाड़ी बिना इंजन के खुद-ब-खुद चला करेगी। आरंभ में गाड़ी बहुत धीमी गति से चलेगी, पर उसका वेग प्रति सेकेंड बढ़ता जायेगा। जल्द ही उसका वेग इतना बढ़ जायेगा कि सुरंग में स्थित हवा उसकी गति का प्रतिरोध करने लगेगी। पर थोड़ी देर के लिये इस दुखद बाधा को भूल जायें और गाड़ी के साथ चलें; देखें कि आगे क्या होता है। सुरंग के बीच आते-आते गाड़ी का वेग इतना बढ़ जायेगा कि तोप के गोले से चार-पाँच गुना तेज भागना शुरू कर देगा। यद्यपि इस क्षण से उसका वेग घटना शुरू हो जायेगा, वह रुकते-रुकते लगभग दुसरे छोर तक पहुँच जायेगा। यदि घर्षण बल नहीं होता, तो यह "लगभग" भी नहीं रह जाता: गाड़ी बिना इंजन के लेनिनग्राद से मास्को तक स्वयं पहुँच जाती। कलन बताते हैं कि एक तरफ की यात्रा में उतना ही समय लगेगा, जितना कुएं में पृथ्वी के आर-पार गिरने में लगता है– 42 मिनट 12 सेकेंड। यह अंतराल सुरंग की लंबाई पर निर्भर नहीं करता। मास्को-लेनिनग्राद, मास्को-व्लादीवस्तोक या मास्को-मेलबुर्न – इन सारे सुरंगों की यात्रा में एक ही समय लगेगा। है न विचित्र बात? [1]

[1] एक इससे भी रोचक बात सिद्ध की जा सकती है: ग्रह के आर-पार खुदे कुएं में "झूलन-काल" ग्रह के आकार पर निर्भर नहीं करता; यह सिर्फ उसके घनत्व पर निर्भर करता है।

यह बात रेलगाड़ी के साथ ही नहीं, किसी भी दूसरी गाड़ी के साथ होगी, अतः रेलगाड़ी की बजाय आप मोटर-कार भी इस्तेमाल कर सकते हैं। चार चक्कों वाले रथ में भी ऐसी यात्रायें संपन्न की जा सकती हैं; घोड़े की जरूरत नहीं पड़ेगी। अब आप अवश्य सहमत होंगे कि ऐसा पथ सचमुच तिलस्मी है, जिसपर कोई भी गाड़ी खुद ब खुद इतने बड़े वेग से चल सकती है।

सुरंग कैसे खोदते हैं?

चित्र 47 में सुरंग खोदने की तीन विधियां दिखायी गयी हैं। आप इन्हें देख कर बतायें कि इनमें से कौन सी सुरंग क्षैतिज है।

सिर्फ बीच वाली सुरंग क्षैतिज है, क्योंकि वह अपने हर बिंदु पर शाहुलरेखा (या पृथ्वी की त्रिज्या) के साथ समकोण बनाती है। उसका मोड़ पृथ्वी-तल की वक्रता के अनुरूप है।

लंबी सुरंगें अक्सर ऊपर वाले चित्र की तरह खोदी जाती हैं। यह सुरंग अपने सिरों पर पृथ्वी-तल की स्पर्शरेखा का काम करती है। ऐसी सुरंगें पहले कुछ ऊपर जाती हैं और फिर नीचे। इनका सबसे बड़ा लाभ यह है कि भीतर पानी नहीं जमता, वह बह कर मुहानों से निकल आता है।

यदि सुरंग बिल्कुल क्षैतिज बनायी जाये, तो उसका रूप मेहराब की तरह होगा। इसमें पानी कहीं भी नहीं बह सकेगा, क्योंकि वह हर बिंदु पर संतुलन की अवस्था में रहेगा। यदि ऐसी सुरंग की लंबाई 15 km से अधिक होगी (जैसे 20 km लंबी सिंप्लोंस्की सुरंग) तो आप एक मुहाने से झाँक कर दूसरा सिरा नहीं देख पायेंगे: आपकी निगाह छत से टकरा जायेगी, क्योंकि सुरंग का मध्य अपने मुहानों की तुलना में कहीं अधिक ऊँचा होता है।

चित्र 47. पहाड़ के आर-पार सुरंग खोदने की तीन विधियां।

अंत में, यदि सुरंग उसके मुहानों को जोड़ने वाली सरल रेखा पर खुदी

होगी, तो वह दोनों ही सिरों से बीच की ओर थोड़ी झुकी होगी। ऐसी सुरंग से पानी बह कर बाहर तो क्या निकलेगा, उल्टा उसके बीच में जमा होने लगेगा, क्योंकि यह स्थान सबसे गहरा होगा। पर यदि आप इसके एक मुहाने पर खड़े होकर देखेंगे, तो दूसरा सिरा बिल्कुल साफ नजर आयेगा। जो कुछ यहाँ कहा गया है, आप चित्र देख कर समझ जायेंगे।[1]

[1] ऊपर कही गयी बातों से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि क्षैतिज रेखाएं वक्र होती हैं; सरल (ऋजु) क्षैतिज रेखायें नहीं होतीं। उदग्र रेखाएं हमेशा ऋजु होती हैं; वे वक्र नहीं हो सकतीं।

अध्याय 5

तोप से यात्रा

गुरुत्वाकर्षण-बल व गति-नियमों के बारे में बातचीत सामप्त करने के पहले चंद्रमा की उस कल्पनातीत सैर का थोड़ा विश्लेषण कर लें, जिसका जूल वेर्न ने "पृथ्वी से चांद पर" और "चांद की परिक्रमा" नामक अपने उपन्यासों में इतना रोचक वर्णन किया है। आपको बाल्टीमोर तोप-क्लब के सदस्य तो याद ही होंगे, जिन्होंने चांद पर भेजने के लिये एक विशाल तोप के खोखले गोले में यात्रियों को बैठा कर तोप दागने का निश्चय किया था।

विचार कोरी कल्पना ही है या इसके पीछे सत्य का भी कुछ अंश है? पहला प्रश्न है: क्या किसी पिंड को इतना बड़ा वेग संप्रेषित किया जा सकता है कि वह पृथ्वी पर वापस न लौटे?

न्यूटन का पहाड़

देखें कि इसके बारे में गुरुत्वाकर्षण-नियम के अन्वेषक प्रतिभावान न्यूटन क्या कहते हैं। अपनी कृति "भौतिकी के गणितीय आधार" में वे लिखते हैं (समझने में आसानी हो, इसके लिये अवतरण का स्वतंत्र अनुवाद दिया जा रहा है):

"फेंका गया पत्थर गुरुत्व के प्रभाववश अपने ऋजु पथ से विचलित होता है और वक्र रेखा निरूपित करता हुआ जमीन पर गिर जाता है। यदि पत्थर को अधिक वेग से फेंका जाये, तो वह और बड़ा पथ तय करेगा; अतः यह भी संभव है कि वह दस मील का चाप निरूपित करे, सौ मील का, हजार मील का, आदि। अंत में यह भी संभव है कि वह पृथ्वी की सीमा से बाहर चला जायेगा और कभी वापस नहीं लौटेगा।

माना कि AFB (चित्र 48) पृथ्वी की सतह है, C – उसका केंद्र और UD, UE, UF, UG आदि वक्र रेखायें हैं, जो अत्यंत ऊँचे पहाड़ की चोटी से क्षैतिज दिशा में क्रमश: अधिक बड़े वेगों से फेंके गये पिंड द्वारा निरूपित होते हैं। हम वातावरण के प्रतिरोध को ध्यान में नहीं रख रहे हैं, अर्थात् हम मान लेते हैं कि वातावरण है ही नहीं। यदि पिंड का आरंभिक वेग कम है, तो उसका पथ UD होता है। और अधिक वेग होने पर उसका पथ UE हो जाता है। वेग के और बढ़ने पर उसके पथ क्रमश: UF तथा UG वक्र रेखायें होती हैं। एक विशेष वेग होने पर पिंड पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ पुनः उसी पहाड़ की चोटी पर पहुँच जायेगा, जहाँ से वह फेंका जाता है। चूँकि इस आरंभिक बिंदु पर पिंड का वेग उतना ही रहेगा, जितना पहले इस बिंदु पर था (अर्थात् जिस वेग से फेंका गया था), इसलिये वह आगे बढ़ जायेगा और पुनः इसी पुराने वक्र पर परिक्रमा शुरू कर देगा।"

चित्र 48. पर्वत-शिखर से क्षैतिज दिशा में फेंके गये पथर का गिरना ; प्रक्षेपन-वेग बहुत अधिक है।

अगर इस काल्पनिक पहाड़ की चोटी पर तोप होता, तो उससे एक विशेष वेग पर छोड़ा गया गोला कभी जमीन पर वापस नहीं गिरता ; वह पृथ्वी की अविराम परिक्रमा करता रह जाता। पर्याप्त सरल कलनों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है कि लगभग 8 km प्रति सेकेंड के वेग से फेंका गया गोला वापस नहीं आयेगा ; पृथ्वी की परिक्रमा करने लगेगा।[1] अन्य शब्दों में, आठ किलोमीटर प्रति सेकेंड के वेग से फेंका गया गोला पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ उसका उपग्रह बन जाता है, उस पर वापस नहीं लौटता। वह विषुवक के किसी भी बिंदु की तुलना में 17 गुना तेज गतिमान

[1] दे. "मनोरंजक भौतिकी" भाग 1, अध्याय 2।

होगा और हमारे ग्रह की एक पूरी परिक्रमा 1 घंटा 24 मिनट में किया करेगा। यदि गोले का वेग इससे अधिक होगा, तो वह पृथ्वी की परिक्रमा वृत्ताकार पथ पर नहीं, बल्कि पृथ्वी से काफी दूर होते हुए लमड़े दीर्घवृत्तीय पथ पर करेगा। यदि वेग और बड़ा होगा, तो गोला हमेशा के लिये हमारे ग्रह से दूर ब्रह्मांड में चला जायेगा। इसके लिये आवश्यक है कि आरंभिक वेग करीब 11 km प्रति सेकेंड का हो (ये सारी बातें उस स्थिति के लिये सत्य हैं, जब गोला शून्य व्योम में भ्रमण कर रहा होता है, हवा में नहीं)।

अब देखें कि जूल वेर्न द्वारा प्रस्तावित साधनों की सहायता से चंद्रमा तक की उड़ान संभव है या नहीं। आधुनिक तोप भी अपने गोले को प्रथम सेकेंड में 2 km से अधिक का वेग नहीं संप्रेषित कर पाते। चांद पर पहुँचने के लिये आवश्यक वेग से यह पाँच गुना कम है। उपन्यास के पात्र सोचते हैं कि यदि बहुत बड़े तोप में बारूद की बहुत बड़ी मात्रा भर कर गोला छोड़ा जाये, तो वह चांद तक पहुँचने के लिये आवश्यक वेग प्राप्त कर लेगा।

विराट तोप

तोप-क्लब के सदस्य चौथाई किलोमीटर लंबा तोप जमीन में उदग्र गाड़ देते हैं। इसके अनुरूप ही एक बहुत बड़ा गोला बनाया जाता है, जो यात्रियों के लिये यान का काम करेगा। उसका भार 8 टन है। तोप में 160 टन बारूदी रूई (पाइरोक्सीलीन) भरी जाती है। यदि उपन्यासकार की बातों का विश्वास किया जाये, तो विस्फोट के फलस्वरूप गोले को 16 km/s का वेग मिलता है, जो हवा के घर्षण से कम हो कर 11 km/s का रह जाता है। इस प्रकार जूल वेर्न का गोला वातावरण की सीमा से निकलने के बाद ठीक इतना वेग रखता है कि चांद तक पहुँच जाये।

उपन्यास में यात्रा का वर्णन इसी प्रकार है। अब देखें कि भौतिकी इसके बारे में क्या कह सकती है।

जूल वेर्न की योजना उस जगह ढीली नहीं है, जहाँ पाठक अक्सर संदेह करते हैं। पहली बात तो यह है कि बारूद से काम करने वाले तोप गोले को 3 km/s से अधिक का वेग नहीं दे सकते (यह मैंने अपनी पुस्तक "अंतर्ग्रही यात्रायें" में सिद्ध किया है)।

इसके अतिरिक्त जूल वेर्न ने हवा के प्रतिरोध का सही मूल्यांकन नहीं किया है। गोले के इतने बड़े वेग के लिये हवा का प्रतिरोध भी काफी बड़ा होगा – इतना बड़ा कि उड़ान की रूप-रेखा बदल कर कुछ दूसरी ही हो जाये। पर तोप के गोले में बैठ कर चंद्र-यात्रा की योजना के विरुद्ध कुछ गंभीर आपत्तियां भी हैं।

मुख्य खतरा यात्रियों को है। यह मत सोचें कि खतरा पृथ्वी से चांद तक की उड़ान में है। यदि वे तोप की नली से जीते-जागते निकल जायें, तो आगे की यात्रा में उन्हें किसी बात का डर नहीं होना चाहिये। वह विशाल वेग, जिससे यात्री अंतरिक्ष में उड़ेंगे, उनके लिये बिल्कुल नुकसानदेह नहीं होगा। आखिर पृथ्वीवासी इससे कहीं अधिक वेग से सूर्य का चक्कर लगाते हैं!

भारी-भरकम टोप

यात्रियों के लिये सबसे खतरनाक समय एक सेकेंड के कुछ शतांश भर हैं, जब गोला तोप की नली में भ्रमण करता है। इस क्षुद्र अंतराल में यात्रियों का वेग शून्य से 16 km/s तक बढ़ जायेगा! उपन्यास में यात्रीगण तोप दागने के क्षण का इंतजार करते वक्त यूँ ही नहीं घबड़ा रहे थे। बार्बीकेन बिल्कुल सच कह रहा था कि जिस समय तोप से गोला छूटेगा, उसमें बैठे यात्रियों के लिये उतना ही खतरा रहेगा, जितना गोले से बाहर उसके रास्ते में पड़े आदमी को। जिस क्षण तोप छूटेगा, यान का फर्श यात्रियों को उसी बल से धक्का देगा, जिससे तोप का गोला अपने पथ पर पड़े किसी भी दूसरे पिंड को धक्का देगा। उपन्यास के पात्रों ने इस खतरे को कोई खास महत्व नहीं दिया। उन्होंने सोचा कि ज्यादा से ज्यादा बेहोश हो जायेंगे...

पर स्थिति कहीं अधिक गंभीर है। नली में गोला त्वरित गति से चलता है। उसका वेग विस्फोट से उत्पन्न गैसों के दबाव से निरंतर बढ़ता ही रहता है। सेकेंड के क्षुद्रांश में उसका वेग शून्य से बढ़ कर 16 km/s हो जाता है। यदि प्रश्न को सरल बनाने के लिये मान लें कि वेगवृद्धि समरूप है, तो इस नन्हे अंतराल में गोले के वेग को 16 km/s तक पहुँचाने के लिये आवश्यक त्वरण होगा 600 km/s^2 (कलन आगे पृ. 104-106 पर देखें)।

इस संख्यात्मक मान का महत्व समझने के लिये स्मरण करें कि पृथ्वी-तल पर गुरुत्व-बल से प्राप्त त्वरण साधारणतः प्रति सेकेंड 10 m प्रति सेकेंड होता है।[1] इससे निष्कर्ष निकलता है कि तोप दागने के क्षण गोले के भीतर की हर वस्तु फर्श पर अपने भार से 60 000 गुना अधिक दबाव डालेगी। दूसरे शब्दों में: यात्रियों को लगेगा कि वे दसियों हजार गुना अधिक भारी हो गये हैं। इतने बड़े भार से दब कर वे क्षण भर में पिचक जायेंगे। तोप दागने के क्षण बार्बीकेन के टोप का भार 15 टन से कम नहीं होगा। यह सामान से भरे मालगाड़ी के डब्बे का भार है। ऐसा टोप अपने मालिक का जान लेने के लिये काफी है।

वैसे, उपन्यास में यह भी बताया गया है कि उक्त चोट से बचने के लिये कुछ कदम उठाये गये थे: गोले में कमानीदार प्रत्याघाती (आघात सह) लगे हुए थे; गोले के दो पेंदे थे, जिनके बीच पानी भरा हुआ था, आदि। इससे चोट की मियाद थोड़ी लंबी हो जाती और इसीलिये वेगवृद्धि की क्षिप्रता कुछ कम पड़ जाती । पर जिन विशाल बलों की यहाँ बात चल रही है, उनके सामने इन उपायों से प्राप्त लाभ नगण्य ही माना जायेगा। यात्रियों को पिचकाने वाला बल क्षुद्रांश भर ही कम होगा। आप 15 टन भारी टोप से दब जायें या 14 टन भारी टोप से – अंतर विशेष बड़ा नहीं होगा!

चोट कम करने का उपाय

वेगवृद्धि की खतरनाक क्षिप्रता कम कैसे की जाये, इसका उपाय यांत्रिकी से ज्ञात होता है। इसके लिये तोप की नली को कई गुना अधिक लंबा करना होगा।

यदि हम चाहते हैं कि तोप दगने के क्षण गोले में "कृत्रिम" गुरुत्व का बल पृथ्वी के गुरुत्व बल के बराबर हो, तो तोप की नली को बहुत लंबा करना पड़ेगा। समीपवर्ती कलन के आधार पर कहा जा सकता है कि

---

[1] यह भी बता दूँ कि मोटर-रेस की गाड़ी जब तेजी से अपना वेग बढ़ाती है, उसका त्वरण 2–3 m/s^2 से अधिक नहीं होता और स्टेशन से चलते वक्त ट्रेन का त्वरण 1 m/s^2 होता है।

इसके लिये तोप की लंबाई 6000 km होनी चाहिये ; इससे न ज्यादा, न कम। अन्य शब्दों में, तोप को पृथ्वी के केंद्र तक गहरा गड़ा होना चाहिये। सिर्फ तभी यात्री पिचकने के खतरे से बच सकेंगे : उनके अपने भार में मंद वेगवृद्धि के फलस्वरूप प्रतीत होने वाला उतना ही और भार जुड़ जायेगा और वे अपने को दुगुना भारी महसूस करेंगे।

वैसे, कम समय के लिये मानवशरीर कई गुनी भार-वृद्धि सहन कर सकता है। बर्फीले टीले से स्लेज के सहारे फिसलते वक्त जब हम गति की दिशा बदलते हैं, क्षण भर को हमारा भार बढ़ जाता है, अर्थात् हमारा शरीर स्लेज को अधिक बल से दबाता है। भार में तिगुनी वृद्धि हम काफी आराम से सहन कर लेते हैं। यदि मान लें कि एकाध क्षण के दरम्यान आदमी भार में दस गुनी वृद्धि भी सहन कर ले सकता है, तो तोप की नली सिर्फ 600km लंबी करनी होगी। लेकिन इससे कोई अधिक लाभ नहीं होगा। आधुनिक तकनीकी ज्ञान इतना लंबा तोप नहीं बना सकता।

ये ही हैं वे परिस्थितियां, जिनमें जूल वेर्न की चंद्र-यात्रा की योजना सफल हो सकती है।[1]

गणित-प्रेमियों के लिये

हमारे पाठकों के बीच निस्संदेह ऐसे भी होंगे, जो उपरोक्त कलनों की जाँच करना चाहेंगे। यहाँ वे कलन सविस्तार दिये जा रहे हैं। पर वे समीपवर्ती हैं, क्योंकि हम मान कर चल रहे हैं कि तोप की नली में गोले की वेगवृद्धि समरूप है (यथार्थ में वेग की वृद्धि असमान रूप से होती है)।

कलन में समरूप त्वरित गति के निम्न दो सूत्रों का उपयोग हुआ है :

---

[1] उपन्यास में गोले के भीतर की जिंदगी का वर्णन करते वक्त जूल वेर्न ने एक महत्त्वपूर्ण भूल की है, जिसके बारे में "मनोरंजक भौतिकी" के प्रथम भाग में कहा जा चुका है। याद दिला दें कि उपन्यासकार ने इस बात पर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया कि **तोप दागने के बाद पूरे उड़ानकाल में गोले के भीतर सभी वस्तुएं बिल्कुल भारहीन रहेंगी**, क्योंकि गुरुत्व-बल गोले और उसके भीतर की सभी वस्तुओं को समान त्वरण संप्रेषित करता है (आगे भी देखें शीर्षक "जूल वेर्न के उपन्यास में अलिखित अध्याय")।

t-वां सेकेंड बीतने पर वेग v बराबर होगा at के, जहाँ a त्वरण है :

$$v = at.$$

t सेकेंड में तय किया गया पथ S ज्ञात करने का सूत्र है

$$S = at^2/2.$$

पहले इन सूत्रों की सहायता से तोप की नली में गोले का त्वरण ज्ञात करते हैं।

उपन्यास से ज्ञात है कि नली का वह भाग, जो बारूद से नहीं भरा गया है, 210 m लंबा है। नली में गोले के पथ की लंबाई S यही है।

पथ के अंत में गोले का वेग हमें ज्ञात है : $v = 16000$ m/s। S व v की सहायता से t ज्ञात करते हैं। यह नली में गोले की गति का समय है (गति को समरूप त्वरित माना जा रहा है)। समीकरणों का उपयोग करें :

$$v = at = 16000, \quad 210 = S = \frac{at \cdot t}{2} = \frac{16000\,t}{2} = 8000\,t,$$

$$t = \frac{210}{8000} = \text{ करीब } \frac{1}{40} \text{ सेकेंड।}$$

मतलब कि गोला नली का पथ 1/40 सेकेंड में तय करता है! सूत्र $v = at$ में $t = 1/40$ रखने पर :

$$16000 = \frac{1}{40}\,a, \text{ अतः } a = 640\,000 \text{ m/s}^2.$$

आप देखते हैं कि नली में गोले का त्वरण 640000 m/s² के बराबर है। यह गुरुत्व-बल के त्वरण से 64000 गुना अधिक है।

नली की लंबाई कितनी रखी जाये कि उसमें गोले का त्वरण किसी स्वतंत्र गिरते हुए पिंड के त्वरण से सिर्फ 10 गुना अधिक हो (अर्थात् 100 m/s² के बराबर हो)?

यह उस प्रश्न का ठीक उल्टा है, जिसे हम अभी-अभी हल कर चुके हैं। प्रदत्त मान हैं : $a = 100$ m/s², $v = 11000$ m/s (वातावरण के प्रतिरोध की अनुपस्थिति में यह वेग पर्याप्त रहेगा)।

सूत्र $v = at$ से $11000 = 100\,t$, अतः $t = 110$ s.

सूत्र $S = at^2/2 = at \cdot t/2$ से तोप की आवश्यक लंबाई ज्ञात होती है

$$\frac{11000 \cdot 110}{2} = 605000 \text{ m}$$

अर्थात् लगभग 600 km.

आप देखते हैं कि इन कलनों से प्राप्त सांख्यिक मान जूल वेर्न की लुभावनी योजना को बिल्कुल अव्यावहारिक सिद्ध कर देते हैं।[1]

[1] इस अध्याय में बतायी गयी सभी बातें सिद्धांततः सही हैं। अंतरिक्षी उड़ान की समस्याओं के व्यावहारिक हल विज्ञान की अद्यतन पुस्तकों में प्राप्त हो सकते हैं।—संपादक।

अध्याय 6

गैस और द्रव के गुण

समुद्र, जिसमें डूबते नहीं

इस तरह का सागर उस देश में है, जिसे मानव-जाति प्राचीन काल से जानती है। यह पालेस्तीन का मृत सागर है। इसका पानी इतना खारा है कि इसमें कोई जीवित प्राणी नहीं रह सकता। पालेस्तीन में वर्षा बहुत कम होती है और वहाँ की जलवायु अत्यंत गर्म है, अतः वहाँ पानी का वाष्पीकरण बहुत तेजी से होता रहता है। वाष्पीकरण से सिर्फ पानी ही उड़ता है, लवण सागर में रह जाते हैं। यही कारण है कि क्यों मृत सागर का खारापन बढ़ता जा रहा है। मृत सागर के पानी में अन्य सागरों की भाँति लवणों की मात्रा भारानुसार 2 या 3 प्रतिशत नहीं, बल्कि 27 प्रतिशत है। गहराई में लवण की मात्रा बढ़ती जाती है। इस प्रकार, मृत सागर के पानी में चौथाई अंश लवणों का है। लवणों की पूरी मात्रा इस सागर में कोई 40 मिलियन टन आँकी गयी है।

अत्यधिक खारेपन के कारण मृत सागर में एक विशेषता आ गयी है: इसका पानी अन्य सागरों के जल से अधिक भारी है; इतना भारी कि इसमें आदमी डूबता नहीं है। आदमी का शरीर इसके पानी से हल्का है।

हमारे शरीर का भार तुल्य आयतन के घोर नमकीन पानी के भार से काफी हल्का है, इसीलिये प्लवन नियम के अनुसार आदमी मृत सागर में नहीं डूबता; उसके पानी में वह वैसे ही तैर कर ऊपर आ जाता है, जैसे नमकीन पानी में मुर्गी का अंडा (जो मीठे पानी में डूब जाता है)।

व्यंग्यकार मार्क ट्वेन इस विशाल झील के भारी पानी में नहाने के अनुभवों का बड़ा ही रोचक व सविस्तार वर्णन करते हैं:

"स्नान बेहद मजेदार था! हम डूबते नहीं थे। डुबकी लगाना भी मुश्किल था। यहाँ आप हाथ वक्ष पर रख कर पानी पर पीठ के बल लंबे लेट जा सकते हैं; आपके शरीर का अधिकतर भाग पानी के ऊपर रहेगा। इस
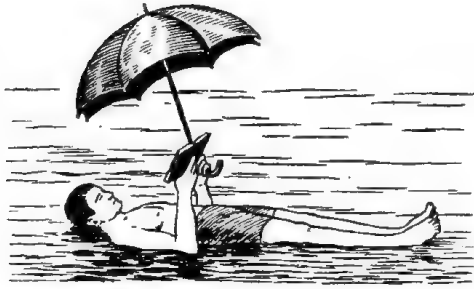
चित्र 49. मृत सागर की सतह पर आदमी (फोटोचित्र से)।

स्थिति में आप सिर ऊपर भी उठा सकते हैं...। आप घुटनों को ठुडडी तक मोड़ कर उन्हें हाथों से पकड़े हुए भी लेट सकते हैं; पर जल्द ही आप उलट जायेंगे, क्योंकि सर अधिक भारी होता है। आप सर के बल खड़े हो सकते हैं – वक्ष के मध्य से पैरों तक आप पानी के ऊपर रहेंगे। पर इस स्थिति में आप काफी देर तक नहीं टिके रह सकते। आप पीठ के बल लेटे हुए तैर कर दूर नहीं जा सकते, क्योंकि आपका पैर पानी से ऊपर रहता है। पानी को धक्का सिर्फ तलवों से देना पड़ता है। यदि आप पट हो कर तैरते हैं, तो आगे बढने की बजाय पीछे खिसकने लगते हैं। घोड़ा मृत सागर में न तो खड़ा रह सकता है, न तैर सकता है – वह करवट के बल लेट जाता है।"

चित्र 49 में आप एक आदमी को देख रहे हैं, जो मृत सागर की सतह पर आराम से लेटा हुआ हैं। पानी के उच्च विशिष्ट भार के कारण ही वह इस स्थिति में किताब पढ़ पा रहा है। प्रचंड सूर्य-किरणों से बचने के लिये छाता भी वह इसी कारणवश रख सकता है।

ऐसा ही असाधारण गुण कास्पियन सागर की खाड़ी कारा-बोगाज-कोला [1] और एल्तन झील के नमकीन पानी में है। एल्तन के पानी में लवणों की मात्रा 27 प्रतिशत है।

कुछ ऐसा ही अनुभव उन लोगों को होता हैं, जिन्हें डाक्टर की सलाह

---

[1] कारा-बोगाज-गोला के पानी का विशिष्ट भार 1.18 है। उसके एक अध्ययनकर्ता लिखते हैं कि "इसमें बिना किसी कठिनाई के तैरा जा सकता है और आर्कमेडिस के नियम का उल्लंघन किये बगैर इसमें डूबना नामुमकिन है"।
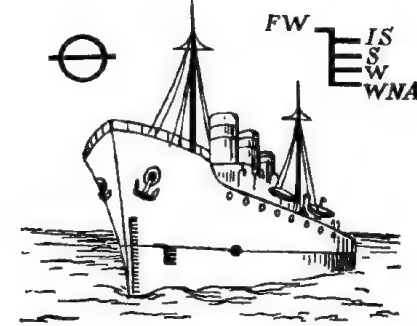
चित्र 50. जहाज के पार्श्व पर बोझ-चिह्न। चिह्न जल-स्तर पर बनाया जाता है। स्पष्टता के लिये उसे अलग से बड़ा कर के दिखाया गया है। अक्षरों का अर्थ पुस्तक में देखें।

पर नमकीन पानी के टब में स्नान करना पड़ता है। यदि पानी में काफी अधिक लवण हैं, जैसा कि स्तारोरूस के खनिज जलों में होता है, तो बीमार व्यक्ति को टब में अपना शरीर डुबाये रखने के लिये काफी शक्ति लगानी पड़ती है। स्ताराया रूस्सा में चिकित्साधीन एक औरत की शिकायत थी कि पानी "उसे टब से बिल्कुल बाहर धकेल देता है"। वह आर्कमेडिस के नियम को नहीं, चिकित्सागृह के प्रबंधक को दोषी ठहराना चाहती थी।

भिन्न समुद्रों में पानी का खारापन भी भिन्न होता है और इसीलिये उनमें जहाज का निचला भाग भिन्न ऊँचाइयों तक डूबता है। कुछ पाठकों ने बंदरगाहों पर खड़े जहाज की जलरेखा के समीप तथाकथित "लायड चिह्न" अंकित देखा होगा। यह चिह्न बताता है कि किस घनत्व वाले पानी में जहाज का निचला भाग कितना डूबेगा। चित्र 50 में दर्शित बोझ-चिह्न महत्तम जलरेखा का स्तर बताता है:

मीठे पानी में (Fresch Water) . . . . FW
हिंद महासागर में (India Summer) . . . . IS
खारे पानी में गर्मियों में (Summer) . . . . S
खारे पानी में जाड़ा (Winter) . . . . W
जाड़े में उत्तरी अटलांटिक महासागर (Winter North Atlantik) . . . . WNA

हमारे यहाँ जहाजों में यह चिह्न लगाना 1909 ई. से अनिवार्य किया गया है।

अंत में एक और बात स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि पानी का एक प्रकार है, जो अपने शुद्ध रूप में भी साधारण पानी से भारी होता है। उसका विशिष्ट भार 1.1 है, अर्थात् वह साधारण पानी से 10% अधिक भारी है। ऐसे पानी से भरे तालाब में तैरना नही जानने वाला व्यक्ति भी नहीं डूबेगा। इस पानी को "भारी" नाम से पुकारा गया है। इसका रासायनिक सूत्र $D_2 0$ है (यह पानी ऐसे हाइड्रोजन से बनता है, जो साधारण हाइ-ड्रोजन से दुगुना भारी होता है; इसे D से द्योतित करते हैं)। "भारी" पानी साधारण पानी में भी होता है – एक बाल्टी साधारण पानी में करीब 8 g।

$D_2 0$ संरचना वाले भारी पानी (भारी पानी की विभिन्न संरचनाओं की संख्या भी सतरह है) को आजकल लगभग शुद्ध रूप में प्राप्त किया जा सकता है: इसमें साधारण पानी सिर्फ 0.05% होगा।[1]

हिम-भंजक कैसे काम करता है?

पानी से भरे टब में स्नान करते वक्त एक प्रयोग करें। टब से निकलने के पहले उसके तल पर लेटे रहिये और पानी निकलने का छेद खोल दीजिये। जैसे-जैसे पानी निकलता जायेगा, आपका शरीर पानी से ऊपर निकलना शुरू कर देगा और आप महसूस करेंगे कि आपका शरीर अधिक भारी होता जा रहा है। आपको विश्वास हो जायेगा कि पानी में खोया हुआ भार (स्मरण करें कि टब में आप अपने को कितना हल्का महसूस करते हैं) पुनः वापस आ जाता है, जब आपका शरीर पानी से बाहर निकल आता है।

जब व्हेल मछली ज्वार-भाटे के साथ छीछले स्थान पर आकर अनजाने में इस तरह का प्रयोग कर बैठती है, तो उसे प्राण गँवाने पड़ते हैं: वह

[1] भारी पानी का विस्तृत उपयोग परमाण्विक तकनीकी में और खास कर परमाण्विक रिएक्टर में होता है। उसे साधारण पानी से ही औद्योगिक विधियों द्वारा प्राप्त किया जाता है। – संपादक।

अपने ही भार से कुचल जाती है। इसीलिये तो व्हेल पानी में रहती है: वहाँ द्रव का उत्प्लावक बल गुरूत्व-बल के घातक प्रभाव से उसकी रक्षा करता है।

जो कुछ यहाँ कहा गया है, इस लेख के शीर्षक के साथ उसका निकटतम संबंध है। हिम-भंजक का कार्य इसी भौतिक संवृत्ति पर आधारित है: पानी से बाहर निकाला गया जहाज का भाग पानी के उत्प्लावक बल से संतुलित नहीं रहता है और अपना "थलीय" भार प्राप्त कर लेता है। यह मत सोचें कि हिम-भंजक चलता हुआ अपने अग्र-भाग के दबाव से बर्फ की परत काटता रहता है। इस तरह से काम करता है **हिम-भंजक नहीं, हिम-कर्तक।** यह विधि तभी काम आती है, जब बर्फ की परत अधिक मोटी नहीं होती है।

"क्रासीन" और "येरमाक" जैसे असली समुद्री हिम-भंजक कुछ दूसरी तरह से काम करते हैं। शक्तिशाली मशीन की सहायता से हिम-भंजक अपना अग्र-भाग बर्फ की सतह पर धकेल कर चढ़ा देता है। उसका अग्र-भाग इसी-लिये तिरछा बनाया जाता है। पानी से बाहर आकर हिम-भंजक का अग्र-भाग अपना वास्तविक भार प्राप्त कर लेता है और यह इतना अधिक होता है ("येरमाक" का अग्र-भाग 800 टन भारी था) कि बर्फ को पीस कर रख देता है। इस प्रभाव को और शक्तिशाली बनाने के लिये अग्र-भाग के पीपों में पानी भर दिया जाता है, जो "द्रव-गिट्टी" का काम करता है।

हिम-भंजक इस तरह से तब काम करता है, जब बर्फ की परत आधे मीटर से अधिक मोटी नहीं होती। इससे अधिक मोटी परत जहाज के **चोट** से तोड़ी जाती है। हिम-भंजक थोड़ा पीछे हटता है और फिर आगे बढ़ता हुआ अपने पूरे द्रव्यमान से बर्फ पर टक्कर मारता है। इस स्थिति में जहाज का भार नहीं, उसकी गतिज ऊर्जा काम आती है; जहाज तोप के गोले सा काम करता है, जिसका वेग तो अधिक नहीं होता, पर द्रव्यमान बहुत बड़ा होता है।

यदि बर्फ का टीला कई मीटर ऊँचा होता है, तो हिम-भंजक को कई बार टक्कर मारनी पड़ती है। इसके लिये उसका अग्र-भाग बहुत मजबूत बनाना पड़ता है।

1392 ई. में संगठित "सिबिरिकोव" के विख्यात अभियान के एक सदस्य नि. मार्कोव इस हिम-भंजक के कार्य का वर्णन निम्न शब्दों में करते हैं:

"सिबिरिकोव" ने सैकड़ों बर्फीली चट्टानों और बर्फ की मोटी एकाश्म

परतों के बीच अपना संघर्ष आरंभ किया। लागातार बावन घंटों तक मशीनी टेलीग्राफ की सुई "पीछे हटो" से "आगे बढ़ो" पर छलांग लगाती रही। बावन घंटों तक "सिबिरिकोव" टक्कर मार-मार कर बर्फ को तोड़ता रहा। बर्फ की तीन चौथाई मीटर मोटी परत जहाज को बहुत कठिनाई से आगे बढ़ने दे रही थी। हर टक्कर से जहाज अपनी लंबाई की एक तिहाई दूरी तय करता था।"

दुनिया के सबसे बड़े व शक्तिशाली हिम-भंजक सोवियत संघ के पास हैं।

डूबे हुए जहाज कहां है?

एक प्रचलित धारणा है (बहुत से समुद्री नाविक भी यही सोचते हैं) कि सागर में डूबे हुए जहाज सागर के तल तक नहीं पहुँचते; वे बीच में ही किसी विशेष गहराई पर लटके होते हैं, जहाँ "पानी ऊपर की परतों के दबाव से अधिक घना हो जाता है"।

"पानी में 20 हजार ली नीचे" के लेखक का भी शायद यही खयाल था। इस उपन्यास के एक अध्याय में जूल वेर्न पानी में डूब कर लटके हुए एक जहाज का वर्णन करते हैं। इसी उपन्यास के एक अन्य अध्याय में वे "पानी में स्वतंत्र लटके हुए डूबे जहाजों" की याद दिलाते हैं।

क्या इस तरह के कथन सही हैं?

इसके लिये कुछ आधार तो है ही। सागर की गहराइयों में पानी का दबाव बहुत ज्यादा होता है। 10 मीटर की गहराई में डूबे पिंड के प्रति वर्ग सेंटीमीटर पर पानी 1 kg का दबाव डालता है। 20 मीटर की गहराई पर यह दबाव 2 kg के बराबर हो जाता है, 100 m की गहराई पर – 10 kg और 1000 m की गहराई पर – 100 kg के बराबर। लेकिन अनेक स्थानों पर सागर की गहराई कई किलोमीटर की होती है। ये गहराइयां 11 km से भी अधिक की हो सकती हैं (जैसे मैरियन दरार में)। आप आसानी से कलन कर सकते हैं कि इतनी गहराई में डूबी वस्तु पर पानी का दबाव कितना होगा।

यदि खाली बोतल को डाट से बंद कर के काफी गहराई में रखा जायें, तो पानी दबाव के साथ डाट को धकेल कर भीतर घुस आयेगा। विख्यात सामुद्रविद जोन मेरी अपनी पुस्तक "महासागर" में निम्न प्रयोग का वर्णन

करते है: भिन्न नाप वाली शीशे की तीन नलियां ली गयीं। उनके दोनों सिरों को झलैया (वेल्डिंग) से बंद कर के उन्हें एक कपड़े से लपेट दिया गया और तांबे के खोखले बेलन में रख कर 5 km की गहराई पर उतारा गया। बेलन में इस तरह से छिद्र बने थे कि पानी उसमें स्वतंत्रतापूर्वक प्रविष्ट हो सके। जब उसे वापस निकाला गया, कपड़े में बर्फ के चूरन सा कोई पदार्थ भरा हुआ था। यह शीशे का चूरन था। लकड़ी के टुकडे को इतनी गहराई पर रखने से वह इतना दब जाता है कि पानी में ईंट के समान डूबने की विशेषता प्राप्त कर लेता है।

उक्त तथ्यों के आधार पर यह आशा करना बिल्कुल स्वाभाविक होगा कि बड़ी गहराइयों पर अत्यधिक दबाव के कारण पानी इतना घना हो जाता है कि उसमें भारी वस्तुएं भी नहीं डूबतीं। स्मरण करें कि पारे में लोहे की वस्तु नहीं डूबती, क्योंकि पारे का घनत्व काफी अधिक होता है।

पर इस तरह के विचार बिल्कुल निराधार हैं। प्रयोगों से ज्ञात होता है कि अन्य सभी द्रवों के समान पानी भी बहुत मुश्किल से संकुचित होता है। प्रति cm^2 पर 1 kg का दबाव डालने पर पानी में संकोचन उसके आयतन के 1/22 000 वें अंश के बराबर होता है। दबाव बढ़ाने पर प्रति किलोग्राम के लिये संकोचन-दर लगभग यही रहता है। यदि आप पानी का घनत्व इतना बढ़ाना चाहते हैं कि उसमें लोहा तैरने लगे, तो आपको उसे 8 गुना अधिक घना करना पड़ेगा। पर उसे सिर्फ दुगुना घना करने के लिये, अर्थात्. उसके आयतन को आधा करने के लिये प्रति वर्ग सेंटीमीटर पर 11000 kg का दबाव चाहिये (यदि इतने बड़े दबाव के लिये उपरोक्त संकोचन दर सही हो)। इसके लिये आपको सागर में 110 km गहरे स्थान की खोज करनी होगी।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सागर की गहराइयों में पानी के कुछ विशेष घना होने की बात करना बेकार है। सबसे गहरे स्थान पर पानी का घनापन सिर्फ 1100/22000, अर्थात् 1/20 भाग ही अधिक होता है। यह पानी के साधारण घनत्व से 5% अधिक होगा।[1] यह अंतर भिन्न

[1] अंग्रेज भौतिकविद थेट ने हिसाब लगाया कि यदि पार्थिव गुरुत्वाकर्षण समाप्त हो जाये और पानी भारहीन हो जाये, तो सागरों में जल-स्तर औसतन 35 m ऊँचा उठ आयेगा (क्योंकि भार से दबा पानी अपना यथार्थ

8–567

पिंडों के प्लवन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। इसके अतिरिक्त, ऐसे पानी में ठोस वस्तुएं भी तो दब कर कुछ अधिक घनी हो जायेंगी।

इसिलिये इसमें शक नहीं है कि डूबे हुए जहाज सागर के तल पर ही होते हैं। मेरी लिखते हैं: "जो वस्तु गिलास के पानी में डूब सकती है, वह गहरे से गहरे सागर में भी डूबेगी और उसके तल को अपना विश्राम-स्थल बनायेगी।"

इस बात को काटने के लिये अक्सर यह तर्क सुनने में आता है: गिलास को **औंधा** कर के सावधानी से पानी में डुबाया जाये, तो वह इसी स्थिति में टिका रह सकता है, क्योंकि उसके द्वारा विस्थापित पानी का भार उसके भार के तुल्य होता है। धातु का अधिक भारी गिलास यह स्थिति बिना तल पर गये जल-स्तर से कुछ नीचे प्राप्त कर सकता है। औंधा जहाज भी डूबते वक्त इसी तरह आधे रास्ते में रूक जा सकता है। यदि जहाज के भीतरी भाग में कहीं हवा अच्छी तरह से कैद रह गयी हो, तो जहाज एक विशेष गहराई पर रूक जायेगा।

औंधी स्थिति में अनेक जहाज डूबते हैं और बिल्कुल संभव है कि उनमें से कुछेक तल तक नहीं पहुँचते; सागर की अंधियारी गहराइयों में कहीं लटके रह जाते हैं। ऐसे जहाज के लिये हल्का सा धक्का काफी रहेगा कि उसका संतुलन बिगाड़ दिया जाये और उसे थोड़ा उलट कर उसमें पानी भर दिया जाये। वह आराम से तल पर पहुँच जायेगा। पर सागर की गहराई में कहाँ से धक्का मिल सकता है? वहाँ हमेशा शांति रहती है और पानी की सतह पर आये तूफानों की भी खबर वहाँ नहीं पहुँचती।

ये सब तर्क एक गलती पर आधारित हैं। औंधा गिलास **स्वयं नहीं डूबता**; उसे लकड़ी के टुकडे या बंद खाली बोतल की तरह **बाह्य बल** की सहायता से डुबाना पड़ता है। यदि जहाज डूबते वक्त औंधा हो जाता है और उसमें कहीं बंद हवा रह जाती है, तो वह डूबेगा ही नहीं। वह तल और सतह के बीच किसी भी हालत में डूबा नहीं रह सकता।

आयतन ग्रहण करने को मुक्त हो जायेगा)। "सागर 5000 000 km² थल को डुबा देगा, जो पानी के दबे होने के कारण ही सागर-स्तर से ऊपर रहता है।" (बेर्जे)

जूल वेर्न और वेल्स के सपने कैसे साकार हुए

हमारे समय की वास्तविक पनडुब्बियां कुछ बातों में जूल वेर्न की काल्पनिक "नौटिलुस" से कहीं बढ़-चढ़ कर हैं। आधुनिक पनडुब्बियों की चाल "नौटिलुस" की चाल से दुगुनी धीमी है: सिर्फ 24 नॉट, जबकि "नौटिलुस" की चाल 50 नॉट थी (एक नॉट है करीब 1.8 m/h)। सबसे लंबी यात्रा पर चली आधुनिक पनडुब्बी पृथ्वी का एक चक्कर लगाती है। कैप्टेन नेमा की पनडुब्बी ने इससे दुगुना रास्ता तय किया था। पर "नौटिलुस" की जलविस्थापन क्षमता सिर्फ 1500 टन थी और उसमें करीब बीस-तीस व्यक्ति ही सफर कर सकते थे। यह पनडुब्बी 8 घंटे से अधिक लगातार पानी के नीचे नहीं रह सकती थी। 1929 ई. में निर्मित-फ्रांसीसी पनडुब्बी "सुर्कुफ" की विस्थापन क्षमता 3200 टन थी। उसमें करीब डेढ़ सौ आदमी थे और वह एक सौ बीस घंटे से अधिक समय तक लागातार पानी के नीचे रह सकती थी।[1]

फ्रांस से मडागास्कर द्वीप तक की यात्रा के दरम्यान यह पनडुब्बी एक बार भी पानी से बाहर नहीं आयी। "सुर्कुफ" "नौटिलुस" से कम आरामदेह नहीं था। "सुर्कुफ" के ऊपरी डेक पर एक टोही जलविमान के लिये गैरेज भी था, जिसमें पानी नहीं घुस सकता था। कैप्टेन नेमा के पास समय-समय पर आस-पास की टोह लेने के लिये कोई साधान नहीं था। जूल वेर्न के "नौटिलुस" में पानी से ऊपर देखने के लिये पेरिस्कोप भी नहीं था।

वास्तविक पनडुब्बियां सिर्फ एक बात में फ्रांसीसी उपन्यासकार की काल्पनिक पनडुब्बी से लोहा नहीं ले सकतीं। "नौटिलुस" काफी गहराई में तैर सकती थी, पर वास्तविक पनडुब्बियां नहीं। लेकिन इस बात में जूल वेर्न की कल्पना सत्य से बहुत दूर है। "कैप्टेन नेमा, — उपन्यास में

---

[1] आधुनिक पनडुब्बियां परमाणु-शक्ति से चलती हैं, अतः उनमें उर्जा का भंडार व्यावहारिकतः अक्षय माना जा सकता है। इसीलिये मनुष्य सागर-तल के अज्ञात स्थलों का निरीक्षण करने के लिये लंबा से लंबा कोई भी पथ चुन सकता है। उदाहरणार्थ, 1958 ई. में (22 जुलाई से 5 अगस्त तक) परमाणु-चालित अमरीकी पनडुब्बी "नौटिलुस" ने उत्तरी ध्रुव के पास ग्रीनलैंड सागर से बेरिंग सागर तक जलगत यात्रा पूरी की। — संपादक।
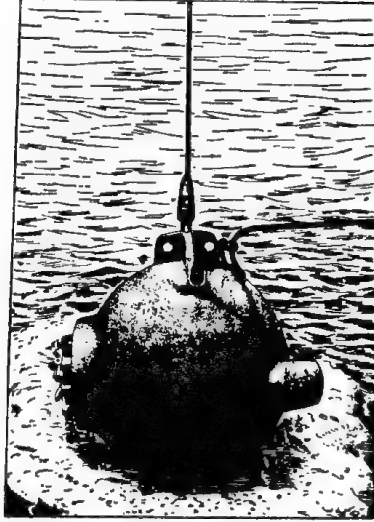
चित्र 51. सागर की गहरी परतों में उतरने के लिये इस्पात का गोलाकार उपकरण "प्लावर्तुल" (बैथीस्फेयर)। इस उपकरण में विलियम बीब 1936 ई. में 923 m की गहराई में उतरे थे। गोले की दीवारें करीब 4 cm मोटी हैं। उसका व्यास 1.5m है और भार 2.5 टन।

एक जगह लिखा है, – तीन से दस हजार मीटर की गहराई में उतर सकते थे।" और एक बार "नौटिलुस" 16 हजार मीटर की गहराई में उतर आया। यह कल्पनातीत घटना थी। उपन्यास का मुख्य पात्र अपनी कहानी कहता है: "मैं साफ महसूस कर रहा था कि पनडुब्बी की बाहरी सतह पर चदरों के जोड़ कसक रहे हैं और खिड़कियां पानी के दबाव से भीतर की ओर नम रही हैं। यदि हमारा जहाज ढलैया से बने एकाश्म पिंड जैसा मजबूत नहीं होता, तो इतने बड़े दबाव से पिचक कर रोटी जैसा हो जाता।"

डरने की बात जरूर थी। क्योंकि 16 km की गहराई पर (यदि सागर में ऐसे गहरे स्थान हैं) पानी का दबाव होगा :

$$16000 : 10 = 1600 \text{ kg/cm}^2$$

या 1600 तकनीकी वातदबाव। ऐसा दबाव लोहे को पीस तो नहीं सकता, पर जहाज की बनावट जरूर बिगाड़ देगा। पर आधुनिक सामुद्र (समुद्र विज्ञान) को ऐसे गहरे स्थल ज्ञात नहीं हैं। जूल वेर्न के जमाने में (उपन्यास 1869 में लिखा गया था) सागर की गहराइयों के प्रति लोगों के खयाल गलत थे, क्योंकि उसे नापने की शुद्ध विधियां नहीं थीं। उस समय गहराई नापने के लिये तार का नहीं सन की रस्सी का उपयोग होता था। तब लंगर जितना ही गहरा जाता था, रस्सी के साथ पानी का

घर्षण भी उतना ही अधिक होता जाता था। अधिक गहराई पर घर्षण इतना अधिक हो जाता था कि लंगर इससे नीचे उतरता ही नहीं था। लोग रस्सी ऊपर से छोड़ते जाते थे और उन्हें लगता था कि वहाँ काफी अधिक गहरा है।

हमारे समय की पनडुब्बियां 25 से अधिक वातदाब सहन नहीं कर सकतीं। इसका अर्थ है कि उन्हें 250 m से अधिक गहराई पर नहीं उतरना चाहिये। कहीं अधिक गहराई पर उतरने के लिये एक दूसरा उपकरण है, जिसे प्लावर्तुल (बैथीस्फेयर) कहते हैं (चित्र 51)। इसका उपयोग सागर की गहराई में स्थित जीव-जगत के अध्ययन में होता है। इसकी बनावट जूल वेर्न के "नौटिलुस" जैसी नहीं, वेल्स के जलगामी गोले की तरह है, जिसका वर्णन उन्होंने "समुद्र की गहराई में "नामक पुस्तक में किया है। कहानी का नायक मोटी दीवारों वाले एक खोखले गोले में 9 km की गहराई पर उतरता है। उपकरण को रस्सी से बांध कर नहीं लटकाया जाता था। उसमें वजनी वस्तुएं रखी जाती थीं, जिसके कारण वह स्वयं पानी में डूब जाता था। ऊपर आने के लिये इस बोझ को अलग कर देते थे और गोला स्वयं ऊपर उपल आता था।

प्लावर्तुल में वैज्ञानिकगण 900 m तक की गहराई पर जा चुके हैं। उसे जहाज से रस्सी के सहारे पानी में उतारा जाता है। रस्सी के साथ टेलीफोन-लाइन भी लगी होती है।[1]

---

[1] इसके कुछ समय बाद फ्रांस में इंजिनियर विल्म और इटली में बेल्जियन प्रोफेसर पिकार की देख-रेख में प्लाकोष्ठ (बैथीश्काफ) नामक उपकरण बनाये गये। प्लावर्तुल रस्सी के सहारे सिर्फ एक स्थान पर लटके रहते हैं, पर प्लाकोष्ठ स्वयं तैर सकते हैं। पिकार का प्लाकोष्ठ 3 km नीचे उतरा था। इसके बाद फ्रांसीसी गियोम तथा विल्म का प्लाकोष्ठ 4050 m की गहराई तक पहुँचा। 1959 के नवंबर में प्लाकोष्ठ 5670 m की गहराई पर था। 9 जनवरी 1960 को पिकार 7300 m की गहराई देख आया और 23 जनवारी को उसका प्लाकोष्ठ मैरियन दरार के तल का निरीक्षण कर आया, जो 11.5 km की गहराई पर स्थित है। आधुनिकतम अध्ययनों के अनुसार यह दुनिया में सबसे गहरा स्थान है।

"साद्को" का उद्धार

विस्तृत सागर में प्रतिवर्ष हजारों छोटे-बड़े जहाज डूब जाया करते हैं। युद्ध-काल में डूबने वाले जहाजों की संख्या विशेष रूप से अधिक थी। अधिक मूल्यवान जहाजों में से जो सुगम स्थलों पर पड़े हैं, उन्हें उबारने की कोशिश की जाती है। "विशेष कार्यों के लिये जलगत अभियान" के सदस्यों के रूप में सोवियत इंजिनियरों तथा गोताखोरों को 150 से अधिक जहाजों को सफलतापूर्वक उबारने के लिये विश्वख्याति प्राप्त हो चुकी है। इनमें सबसे बड़ा जहाज हिमभंजक "सादको" था, जो 1916 ई. में कैप्टेन की गलती से श्वेत सागर में डूब गया था। वह 17 साल तक सागरतल पर पड़ा रहा। उक्त अभियान के सदस्यों ने उसे निकाल कर उसे पुनः काम करने लायक बना दिया।

इस जहाज को निकालने की विधि पूर्णतया आर्कमेडिस के नियम पर आधारित थी। डूबे जहाज के नीचे जमीन में 12 सुरंगें खोदी गयीं और उनमें फौलादी रस्से बिछा दिये गये। रस्सों के सिरे पीपों से बंधे थे। यह सारा काम जल-स्तर से 25 m नीचे पूरा किया गया था।

पीपे (चित्र 52) 11 मीटर लंबे लोहे के बेलन थे, जिनका व्यास 5.5 m था। खाली पीपे का वजन 50 टन था। ज्यामितीय नियमों से बेलन का आयतन ज्ञात किया जा सकता है: करीब 250 घन मीटर। स्पष्ट है कि ऐसा पीपा डूब नहीं सकता; वह पानी पर तैरता रहेगा, क्योंकि उसका भार है 50 टन और उसके द्वारा विस्थापित जल का भार है 250 टन। उसकी भार उठाने की क्षमता 250 और 50 का अंतर, अर्थात् 200 टन होगी। पीपे को तल पर उतारने के लिये उसे पहले पानी से भर दिया गया था।

जब डूबे हुए पीपों को लोहे के रस्सों से अच्छी तरह बांध दिया गया, रबड़ की नलियों से उसमें हवा भरा गया। 25 m की गहराई पर हवा का दबाव $^{25}/_{10}+1$; अर्थात $3^1/_2$ वातदाब के बराबर होता है। हवा पीपे में 4 वातदाब के अंतर्गत भरी जा रही थी, इसीलिये वह उसमें से पानी विस्थापित कर सकती थी। हल्का हो जाने पर पीपे परिवेशी जल द्वारा विशाल शक्ति से ऊपर धकेले जाने लगे। पीपों की भार उठाने की सम्मिलित क्षमता 200×12, अर्थात् 2400 टन थी। यह "साद्को"

चित्र 52. "साद्को" को उठाने की योजना का आरेख। चित्र में हिम-भंजक का अनुच्छेद, पीपे और रस्से दिखाये गये हैं।

के भार से काफी अधिक था, इसीलिये पीपों में से सारा पानी नहीं निकाला गया। सारा पानी निकाल देने पर जहाज के ऊपर आने का वेग बहुत अधिक होता।

जहाज एक ही बार में नहीं निकल आया। इसके पहले के कुछ प्रयत्न असफल हो गये थे। "जहाज के उद्धारकों को चार दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ा, तब जा कर उन्हें सफलता मिली, — अभियान के नेतृत्वकर्ता इंजिनियर त. इ. बब्रीत्स्की लिखते हैं।[1] — तीन बार उत्सुकता से जहाज के निकलने की प्रतीक्षा की गयी और तीनों बार जहाज की जगह अकेले खाली पीपे निकले। रस्से और पाइप टूट जाया करते थे। अंतिम बार जहाज दिखा, पर फिर डुबकी लगा लिया . . . फिर बाहर निकला और फिर नीचे चला गया और तब जा कर पानी की सतह पर स्थिर हुआ।"

"शाश्वत" जल-चलित्र

"शाश्वत-चलित्रों" की अनेक योजनायें पानी में वस्तुओं के उत्पलवन-गुण पर आधारित हैं। 20 मीटर ऊँचा मीनारनुमा हौज पानी से भरा हुआ है। ऊपर और नीचे चक्के लगे हुए है, जिन पर लोहे का रस्सा लगा हुआ है। रस्से से एक-एक मीटर की ऊँचाई वाले 14 घनाकार बरतन लगे हैं। पानी बरतन के भीतर नहीं जा सकता। चित्र 53 व 54 में इस हौज का वाह्य रूप तथा अनुतीर काट दिखाये गये हैं।

उपकरण किस प्रकार काम करता है? आर्कमेडिस के नियम से परिचित लोग समझ जायेंगे कि पानी के भीतर वाले बरतन ऊपर उठने को प्रवृत्त होंगे। उन्हें ऊपर धकेलता है बल, जो उनके द्वारा विस्थापित जल के

---

[1] पुस्तक "गहराई पर विजय" में।

चित्र 53. मिथ्या "शाश्वत" जल चलित्र की एक योजना।
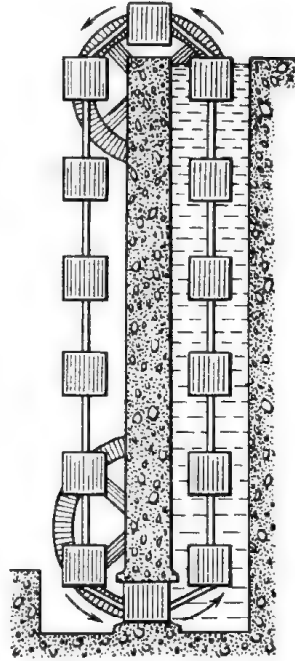
चित्र 54. पिछले चित्र में दिखाये गये हौज की बनावट।

बारबर है। यह एक घन मीटर पानी के भार गुणा पानी में स्थित बरतनों की संख्या के बराबर होगा। चित्र से स्पष्ट है कि पानी में हमेशा छे बरतन होंगे। अतः पानी में बरतनों को ऊपर धकेलने वाला बल $6\ m^3$ पानी के भार के बराबर, अर्थात् 6 टन के बराबर होगा। इन बरतनों को इनका अपना भार नीचे खींचता है, पर इनका भार स्वतंत्र रूप से बाहर लटके छे बरतनों के भार द्वारा संतुलित हो जाता है।

इस स्थिति में रस्सा हमेशा एक तरफ से ऊपर की ओर 6 टन बल से खींचता रहेगा। स्पष्ट है कि यह बल रस्से को चक्कों पर अविराम घूमने के लिये विवश करेगा और हर चक्कर से $6000 \times 20 = 120\ 000$ kgm के बराबर कार्य संपन्न होता रहेगा।

आप समझ सकते हैं कि यदि पूरे देश भर में ऐसे हौज बनाये जायें, तो हमें कार्य की अक्षय मात्रा प्राप्त होती रहेगी और इससे सारी आर्थिक आवश्यकतायें पूरी हो सकेंगी। इस चलित्र की मदद से डायनेमो घुमाये जायेंगे, जो किसी भी मात्रा में विद्युत-ऊर्जा दे सकेंगे।

लेकिन यदि इस योजना का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें, तो आपको मानना पड़ेगा कि रस्से से घूमने की कोई आशा नहीं करनी चाहिये।

चित्र 55. "शाश्वत" जल चलित्र की एक और योजना।

रस्सा घूमता रहे, इसके लिये आवश्यक है कि बरतन नीचे से हौज में घुसे और ऊपर से निकले। लेकिन हौज में घुसते वक्त बरतन को 20 m ऊँचे **जल-स्तंभ के दाब का सामना करना पड़ेगा।** बरतन के एक वर्ग मीटर वाली सतह पर यह दबाव बीस टन के बराबर बल लगायेगा (यह $20\ m^3$ पानी का भार है)। ऊपर खींचने वाला बल सिर्फ 6 टन है और यह बरतन को हौज में खींचने के लिये काफी नहीं है।

"शाश्वत" जल-चलित्रों के सैकड़ों असफल नमूने हैं, जिनमें कुछ अत्यंत सरल हैं और आविष्कारक की प्रतिभा के प्रतीक माने जा सकते हैं।

चित्र 55 को देखें। लकड़ी का बेलन अपने अक्ष के सहारे घूम सकता है। बेलन का एक भाग हमेशा पानी में है। यदि आर्कमेडिस का नियम सत्य है, तो पानी में डूबा हुआ भाग उत्प्लवन के लिये प्रवृत्त होगा। यदि उत्प्लवन-बल घर्षण-बल से अधिक होगा, तो बेलन का घूर्णन कभी बंद नहीं होगा...।

लेकिन ऐसा "शाश्वत" चलित्र बनाने की जल्दीबाजी न करें। आपको सफलता नहीं मिलेगी; बेलन अपनी जगह पर टस से मस नहीं होगा। फिर हमारे विचारक्रम में गलती कहाँ है? यहाँ हमने क्रियाशील बलों की दिशा पर कोई ध्यान नहीं दिया है। उत्प्लवन-बल बेलन की सतह के अभिलंब,

अर्थात् त्रिज्या की दिशा में अक्ष की ओर लगता है। दैनिक अनुभव से सभी जानते हैं कि चक्के को उसकी त्रिज्या के अनुतीर बल लगा कर घुमाना असंभव है। उसे घुमाने के लिये त्रिज्या के अभिलंब, अर्थात् चक्के की परिधि की स्पर्शरेखा के अनुतीर बल लगाया जाता है। अब आप बेशक समझ गये होंगे कि यह "शाश्वत" चलित्र भी काम नहीं देगा।

"शाश्वत" चलित्र के अन्वेषकों के लिये आर्कमेडिस का नियम हमेशा आकर्षण का केंद्र रहा है। द्रव में डूबी वस्तु के भार में प्रतीयमान कमी आती है – इस तथ्य को उपयोग में लाने वाली नाना प्रयुक्तियां सोची गयीं, जो अन्वेषकों के विचार में यांत्रिक ऊर्जा के शाश्वत स्रोत बन सकती थीं।

"गैस" और "एटमोस्फेयर" शब्द किसकी देन हैं?

"गैस" शब्द "थर्मोमीटर", "एलेक्ट्रीसीटी", "गैल्वेनोमीटर", "टेलीफोन" "ऐटमोस्फेयर" आदि जैसे शब्दों की तरह ही सोच कर बनाया गया है। सोच कर बनाये गये शब्दों में "गैस" सबसे छोटा शब्द है। इसे गैलीली के समकालीन हालैंडवासी चिकित्सक व रसायनविद हेल्मौंट (1577–1644) ने यूनानी शब्द "केओस" से बनाया था। हवा दो अवयवों से मिल कर बना है, जिसमें से एक जलने में सहायक होता है तथा खुद भी जल जाता है और दूसरा अवयव यह गुण नहीं रखता – यह ज्ञात होने पर हेल्मौंट ने लिखा:

"ऐसे वाष्प को मैंने **गैस** का नाम दिया, क्योंकि यह प्राचीन **केओस** से काफी मिलता जुलता है ("केओस" का आरंभिक अर्थ है – उद्भासित व्योम)।

पर यह नया शब्द काफी समय तक प्रयोग में नहीं आया। 1789 में लावोजिये ने इसे नया जन्म दिया। गुब्बारे में मंगोल्फिये भाइयों की उड़ान के बाद इस शब्द का विस्तृत प्रयोग होने लगा।

लोमोनोसोव की कृतियों में गैसरूपी पिंडों के लिये दूसरा नाम मिलता है – "लचीला द्रव" (यह नाम उस समय भी प्रचलित था, जब मैं स्कूल में पढ़ता था)। लोमोनोसोव ने रूसी भाषा को अनेक शब्द दिये, जिन्हें विज्ञान में मानक शब्दों का स्थान प्राप्त हुआ। वे आज भी प्रचलित हैं:[1]

[1] यहां इन शब्दों के लिये हिन्दी में प्रयुक्त शब्द दिये जा रहे हैं। – अनु.

वातमंडल (एटमोस्फेयर)	घनत्वमापी (मैनोमीटर)
दाबमापी (बैरोमीटर)	सूक्ष्ममापी (माइक्रोमीटर)
वातनिष्काषक पंप	प्रकाशिकी, प्रकाशिकीय
श्यानता	वैद्युत
क्रिस्टलीकरण	ईथर
पदार्थ	आदि

रूसी ज्ञान-विज्ञान के मेधावी पितर इसके बारे में लिखते हैं: "कुछ भौतिकीय उपकरणों, प्रक्रियाओं व प्राकृतिक वस्तुओं के नामकरण के लिये मुझे ऐसे शब्द ढूंढने पड़े, जो प्रथम दृष्टि में विचित्र से लगते हैं, पर कालांतर में वे प्रयोग के माध्यम से हमारे लिये अधिक परिचित हो जायेंगे।"

हम जानते हैं कि लोमोनोसोव की आशा व्यर्थ नहीं गयी।

इसके विपरीत, ... दाल (रूसी शब्दकोष के प्रणेता) ने वातावरण के लिये जो शब्द दिया था – "भूसंलग्न"[1] – प्रचलित नहीं हो सका। इसी प्रकार क्षितिज के लिये उन्होंने "खभौम"[2] शब्द दिया था, पर यह भी प्रयोग में नहीं आ पाया।

सरल प्रश्न?

लबालब भरे समोवर में 30 गिलास पानी अँटता है। आप उसके पेंदे के पास लगे नल को खोल कर एक गिलास में पानी भरना चाहते हैं। साथ ही आप घड़ी में देखते हैं कि गिलास भरने में कितना समय लगता है। माना कि इसमें आधे मिनट का समय व्यतीत होता है। अब प्रश्न उठता है: यदि नल खुला छोड़ दिया जाये, तो कितनी देर में समोवर खाली हो जायेगा?

लगता है कि यह बच्चों के लिये गणित का प्रश्न है: समोवर से एक गिलास पानी गिरता है 1/2 मिनट में, अतः 30 गिलास पानी के गिरने में 15 मिनट लगेंगे।

[1], [2] रूसी शब्दों का अक्षरशः अनुवाद। – अनु।

लेकिन आप कर के देखें। पता चलेगा कि समोवर चौथाई घंटे में खाली नहीं होता; उसे खाली होने में आधा घंटा लगता है।

हिसाब तो बिल्कुल सीधा है, फिर बात क्या है?

सीधा है, पर गलत है। यह नहीं सोचना चाहिये कि पानी गिरने का **दर** शुरू से अंत तक एक ही रहता है। जब एक गिलास पानी गिर चुका होता है, पानी का धार कम दबाव से निकलता है, क्योंकि समोवर में पानी का स्तर नीचे उतर आता है। स्पष्ट है कि दूसरा गिलास भरने में आपको आधा मिनट से कुछ अधिक समय लगेगा; तीसरे को भरने में और भी अधिक समय लगेगा, आदि।

खुले बरतन के छेद से किसी भी द्रव के बहने का दर उस छेद से ऊपर स्थित द्रव-स्तंभ की ऊँचाई का समानुपाती होता है। इस संबंध को पहले-पहल गैलीली के मेधावी शिष्य टोरीसेली ने दिखाया और इसे निम्न सूत्र द्वारा व्यक्त किया:

$$v=\sqrt{2gh},$$

जहां v – प्रवाह-दर, g – गुरुत्व-बल से प्राप्त त्वरण, और h – छेद से ऊपर द्रव के स्तंभ की ऊँचाई। इस सूत्र से निष्कर्ष निकलता है कि प्रवाह का दर द्रव के घनत्व पर निर्भर नहीं करता। यदि बरतनों में पारे और स्पिरिट की ऊँचाई एक हो, तो दोनों समान तेजी से बहेंगे, यद्यपि पारा भारी होता है और स्पिरिट हल्का (चित्र 56)। सूत्र से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वी की अपेक्षा चांद पर एक गिलास भरने में $2^1/_2$ गुना अधिक समय लगेगा, क्योंकि वहाँ गुरुत्व बल 6 गुना कम है।
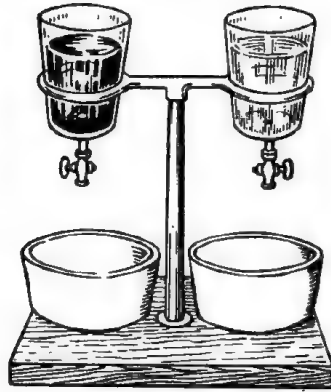
चित्र 56. क्या पहले ढलेगा: पारा या स्पिरिट? बरतनों में द्रवों का स्तर समान ऊँचाई पर है।

अब अपने प्रश्न की ओर लौटें। यदि 20 गिलास पानी बह चुकने के बाद समोवर में नल के ऊपर जल-स्तंभ की ऊँचाई **चौगुनी** कम

हो जाती है, तो 21 वां गिलास भरने में प्रथम गिलास की तुलना में **दुगुना** अधिक समय लगेगा। यदि आगे चल कर जल-स्तंभ की ऊँचाई 9 गुनी कम हो जाती है, तो गिलास भरने में पहले से **तिगुना** अधिक समय लगेगा। सभी जानते होंगे कि लगभग खाली समोवर के नल से पानी कितना धीरे बहता है। उच्च गणित की सहायता से इस प्रश्न को हल करते समय सिद्ध किया जा सकता है कि बरतन के पूरा खाली होने में **दुगुना अधिक समय** लगता है, बनिस्बत कि यदि उससे उतना ही द्रव इस प्रकार बहे कि उसकी ऊँचाई कम न हो।

हौज का प्रश्न

उपरोक्त बातों को समझ लेने पर हम हौज से संबंधित उन विख्यात प्रश्नों को देख सकते हैं, जिनके बिना अंकगणित या बीजगणित की एक भी किताब नहीं छपती। ऊबन भरा ऐसा पंडिताऊं प्रश्न सबों को याद होगा:

"हौज में दो नल लगे हैं। उनमें से एक की मदद से खाली हौज 5 घंटों में भरा जा सकता है; दूसरे की मदद से हौज 10 घंटों में खाली किया जा सकता है। यदि दोनों नल खुले हों, तो हौज भरने में कितना समय लगेगा?"

इस तरह के प्रश्न प्राचीनकाल से ही चले आ रहे हैं। आज से दो हजार साल पहले अलेक्जेंडर हिरोन ने इस प्रकार के प्रश्न रखे थे। उनमें से एक यहां दिया जा रहा है:

"चार फव्वारे, एक तालाब।
एक भरने में लगाता एक दिन-रात,
दूसरा लगाता दो दिन और दो रात।
तीसरे का तिगुना पहले से मंद स्राव;
चौथा लगाता चार दिन, चार रात।
बता मुझे कब भरेगा तालाब
गर सब खुल जायें एक साथ।"

हौज से संबंधित प्रश्न दो हजार वर्षों से हल किये जा रहे हैं और दो हजार वर्षों से **गलत** हल किये जा रहे हैं। गलत हल का कारण उपरोक्त
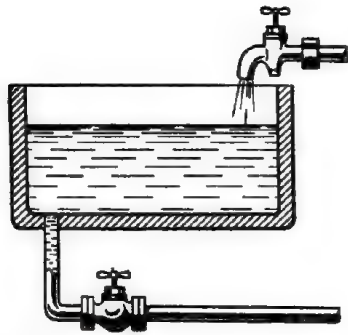
चित्र 57. हौज का प्रश्न।

बातों से समझा जा सकता है। स्मरण करें कि इन प्रश्नों को किस प्रकार हल करना सिखाया जाता है। पहला प्रश्न इस प्रकार से: पहला नल 1 घंटे में हौज का $^1/_5$ भाग भरता है और दूसरा इसी अंतराल में हौज का $^1/_{10}$ भाग खाली करता है; अतः दोनों नलों के सम्मिलित प्रभाव से प्रति घंटा हौज का

$$\frac{1}{5}-\frac{1}{10} \text{ भाग}$$

भरता है। स्पष्ट है कि हौज 10 घंटों में भर जायेगा। पर यहां गलत विचार-क्रम लागू किया गया है। हौज में पानी भरने की क्रिया समरूप मानी जा सकती है, क्योंकि नल से पानी स्थायी दबाव पर निकलता है। लेकिन हौज से पानी निकलने की क्रिया **समरूप नहीं हो सकती**, क्योंकि जैसे-जैसे पानी निकलता जाता है, हौज में पानी की ऊँचाई वैसे-वैसे घटती जाती है। दूसरा नल पूरे हौज को 10 घंटे में खाली करता है, इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि हर घंटे हौज का $^1/_{10}$ भाग ही खाली होता है। आप देखते हैं कि प्रश्न हल करने की स्कूली विधि सही नहीं है। सरल गणित की विधियों से इस प्रश्न का सही हल नहीं दिया जा सकता और इसीलिये हौज के खाली होने से संबंधित प्रश्नों को अंकगणित की पुस्तक में स्थान नहीं मिलना चाहिये।[1]

क्या ऐसा कोई बरतन बनाया जा सकता है, जिसमें पानी लागातार समरूप गति से गिरता रहे और इस पर पानी की ऊँचाई का असर न पड़े? उपरोक्त बातों को जान लेने के बाद शायद आप इसे असंभव मानेंगे।

---

[1] ऐसे प्रश्नों का सविस्तार हल मेरी पुस्तक "क्या आपको भौतिकी का ज्ञान है?" में देखें।

लेकिन यह पूरी तरह से संभव है। चित्र 58 में दिखायी गयी बोतल ही ऐसा आश्चर्यजनक बरतन है। इसके काग से हो कर एक कांच की नली लगी है। यदि आप नली से नीचे स्थित नल C खोलेंगे, तो पानी समरूप गति से गिरता रहेगा और उसकी धार तबतक क्षीण नहीं होगी, जबतक कि पानी का स्तर नली के निचले सिरे तक नहीं उतर आता। यदि नली का निचला सिरा नल के पास होगा, तो ऊपर से नल तक का पानी एकरूप गति से गिरता रहेगा। यह बात और है कि पानी की धार अत्यंत क्षीण होगी।

क्या कारण है इसका? आप कल्पनादृष्टि से देखने की कोशिश करें कि नल C को खोलने पर बरतन के भीतर क्या होता है (चित्र 58)। पहले नली का पानी गिरेगा; नली में पानी का स्तर उसके निचले सिरे तक उतर आयेगा। इसके बाद पानी के गिरने से बोतल में पानी का स्तर नीचे उतरने लगेगा और नली के सहारे उसमें बाहर की हवा प्रवेश करने लगेगी। हवा बुलबुलों के रूप में पानी से हो कर बोतल के ऊपरी भाग में जमा होगी। अब B की ऊँचाई पर दबाव सर्वत्र वातदाब के तुल्य हो जायेगा। स्पष्ट है कि नल C से पानी शुरू से अंत तक सिर्फ जल-स्तंभ BC के दबाव से निकलता है, क्योंकि वातदाब बरतन के भीतर व बाहर आपस में संतुलित रहता है। कहने का तात्पर्य है कि पानी का आरंभिक स्तर बिंदु B तक सिर्फ जल-स्तंभ BC के दबाव से उतरता है। इसीलिये इस अवधि में पानी समरूप गति से निकलता रहता है।

चित्र 58. मैरियट के बरतन की बनावट। छेद C से पानी समरूप धार से गिरता है।

अब निम्न प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करें: यदि नली के निचले सिरे के पास स्थित काग B निकाल लिया जाये, तो पानी कितनी तेजी से बाहर निकलेगा?

पता चलता है कि पानी **बिल्कुल ही नहीं निकलेगा** (स्पष्टतः सिर्फ उस

हालत में, जब छेद B की चौडाई नगण्य होगी; अन्यथा छेद की चौड़ाई जितने ऊँचे जल-स्तंभ के दबाव से पानी की पतली धार फूट पड़ेगी)। यहाँ भीतर और बाहर का दबाव वातदाब के तुल्य है और इसीलिये पानी को छेद से निकलने के लिये प्रेरित करने वाला कोई अतिरिक्त बल नहीं है।

और यदि नली के निचले सिरे से **ऊपर** स्थित छेद A को खोला जाये, तो? इस स्थिति में पानी बाहर तो क्या निकलेगा, छेद से हो कर उल्टा हवा भीतर जाने लगेगी। क्यों? कारण बहुत सीधा सा है: भीतर बरतन के इस भाग में हवा का दबाव बाहरी वातदाब से **कम** है।

इतने असाधारण गुणों वाले बरतन को विख्यात भौतिकविद मैरियट ने बनाया था। इसे "मैरियट का बरतन" कहते हैं।

हवाई बोझ

सत्रहवीं सदी के मध्य में रेंसबुर्ग शहर के निवासियों को एक विचित्र दृश्य देखने का अवसर मिला: 16 घोड़े मिल कर आपस में सटे तांबे के दो अर्धगोलों को सारी शक्ति से अलग करने में लगे हुए थे। यह दृश्य देखने के लिये सम्राट समेत जर्मनी के छोटे-बड़े सभी राजे आये हुए थे। सभी आश्चर्यचकित थे कि इन दो अर्धगोलों को आपस में सटा कर रखने वाली शक्ति मामूली हवा की थी। इस विधि से स्थानीय मेयर ने सबको दिखा दिया कि हवा "शून्य" नहीं है, उसका अपना भार होता है और वह पार्थिव वस्तुओं को पर्याप्त अधिक शक्ति से दबा कर रखती है।

यह प्रयोग 8 मई 1654 ई. में किया गया था और काफी धूमधाम से किया गया था। विद्वान मेयर राजनैतिक फूट व आपसी युद्ध के काल में भी लोगों का ध्यान अपनी वैज्ञानिक खोजों की ओर आकर्षित करने में सफल हो गये।

"मैग्डबुर्गी अर्धगोलों" के साथ इस प्रयोग का वर्णन भौतिकी की पाठ्य-पुस्तकों में देखा जा सकता है। पर मुझे विश्वास है कि पाठक इसका किस्सा स्वयं गेरिक की जुबानी सुनना अधिक पसंद करेंगे। "जर्मनी का

गैलीली" नाम से विख्यात इस उत्कृष्ट भौतिकवेत्ता की पुस्तक आम्स्टरडम में 1672 ई में प्रकाशित हुई थी। पुस्तक काफी मोटी थी और लातीनी भाषा में लिखी गयी थी। इसमें अनेकानेक प्रयोगों का वर्णन किया गया था और इसका नाम काफी विचित्र सा था:

ओटो वोन गेरिक

निर्वात व्योम

के साथ तथाकथित नवीन मैग्डबुर्गी प्रयोग, जिनका प्रथम वर्णन व्यूर्ट्सबुर्ग विश्वविद्यालय के गणित प्राध्यापक **कासपार शोट** ने किया था।

लेखकीय संस्करण अधिक सविस्तार है तथा इसमें विभिन्न नवीन प्रयोगों का समावेश कराया गया है।

उस जमाने में किताबों के नाम ऐसे ही विचित्र हुआ करते थे।

जिस प्रयोग में हमारी दिलचस्पी है, उसका वर्णन इस पुस्तक के तेरहवें अध्याय में किया गया है। यहाँ हम उसका अक्षरशः अनुवाद दे रहे हैं:

"प्रयोग, जो सिद्ध करता है कि हवा का दबाव दो अर्द्धगोलों को इतनी मजबूती से जोड़ता है कि उन्हें 16 घोड़ों की शक्ति से अलग नहीं किया जा सकता।

मैंने तीन चौथाई मैग्डबुर्गी हाथ के बराबर व्यास वाले तांबे के दो खोखले अर्द्धगोले बनाने का आर्डर दिया।[1] पर वास्तव में उनका व्यास सिर्फ $^{67}/_{100}$ के बराबर था, क्योंकि मिस्त्री, जैसा कि अक्सर होता है, ठीक वैसी चीज नहीं बना पाते, जैसा उनसे कहा जाता है। दोनों अर्द्धगोले एक दूसरे के बिल्कुल अनुकूल थे। एक अर्द्धगोले में एक नल लगा हुआ था; इस नल की सहायता से भीतर की हवा निकाली जा सकती थी और बाहर की हवा को भीतर जाने से रोका जा सकता था। इसके अतिरिक्त, अर्द्धगोलों में चार कड़े लगे हुए थे, जिनमें रस्सा लगा कर उन्हें घोड़ों के साथ

[1] "मैग्डबुर्गी हाथ" 550 mm के बराबर होता है।

बांधा गया था। मैंने एक चमड़े का छल्ला सिलाने का भी आदेश दिया था: वह मोम और तारपीन के घोल में भिगाया गया था; अर्द्धगोलों के बीच उसे दबाने पर वह उनके भीतर हवा नहीं जाने देता था। नल पंप के साथ जोड़ कर गोले के भीतर की हवा निकाल ली गयी। तब पता चला कि किस बल से दोनों अर्द्धगोले चमड़े के छल्ले के सहारे एक दूसरे को दबा कर आपस में जकड़े हुए थे। बाहर की हवा का दबाव उन्हें इतनी मजबूती से आपस में दबाये था कि 16 घोड़े (हूल देकर) भी उन्हें बिल्कुल अलग नहीं कर पा रहे थे या अलग करते भी थे, तो काफी मुश्किल से। जब अर्द्धगोले घोड़ों की सारी शक्ति के तनाव से हार कर अलग होते थे तो गोली छूटने सी धमाके की आवाज होती थी।

लेकिन नल की मूठ घुमा कर हवा के भीतर जाने का मार्ग खोल देने के बाद अर्द्धगोलों को हाथों से ही अलग कर लिया जा सकता था।"

एक सरल कलन हमें समझा सकता है कि खोखले गोले के भागों को अलग करने के लिये इतने बड़े बल (दोनों तरफ से आठ-आठ घोडों के खींचने से उत्पन्न बल) की आवश्यकता क्यों पड़ती थी। हवा हर 1 cm^2 को करीब 1 kg के बल से दबाता है। 0.67 हाथ (37 cm) व्यास वाले वृत्त का क्षेत्रफल[1] 1060 cm^2 होता है। अतः हर अर्द्धगोले पर हवा का दबाव 1000 kg (1 टन) से अधिक होता है। इसीलिये आठ घोड़ों को वाह्य हवा के विरुद्ध कार्य करने के लिये एक अर्द्धगोले को एक टन के बल से खींचना पड़ता था।

आपको लग सकता है कि आठ घोड़ों के लिये (दोनों तरफ से) यह कोई बड़ा बोझ नहीं है। पर यह न भूलें कि एक टन का बोझ खींचते वक्त घोड़े को एक टन के बराबर बल का सामना नहीं करना पड़ता। उसे चक्के और सड़क के बीच के घर्षण-बल का सामना करना पड़ता है और यह बल काफी कम होता है। अच्छी पक्की सड़क पर यह बल बोझ का सिर्फ पाँच प्रतिशत भाग होता है। अतः यदि बोझ 1 टन के बराबर

[1] यहाँ **वृत्त का क्षेत्रफल** लिया जाता है, अर्द्धगोले की सतह का नहीं, क्योंकि वातदाब उपरोक्त मान के बराबर सिर्फ तब होता है, जब वह अपने अभिलंब सतह पर क्रियाशील होता है। दी गयी स्थितियों में हम वर्तुली सतह का लांबिक **प्रक्षेप** अर्थात् बड़े वृत्त का क्षेत्रफल लेते हैं।

है, तो घोड़े को सिर्फ 50 kg के बल का सामना करना पड़ता है। (हम इसके बारे में कुछ नहीं कहते कि आठ घोड़ों को जोतने पर व्यवहार में बोझ 50% हल्का हो जाता है।) अतः आठ घोड़े के लिये एक टन का बोझ गाड़ी में रखे 20 टन के समतुल्य है। इतना बड़ा हवाई बोझ ढोना था मैग्डबुर्गी मेयर के घोड़ों को! उन्हें एक छोटे-मोटे इंजन को खींचना था और वह भी ऐसे इंजन को, जो बिना पटरी के जमीन पर खड़ा हो।

चित्र 59. कमर और पैर की हड्डियों के अलग नहीं होने का कारण है वातदाब; वह उन्हें उसी तरह सटा कर रखता है, जैसे मैग्डबुर्ग के विख्यात अर्द्धगोलों को।

नाप कर देखा गया है कि छकड़े का मजबूत घोड़ा मुश्किल से 80 kg भारी गाड़ी खींच सकता है।[1] अतः मैग्डबुर्गी अर्द्धगोलों को अलग करने के लिये दोनों तरफ से (यदि खिंचाव समरूप हो) $^{1000}/_{80}$, अर्थात् तेरह-तेरह घोड़ोंकी जरूरत पड़ेगी।[2]

पाठक को यह जान कर शायद आश्चर्य होगा कि हमारे अस्थि-पंजर के कुछ भाग उसी प्रकार से जुड़े हैं, जैसे मैग्डबुर्गी अर्द्धगोले। कमर और जांघ की हड्डियों का जोड़ मैग्डबुर्गी अर्द्धगोलों जैसा ही है। यदि उन्हें जोड़ने वाली पेशियों और मृदु अस्थियों को हटा भी दिया जाए, तो जांघ कमर से अलग नहीं होगा: उन्हें वातदाब आपस में चिपका कर रखता है, क्योंकि उनके जोड़ के बीच हवा नहीं होती।

[1] 4 km/h के वेग से घोड़े की खींचने की शक्ति औसतन उसके भार के 15% के बराबर मानी जाती है। हल्के घोड़े का भार 400 kg होता है और भारी घोड़े का – 750 kg। अत्यंत छोटे अंतरालों में (जैसे खींचना शुरू करते वक्त) खींचने का बल कई गुना अधिक हो सकता है।

[2] हर तरफ 13 घोड़ों की ही जरूरत क्यों पड़ेगी, इसका उत्तर पाठक मेरी पुस्तक "मनोरंजक यांत्रिकी" में पढ़ सकते हैं।

हिरोन के फव्वारों का नया रूप

प्राचीन यंत्रकार हिरोन के नाम से प्रसिद्ध फव्वारे की सामान्य बनावट से शायद सभी परिचित होंगे। फिर भी, इस मनोरंजक उपकरण के नवीन रूपों का वर्णन करने से पहले इसकी आरंभिक बनावट की याद दिला देना अधिक उचित होगा। हिरोन के फव्वारे में (चित्र 60) तीन बरतन होते हैं: खुला बरतन *a* सबसे ऊपर होता है और नीचे के दो बरतन *b* और *c* वायुरुद्ध होते हैं; बरतन तीन नलियों द्वारा जुड़े होते हैं, जिनकी स्थितियां चित्र में दिखायी गयी हैं। फव्वारे के चलने के लिये आवश्यक है कि *a* में थोड़ा पानी हो, *b* पानी से पूरा भरा हो और बरतन *c* हवा से भरा हो। *a* में से पानी नली के सहारे *c* में आता है और वहां की हवा को बरतन
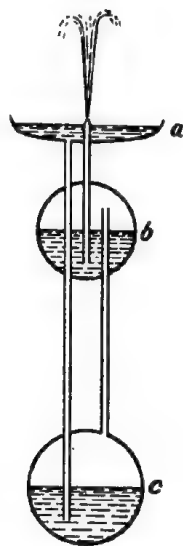
चित्र 60. हिरोन का एक प्राचीन फव्वारा।
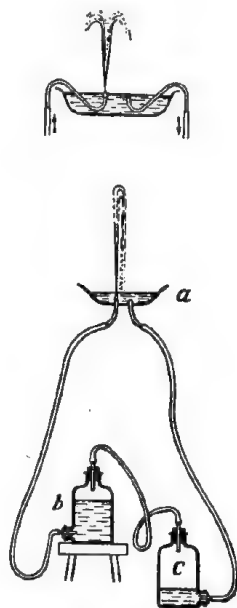
चित्र 61. हिरोन के फव्वारे का आधुनिक रूप। ऊपर – थाली की एक अतिरिक्त बनावट।

b में विस्थापित करता है। *b* में अतिरिक्त हवा के दबाव से पानी नली में ऊपर चढ़ता है और फव्वारे की तरह निकलने लगता है। जब *b* का सारा पानी निकल चुका होता है, फव्वारे का चलना बंद हो जाता है।

हिरोन के फव्वारे की पुरानी बनावट यही है। ईटली के एक स्कूल में भौतिकी की प्रयोगशाला के लिये पर्याप्त साधन नहीं होने के कारण एक शिक्षक को उपरोक्त फव्वारे की बनावट को थोड़ा सरल करना पड़ा, ताकि उसे बिना किसी विशेष उपकरण के बनाया जा सके (चित्र 61)। उसने शीशे के गोल बरतनों की जगह साधारण बोतलों का उपयोग किया और काँच या धातु की नलियों के बदले उसने रबड़ की नलियां लगायीं। सबसे ऊपर वाले बरतन में छेद करने की भी आवश्यकता नहीं रह गयी: नली के सिरों को चित्र 61 में ऊपर दिखायी गयी विधि से मोड़ कर रखा जा सकता है।

चित्र 62. पारे के दबाव से क्रियाशील फव्वारा। उसकी ऊंचाई पारद-स्तंभों की ऊँचाई के अंतर से दस गुनी अधिक है।

इस परिवर्तित रूप के कारण उपकरण का उपयोग और भी सुविधाजनक हो जाता है: जब बोतल *b* का सारा पानी बरतन *a* से होता हुआ बोतल *c* में आ जाता है, तब बोतल *b* और *c* के जगहों की अदला-बदली कर देते हैं; फव्वारा पुनः चलने लगता है। स्पष्ट है कि इस क्रिया में फव्वारा देने वाली नली को दूसरी बोतल में लगाना नहीं भूलना चाहिये।

नयी बनावट से दूसरी सुविधा यह है कि इसमें सभी बरतनों की स्थिति आवश्यकतानुसार बदल-बदल कर फव्वारे की ऊँचाई पर बरतनों की ऊँचाई के प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।

यदि आप चाहते हैं कि फव्वारा कई गुना ऊँचा हों, तो निचले बरतनों में पानी की जगह पारा और हवा की जगह पानी भरना चाहिये (चित्र 62)। ऐसे उपकरण की कार्य-विधि स्पष्ट है: बोतल *c* में से *b* में बह कर पारा

उसके पानी को तेजी से ऊपर स्थानांतरित करता है, जिससे पानी फव्वारे की तरह बहने लगता है। हमें ज्ञात है कि पारा पानी की अपेक्षा 13.5 गुना अधिक भारी है, अतः कलन किया जा सकता है कि फव्वारा कितना ऊँचा उठेगा। बरतनों में द्रव-स्तरों की ऊँचाइयों में जो अंतर हैं, उन्हें क्रमशः h_1 h_2, h_3 से व्यक्त कर लें। अब देखते हैं कि किन बलों के प्रभाववश पारा बरतन *c* से *b* में बहता है (चित्र 62)। संयोजक नली में स्थित पारे पर दो तरफ से दबाव पड़ता है। दायें से उस पर पारद-स्तंभ h_2 (जो 13.5 गुना अधिक ऊँचे जल-स्तंभ जितना दबाव डालता है) और जल-स्तंभ h_1 का सम्मिलित दबाव पड़ता है और बायें से जल-स्तंभ h_3 का दबाव पड़ता है। फलस्वरूप पारा $13.5\ h_2 + h_1 - h_3$ बल के अधीन बहता है।

पर $h_3 - h_1 = h_2$; अतः $h_1 - h_3$ के स्थान पर ऋण h_2 रखने पर प्राप्त होता है

$$13.5\ h_2 - h_2,\ \text{अर्थात}\ 12.5\ h_2$$

अतः पारा बरतन b में 12.5 h_2 ऊँचे जल-स्तंभ के भार के दबाव से आता है। सिद्धांततः फव्वारे की ऊँचाई पारद-स्तरों के अंतर h_2 से 12.5 गुनी अधिक होनी चाहिये, पर घर्षण के कारण यह ऊँचाई कुछ कम हो जाती है।

फिर भी इस उपकरण से काफी ऊँचा फव्वारा प्राप्त किया जा सकता है। दस मीटर ऊँचा फव्वारा प्राप्त करने के लिये एक बोतल को दूसरे से सिर्फ एक मीटर ऊँचा रखना काफी रहेगा। हमारे कलन का एक मजेदार निष्कर्ष यह है कि बोतलों से बरतन *a* की ऊँचाई फव्वारे की ऊँचाई पर कोई असर नहीं डालती।

शरारती बरतन

सत्रहवीं-अठारवीं सदी में बड़े लोग दिल्लगी के लिये एक विशेष बरतन रखते थे। इसकी बनावट जग की तरह होती थी और इसके ऊपरी भाग में बेल-बूटे के रूप में बड़े-बड़े छेद होते थे (चित्र 63)। किसी नीचे तबके के मेहमान को, जिसका मजाक उड़ाने से कोई नुकसान नहीं होने वाला था,
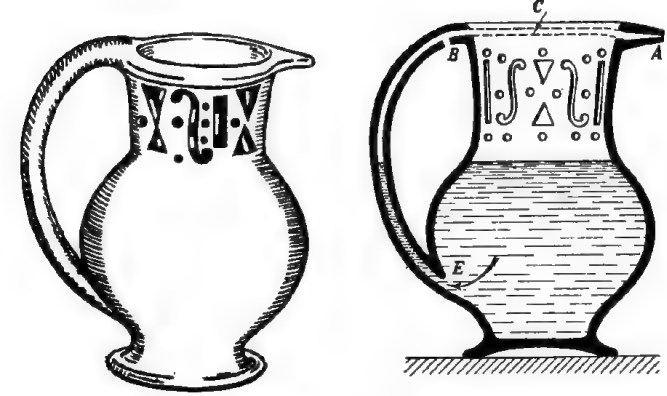
चित्र 63. XVIII-वीं शती का धोखेबाज जग और उसकी बनावट का रहस्य।

इस बरतन में शराब पीने के लिये दी जाती थी। पर कैसे पी जाये? बरतन को झुकाया नहीं जा सकता: शराब छेदों से बहने लगेगी और मुँह में एक बूंद भी नहीं पड़ेगी। ठीक किस्सों वाली बात हो जायेगी:

शहद और शराब पी,
मूछें भी न शरोबार कीं।

पर जिसे बरतन का राज मालूम था (देखें चित्र 63, दायें), वह उंगली से छेद *B* बंद कर लेता था और बिना बरतन झुकाये टोंटी मुँह में ले कर सुड़कता था। शराब छेद *E* में घुस कर हत्थे में छिपी नली से होती हुई ऊपर उठती थी और नली *C* से हो कर टोंटी *A* तक पहुँच जाती थी।

हमारे कुम्हार अभी हाल तक ऐसे बरतन बनाया करते थे। एक घर में मुझे इस तरह का बरतन देखने को मिला था। उसका राज भली-भाँति छिपा हुआ था और उस पर लिखा था: "पीयो, पर सराबोर न हो"।

औंधे गिलास में पानी का भार कितना होगा?

– कुछ भी नहीं होगा, क्योंकि ऐसे गिलास में पानी टिका नहीं रह सकता; वह गिर जायेगा, – आप कहेंगे।

– और यदि नहीं गिरे? – मैं कहता हूँ। – तब क्या होगा?

चित्र 64. कौनसा पलड़ा भारी है ?

औंधे गिलास में पानी रोकने के लिये सचमुच में एक विधि है, जो चित्र 64 में दिखायी गयी है। गिलास पानी से भर कर पलड़े से औंधा लटका दिया गया है। पानी गिरता नहीं है, क्योंकि गिलास की किनारी पानी में डूबी हुई है। दूसरे पलड़े पर ठीक वैसा ही, पर खाली गिलास रखा गया है।

कौन सा पलड़ा भारी होगा ?
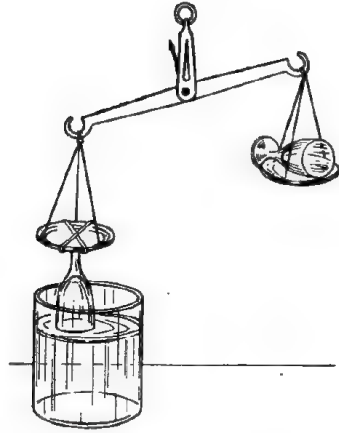
भारी वह पलड़ा होगा, जिससे पानी भरा औंधा गिलास लटका हुआ है। इस गिलास पर ऊपर से पूर्ण वातदाब पड़ता है, और नीचे से ऊपर की ओर – वातदाब घटाव गिलास में स्थित पानी के भार के बराबर बल। अतः तराजू को संतुलित करने के लिये दूसरे पलड़े पर रखे गिलास को भी पानी से भरना पड़ेगा।

इस प्रकार, उपरोक्त परिस्थितियों में औंधे गिलास के पानी का भार उतना ही होता है, जितना सीधा रखे गिलास में भरे पानी का।

जहाजों का पारस्परिक आकर्षण

1912 के पतझड़ में "ओलिंपिक" नामक स्टीमर के साथ एक घटना घटी। इसकी गिनती उस जमाने के सबसे बड़े जहाजों में होती थी। वह खुले समुद्र में चल रहा था। उसके पथ के समांतर कोई सौ-एक मीटर दूर बख्तरबंद पोत "हाउक" तेजी से भागा जा रहा था। जब दोनों जहाज चित्र 65 की स्थिति में आये, तो एक अप्रत्याशित बात हो गयी: कम आकार वाला "हाउक" मानों किसी अदृश्य शक्ति के अधीन अपने पथ से विचलित हो गया और बड़े जहाज से टकराने को उद्धत हो गया। उसे रोकने के लिये जहाजरान की सारी कोशिशें बेकार होती गयीं। दोनों जहाजों की टक्कर हुई; चोट इतनी शक्तिशाली थी कि ओलिंपिक के पार्श्व में बहुत बड़ा छेद हो गया।
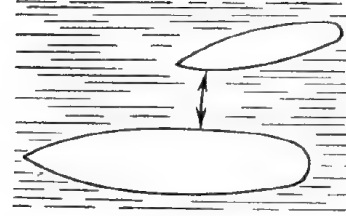
चित्र 65. टक्कर से पूर्व "ओलींपिक" और "हाउक" जहाजों की स्थिति।

जब सामुद्रिक न्यायालय में मुकदमा चला, तो "ओलिंपिक" के कैप्टेन को दोषी ठहराया गया। फैसले में कहा गया था; जब "हाउक" सामने आ रहा था, "ओलिंपिक" के कैप्टेन ने उसे रास्ता देने के लिये कोई आज्ञा नहीं दी।

स्पष्ट है कि न्यायालय को उक्त घटना में कोई असाधारण बात नहीं दिखी। सिर्फ कैप्टेन की गलती मानी गयी। पर यह **समुद्र में जहाजों के पारस्परिक आकर्षण** की घटना थी, जिसकी किसी ने कल्पना भी नहीं की होगी।

दो जहाजों की समांतर गति के वक्त ऐसी घटना पहले भी होती होगी। पर जबतक बड़े-बड़े जहाज नहीं बनने लगे, यह घटना खुल कर सामने नहीं आ रही थी। बड़े जहाजों के बनने पर उनके बीच का आकर्षण अधिक स्पष्ट नजर आने लगा। जहाजों के कमांडर अब इस बात का खयाल रखने लगे। बड़े-बड़े जहाजों के निकट आने वाले छोटे जहाजों के साथ होने वाली असंख्य दुर्घटनाओं का कारण शायद उनका खिंचाव ही रहा होगा।

क्या कारण है इस खिंचाव का? निस्संदेह, न्यूटन का गुरूत्वाकर्षण बल इसका कारण नहीं हो सकता; अध्याय 4 में हम देख चुके हैं कि यह बल बिल्कुल नगण्य है। इस संवृत्ति का कारण बिल्कुल दूसरा है और उसे नाले या नली में द्रव-प्रवाह के नियम से समझाया जाता है। यह सिद्ध किया
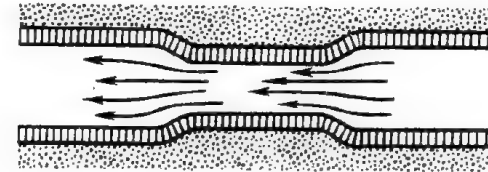
चित्र 66. विस्तृत स्थान की अपेक्षा नाले के संकीर्ण स्थान पर पानी अधिक तेज बहता है और दीवारों पर कम दबाव डालता है।
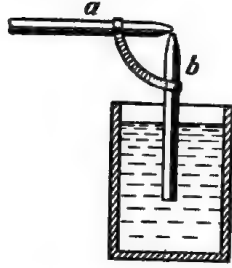
चित्र 67. फुहार देने की पिचकारी।

चित्र 68. दो गतिमान जहाजों के बीच पानी का बहाव।

जा सकता है कि यदि नाले में चौड़े और सँकरे भाग हों, तो चौड़े भाग की अपेक्षा सँकरे भाग में द्रव अधिक तेजी से बहता है और नाले की दीवार पर कम दबाव डालता है। चौड़े भाग में द्रव का प्रवाह शांत होता है और नाले की दीवारों पर वह अधिक दबाव डालता है (इसका नाम है बर्नूली सिद्धांत)।

यही बात गैसों के लिये भी सत्य है। गैस-सिद्धांत में इस संवृत्ति को इसके आविष्कारकों के नाम पर क्लीमेन-डिजोर्म प्रभाव कहा जाता है। कभी-कभी इसे वायु-स्थैतिक विरोधाभास भी कहते हैं। इसका पता सिर्फ एक संयोग के कारण ही चला था। फ्रांस के एक खान में किसी मजदूर से नीचे की ओर दाबयुक्त हवा भेजने वाले सुराख का ढक्कन बंद करने को कहा गया। वह काफी देर तक हवा की धार के साथ संघर्ष करता रहा, पर अचानक ढक्कन स्वयं बंद हो गया और वह भी ऐसी शक्ति से कि यदि ढक्कन पर्याप्त बड़ा नहीं होता, तो भयभीत मजदूर को साथ लिये हुए सुराख में घुस जाता।

स्प्रेयर (फुहारक) का कार्य भी गैस-प्रवाह की इसी विशेषता पर आधारित है। जब हम नली a में फूँकते है (चित्र 67), तो दूसरे अधिक सँकरे सिरे पर हवा का दबाव कम हो जाता है। फलस्वरूप नली b के ऊपर कम दबाव वाली हवा आ जाती है और वातदाब गिलास के द्रव को नली के सहारे ऊपर उठा देता है। ऊपरी मुहाने पर निकले वक्त द्रव फूँक

से निकली हवा की चपेट में पड़ जाता है और इसीलिये फुहारे का रूप ग्रहण लेता है।

अब हम जहाजों के आपसी खिंचाव का कारण समझ सकते हैं। जब दो जहाज एक दूसरे के समांतर चलते हैं, तो उनके पार्श्वों के बीच पानी का नाला सा बन जाता है। साधारण नाले की दीवारें अचल होती हैं और उनके बीच पानी बहता रहता है, पर यहां ठीक उल्टा है: इस नाले में पानी स्थिर रहता है और उसकी दीवारें (जहाज के पार्श्व) गतिमान होते हैं। पर इससे बलों के कार्य में कोई फर्क नहीं पड़ता। इस संकीर्ण गतिमान नाले की दीवारों को पानी कम शक्ति से दबाता है, बनिस्बत कि जहाजों के गिर्द अधिक विस्तृत स्थानों पर। अन्य शब्दों में, जहाजों के आमने-सामने वाले पार्श्वों पर पानी का दबाव कम होता है, बनिस्बत कि उनके वाह्य पार्श्वों पर। आप समझ सकते हैं कि इसका परिणाम क्या होगा। जहाज वाह्य जल के दबाव से एक दूसरे की ओर गतिमान हो जायेंगे। स्वाभाविक है कि छोटा जहाज अधिक तेजी से बढ़ेगा और बड़े जहाज का स्थानांतरण बहुत धीमा होगा। इसीलिये खिंचाव अधिक स्पष्ट तब दिखता है, जब बड़ा जहाज छोटे के पास से गुजरता है।

इस प्रकार, जहाजों का आपसी खिंचाव प्रवाहमान जल की चूसन क्रिया पर आधारित है। तेज बहाव में नहाने वालों के लिये खतरा और भँवर द्वारा खींचे जाने की क्रिया भी इन्हीं कारणों द्वारा समझायी जाती है। हिसाब लगाया जा सकता है कि 1 m/s वाली शांत क्षिप्रता से बहती नदी का पानी 30 kg के बल से आदमी को मँझधार की ओर खींच ले जा सकता है। इस बल का प्रतिरोध करना सरल नहीं है; विशेषकर पानी में, जहाँ हमारा भार संतुलन बनाये रखने में बिल्कुल काम नहीं देता। अंततः, तेज रेलगाड़ियों द्वारा खींचें जाने की क्रिया भी बर्नूली सिद्धांत द्वारा समझायी जा सकती है: 50 km/h के वेग से गतिमान गाड़ी निकट खड़े व्यक्ति को करीब 8 kg के बल से खींचती है।

"बर्नूली सिद्धांत" से संबंधित घटनायें विरल नहीं हैं, पर विशेषज्ञों के अतिरिक्त बहुत कम लोग इसे जानते हैं। इसीलिये विस्तारपूर्वक इसका अध्ययन करना लाभप्रद रहेगा। अगला निबंध इसी विषय से संबंधित है और वह ललित विज्ञान की एक पत्रिका में छपा था।

बर्नूली-सिद्धांत और उसके निष्कर्ष

डैनियल बर्नूली द्वारा 1726 में प्रतिपादित सिद्धांत कहता है: पानी या हवा की धार में दबाव अधिक होता है, यदि वेग कम होता है और दबाव कम होता है, यदि वेग अधिक होता है। इस नियम पर लागू होने वाले कुछ प्रतिबंध भी हैं, लेकिन यहाँ हम उन पर गौर नहीं करेंगे।

चित्र 69 में उक्त नियम दिखाया गया है।

नली AB में हवा फूँकी जाती है। यदि नली का परिच्छेद कम है (जैसे a पर), तो हवा का वेग अधिक है; जहाँ परिच्छेद अधिक है (जैसे b पर), वहां हवा का वेग कम है। जहां वेग अधिक है, दबाव कम है और जहां वेग कम है, दबाव अधिक है। a में हवा के दबाव का मान कम होने के कारण नली c में द्रव का स्तर ऊँचा हो जाता है। b में हवा का दबाव अधिक है, अतः नली D में द्रव का स्तर नीचे है।

चित्र 70 में नली T तांबे की चकती DD के साथ लगी है। नली T में हवा फूँकने पर वह स्वतंत्र चकती dd के ऊपर से गुजरती है। दोनों चकतियों के बीच हवा का वेग काफी अधिक होता है, पर यह वेग चकतियों की किनारी की ओर जाने पर कम होता जाता है, क्योंकि वायु-प्रवाह का अनुप्रस्थ काट तेजी से बढ़ता जाता है और चकतियों के बीच से बहती हवा का जड़त्व दलित होता जाता है। चकती के गिर्द हवा का दबाव अधिक होता है, क्योंकि उसका वेग कम है। पर चकतियों के बीच हवा
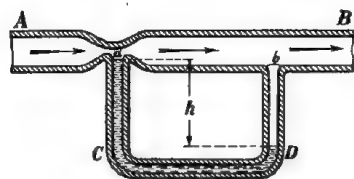
चित्र 69. बर्नूली के सिद्धांत का प्रदर्शन। नली AB के संकीर्ण स्थान (a) में विस्तृत स्थान (b) की अपेक्षा कम दबाव है।
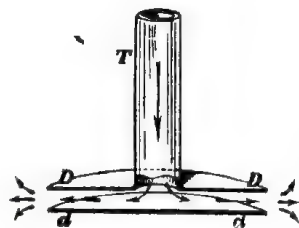
चित्र 70. चकतियों के साथ एक प्रयोग।
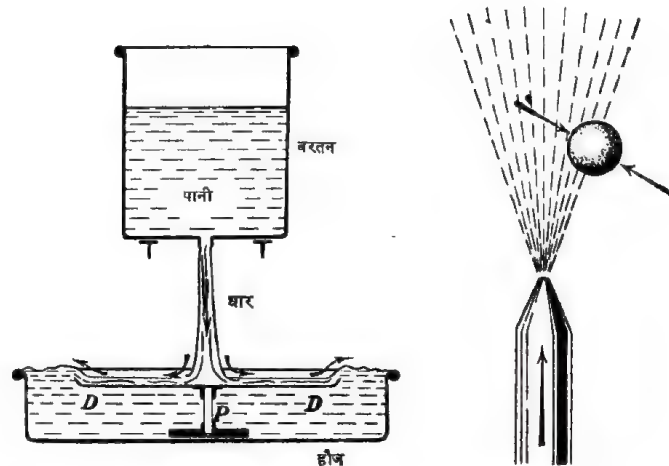
चित्र 71. जब चकती DD पर बरतन का पानी धार के रूप में गिरने लगता है, तब वह अक्ष P के सहारे ऊपर उठ आता है।

चित्र 72. हवा की फुहार पर टिकी हुई गोली।

का वेग अधिक होता है और इसीलिये उसका दबाव कम होता है। फल यह होता है कि चकतियों के बीच की हवा की शक्ति, जो उन्हें अलग करने की कोशिश करती है, उन्हें निकट लाने वाली हवा की शक्ति से कम हो जाती है। स्पष्ट है कि इस स्थिति में चकती dd चकती DD की ओर खिंच जाती है। यह खिंचाव उतना ही अधिक होगा, जितना अधिक नली में फूँकी जाने वाली हवा का वेग होगा।

चित्र 71 में चित्र 70 की तरह का ही एक उपकरण दिखाया गया है। चकती DD पर तेजी से बहता हुआ पानी चकती की ऊपर मुड़ी किनारी को लांघ कर हौज में स्थित पानी के स्तर तक ऊपर उठ आता है। इसीलिये चकती के नीचे का शांत पानी उसे ऊपर से गिरते पानी की अपेक्षा अधिक शक्ति से दबाता है, जिसके कारण चकती ऊपर उठ आती है। छड़ P चकती को अपने स्थान से इधर-उधर नहीं होने देता।

चित्र 72 में एक हलकी गेंद दिखायी गयी है, जो हवा के प्रवाह पर तैर रही है। जब वह प्रवाह से इधर-उधर होती है, तो इर्द-गिर्द की हवा
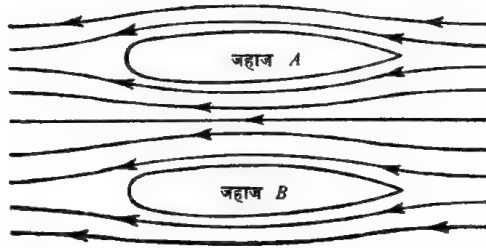
चित्र 73. एक दूसरे के समांतर गतिमान जहाज एक दूसरे की ओर खिंचने से लगते हैं।

उसे पुनः वापस धकेल देती है। यहाँ भी वही कारण है: प्रवाह में हवा का वेग अधिक है, अतः उसका दबाव कम है, पर परिवेशी हवा का वेग कम है और इसीलिये उसका दबाव अधिक है।

चित्र 73 में दो जहाज दिखाये गये हैं, जो शांत जल में पास-पास चल रहे हैं। यह स्थिति दूसरी स्थिति के समतुल्य है, जब दोनों जहाज स्थिर खड़े हों और उनके बीच से पानी बह रहा हो। जहाजों के बीच का स्थान संकीर्ण है और उसमें जल का प्रवाह अधिक तेज है, बनिस्बत कि जहाजों के दूरस्थ पार्श्वों के पास। इसीलिये जहाजों के बीच में स्थित पानी का दबाव कम होता है और उनके दूरस्थ पार्श्वों पर पानी का दबाव अधिक होता है। जहाजों के गिर्द स्थित अधिक दबाव वाला पानी उन्हें निकट ला देता है। नौयात्री अच्छी तरह से जानते हैं कि पास-पास चलने वाले दो जहाज तेजी से एक दूसरे की ओर खिंचते हैं।

स्थिति और भी गंभीर होती है, जब एक जहाज दूसरे से कुछ पीछे होता है (चित्र 74)। जहाजों को निकट लाने वाले दो बल F और F जहाज B को A की ओर काफी शक्ति से घुमा देते हैं। इस स्थिति में टक्कर अवश्यंभावी होती है, क्योंकि चालक जहाज की दिशा आसानी से नहीं बदल पाता।

चित्र 73 से संबंधित संवृत्ति को दूसरी तरह से भी दिखाया जा सकता है: चित्र 75 में रबड़ के दो हल्की गेंदें लटक रही हैं; उनके बीच में फूँक मारने से वे एक दूसरे के निकट आ जाती हैं और टकरा जाती हैं।
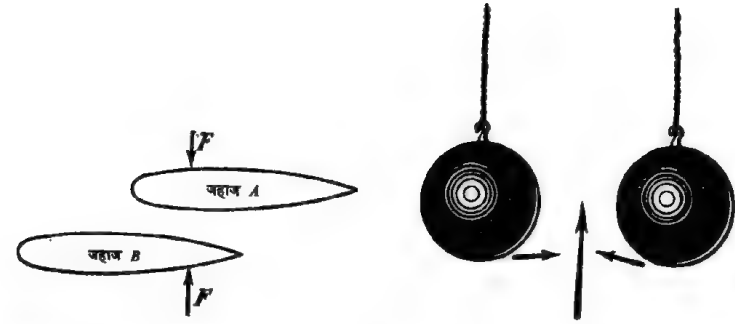
चित्र 74. आगे बढ़ते वक्त जहाज B जहाज A की ओर मुड़ जाता है।

चित्र 75. यदि दो हल्की गेंदों के बीच फूँक मारी जाये, तो वे एक दूसरे के करीब आ जाती हैं; इतना करीब कि सट भी सकती हैं।

मछली के पेट में बैलून

मछलियों के पेट में पायी जाने वाली वायु-वस्ति के कार्य के बारे में निम्न मान्यतायें हैं, जो सिर्फ सतही दृष्टि से ठीक लगती हैं। गहराई से ऊपर आने के लिये मछली इस वस्ति को बैलून की तरह फुला लेती है, जिससे उसके शरीर का आयतन बढ़ जाता है और उसके द्वारा विस्थापित जल का भार उसके खुद के भार से अधिक हो जाता है। फलतः, उत्प्लवन के नियम से मछली ऊपर उठ आती है। ऊपर उठना बंद करने के लिये या नीचे गहराई में जाने के लिये मछली इस वस्ति को पिचकाती है। उसके शरीर का आयतन तथा साथ-साथ उसके द्वारा विस्थापित जल का भार कम हो जाता है और आर्कमेडिस के नियम से वह तल की ओर उतरने लगती है।

मछली की प्लवन-वस्ति के बारे में यह धारणा फ्लोरेंटाइन अकादमी (XVII-वीं सदी) के वक्त से ही चली आ रही है और पहले-पहल 1685 में प्रो. बोरेल ने इसे व्यक्त किया था। 200 से अधिक वर्षों तक लोग इस सिद्धांत को बिना किसी एतराज के मानते चले आ रहे थे। इसे पाठ्य-पुस्तकों में भी स्थान मिल गया था। सिर्फ आधुनिक शोधकर्ताओं (मोरो, शार्बोनेल) के श्रम से इस सिद्धांत को गलत सिद्ध किया जा सका।

निस्संदेह वस्ति का तैरने के साथ घना संबंध है, क्योंकि प्रयोग के लिये शल्यविधि से उसे निकाल देने पर मछलियां सिर्फ अपनी तरणियों (पूँछ, तरण-पंखियों आदि) को चला-चला कर ही पानी में टिकी रह सकती थीं। यह काम बंद करते ही वे डूब कर तल की ओर जाने लगती थीं। पर वस्तियों की वास्तविक भूमिका क्या है? उनकी भूमिका काफी सीमित है: वे मछलियों के सिर्फ एक विशेष गहराई पर टिके रहने में सहायक होती हैं। यदि मछली तरणियों की सहायता से थोड़ा **नीचे** उतर आयेगी, तो पानी के दबाव में वृद्धि स्वयं मछली की वस्ति को दबा कर छोटी बना देगी। इससे मछली का आयतन घट जाता है और तदनुरूप उसके द्वारा विस्थापित जल का भार भी मछली के भार से कम हो जाता है और मछली और तेजी से डूबने लगती है। जितना ही नीचे वह जाती है, पानी का दबाव उतना ही बढ़ता जाता है (हर दस मीटर की गहराई पर दबाव में 1 वातदाब की वृद्धि होती है), उसका शरीर उतना ही पिचकता जाता है और उसके डूबने का वेग उतना ही तेज होता जाता है।

जब मछली अपने संतुलन वाली गहराई से ऊपर चली आती है, तो उपरोक्त प्रक्रिया उल्टी हो जाती है। ऊपर पानी का दबाव कम होने लगता है, जिससे वस्ति में स्थित गैस का आयतन बढ़ने लगता है तथा मछली और भी ऊपर चली जाती है। इस क्रिया को मछली "वस्ति के संकोचन" द्वारा नहीं रोक सकती, क्योंकि वस्ति में पेशियाँ नहीं होतीं, जिसकी सहायता से उसे छोटा-बड़ा किया जा सके।

मछलियों में वस्ति का संकोचन या प्रसारण सचमुच में बिना सक्रिय कोशिश के होता है, इसका प्रमाण निम्न प्रयोग से मिलता है। (चित्र 76)। क्लोरोफार्म सुंघा कर बेहोश की गयी ब्लीक मछली को पानी से भरे एक बंद बरतन में रखा जाता है। बरतन में पानी का दबाव लगभग उतना ही होता है, जितना प्राकृतिक जलाशयों की एक विशेष गहराई पर होता है। पानी की सतह पर मछली चित निष्क्रिय पड़ी रहती है। थोड़ा नीचे डुबाने पर वह पुनः ऊपर उपल आती है। यदि उसे तल के निकट रखा जाये, तो वह और डूब कर तल पर पैठ जाती है। यदि मछली को इन दो स्तरों के बीच में रखा जाये, तो वह न तो डूबती है, न उपलती है; वह संतुलन की अवस्था में रहती है। ये बातें वस्ति के निश्चेष्ट संकोचन या प्रसारण की मान्यता को सत्य सिद्ध करती हैं।

इस प्रकार, प्रचलित मान्यता के बावजूद भी मछली अपनी प्लवन-वस्ति को प्रसारित या संकुचित नहीं कर सकती। आयतन में परिवर्तन बगैर किसी प्रयत्न के होता है। इसका मुख्य कारण वाह्य दबाव की कमी-बेसी है (बायल-मैरियट नियम के अनुसार)। आयतन में होने वाले इन परिवर्तनों से मछली को फायदा कुछ भी नहीं है, नुकसान अधिक है। इसके कारण या तो वह अविराम त्वरित गति से डूबने लगती है या सतह पर उपलाने के लिये प्रवृत्त होती है। अन्य शब्दों में, वस्ति मछली को निश्चेष्ट स्थिति में संतुलन कायम रखने के लिये सहायता देती है, पर यह संतुलन **टिकाऊ नहीं होता**।

चित्र 76. मछली के साथ प्रयोग।

जहां तक तैरने का संबंध है, मछलियों के शरीर में वस्ति की वास्तविक भूमिका यही है। इसका कोई अन्य कार्य भी है या नहीं, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। इसीलिये इस अंग को रहस्यमय माना जा सकता है। अब तक सिर्फ इसकी जल-स्थैतिकीय भूमिका ही स्पष्ट हो पायी है।

मछुवों द्वारा अवलोकित घटनायें भी उपरोक्त बातों की सत्यता सिद्ध करती हैं: गहराई में रहने वाली मछली को जब फँसा कर ऊपर उठाया जाता है, तो वह आधे रास्ते में ही जाल से मुक्त हो जाती है। पर वह वापस गहराई में नहीं लौट पाती; सीधे तीर की तरह पानी की सतह पर उपला जाती है। ऐसी ही मछलियों की वस्ति फूल कर मुँह से बाहर दिखायी देने लगती है।

लहर और भंवर

दैनिक जीवन में दिखने वाली अनेक भौतिक संवृत्तियां भौतिकी के सरल नियमों द्वारा नहीं समझायी जा सकती हैं। हवा के बहने पर सागर की उथल-पुथल नित्य देखी जा सकती है, पर स्कूली स्तर की भौतिकी इसे भी
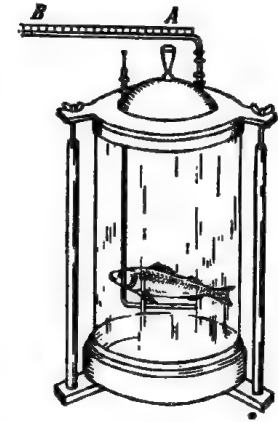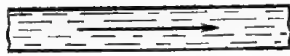
चित्र 77. नली में द्रव का शांत (लैमीनरी) प्रवाह।

चित्र 78. नली में विक्षुब्ध (टर्बुलेंट) प्रवाह।

नहीं समझा सकती। और शांत समुद्र में भी चलते जहाज के अग्र-भाग के पास लहरों के प्रकट होने का क्या कारण है? सागर-तट पर रेत लहरदार क्यों होती है? मिलों की चिमनियों से धुआँ गोल चक्कर लगाता हुआ क्यों निकलता है?

इन जैसी संवृत्तियों को समझाने के लिये गैसों व द्रवों में पायी जाने वाली तथाकथित **भँवराकार** गति की विशेषताओं को जानना चाहिये। यहाँ हम थोड़ा बहुत भँवरी संवृत्तियों के बारे में बतायेंगे और उनकी मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस विषय पर सविस्तार कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्कूली पाठ्य-पुस्तकों में भँवरी गति का नाम भी नहीं लिया जाता।

कल्पना करें कि नली में द्रव बह रहा है। यदि द्रव के सभी कण नली के अनुतीर और एक दूसरे के समांतर चल रहे हैं, तो यह द्रव की गति का सरलतम रूप है, जिसे भौतिकविद शांत या "पटलीय" धारा कहते हैं। पर यह स्थिति विरले ही पायी जाती है। अक्सर नली में द्रव की धारा अशांत होती है: नली की दीवारों से उसके अक्ष की ओर भँवरी गति देखने को मिलती है। भौतिकविद इसे **विक्षुब्ध** धारा कहते हैं। इस तरह की गति शहर के जल-प्रदाय की नलियों में होती है (यहां पतली नलियों की बात नहीं चल रही है, जिनमें धारा पटलीय होती है)? भँवरी धारा तब उत्पन्न होती है, जब द्रव एक विशेष व्यास वाली नली में एक विशेष वेग से बह रहा होता है। इसे चरम वेग कहते हैं।[1]

नली में द्रव के प्रवाह को दृष्टिगोचर बनाने के लिये पारदर्शक काँच नली का उपयोग किया जाता है और द्रव में थोड़ा सा कोई हल्का व

[1] नली में बहने वाले किसी द्रव का चरम वेग उसकी श्यानता का समानुपाती और नली के व्यास का व्युत्क्रमानुपाती होता है। (सविस्तार देखें वे. एल. किर्पिचेव की पुस्तक "यांत्रिकी पर वार्ता", सातवीं वार्ता।)

चित्र 79. सागर-तट पर पानी की भंवर से रेत पर बनी लहरें।

चित्र 80. प्रवाहमान जल में रस्सी की लहरदार गति का कारण भी भंवर ही हैं।

अघुलनशील चूर्ण मिला दिया जाता है। तब आप साफ-साफ देख सकते हैं कि भँवर नली की दीवारों से उठ कर नली के अक्ष की ओर प्रवृत्त होते हैं।

भँवरी धारा की यह विशेषता फ्रीज व अन्य शीतकारियों में प्रयुक्त होती है। ठंडी की जाने वाली दीवारों की नलियों में द्रव विक्षुब्ध धारा से बहती रहती है, जिसके कारण उसके हर कण को दीवार के समीप आ कर अपने साथ गर्मी का एक नन्हा अंश ले जाने का अवसर मिलता है। स्मरणीय है कि द्रव अपने आप में ऊष्मा का बुरा चालक होता है और यदि उसे हिलोड़ा न जाये, तो उसे ठंडा या गर्म होने में काफी समय लगता है। रक्त और उसके द्वारा सराबोर होते रहने वाले तंतुओं के बीच ऊष्मा और द्रव्य का सक्रिय विनिमय सिर्फ इसलिये संभव होता है, क्योंकि धमनियों में रक्त की धारा पटलीय नहीं, भँवरी होती है।

जो कुछ नलियों के बारे में कहा गया है, वह खुली नहरों और नदियों के बारे में भी सत्य है। नदी की धारा का शुद्ध नाप लेने वाले उपकरण नदी में (विशेष कर तल के समीप) एक स्पंदन की विद्यमानता बताते हैं। स्पंदन का अर्थ है कि धारा की दिशा निरंतर बदल रही है, अर्थात धारा का रूप भँवर जैसा है। नदी-जल के कण सिर्फ नदी के अनुतीर ही नहीं बहते, जैसा कि बहुत से लोग सोचते हैं। वे तट से मध्य की ओर भी चलते रहते हैं। इसीलिये नदी की गहराई में पूरे वर्ष $+4°C$ के बराबर तापक्रम पाये जाने का अक्सर एक गलत कारण भी बताया जाता है: पानी पूरी तरह हिलोड़ित होता रहता है, इसीलिये नदी में (झील में नहीं) तल पर वैसा ही तापक्रम रहता है, जैसा कि सतह के पास।[1]

[1] देखो मेरी पुस्तक "क्या आप भौतिकी जानते हैं?", § 133।
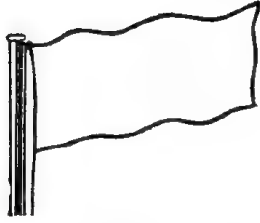
चित्र 81. हवा में फहरता झंडा।

नदी के तल पर बनने वाले भँवर अपने साथ बालू के हल्के कण भी खींच ले जाते हैं, जिसके कारण वहां रेत की लहरें बनती हैं। यही बात सागर के रेतीले तट पर देखी जा सकती है, जिस पर लहरों के थपेड़े पड़ते रहते हैं (चित्र 79)। यदि तल के पास पानी की धारा शांत होती, तो वहां की रेतीली सतह समतल होती।

इस प्रकार, भँवर जलधारा से पखारे जाने वाले पिंड के पास बनता है। उनकी विद्यमानता किसी रस्सी द्वारा भी दर्शायी जा सकती है, जो पानी की धारा में साँप की तरह लहराती रहती है (यदि उसका एक सिरा बंधा हो और दूसरा स्वतंत्र हो)। उसके इस प्रकार लहराने का क्या कारण है? रस्सी का वह भाग, जिसके निकट भँवर उत्पन्न होता है, भँवर के साथ चलना शुरू कर देता है; पर दूसरे ही क्षण रस्सी का वह भाग दूसरे भँवर की चपेट में आ जाता है, जिसकी गति विपरीत दिशा में होती है। इसीलिये रस्सी साँप की तरह लहराती रहती है (चित्र 80)।

अब द्रव से गैसों की ओर चलते हैं। पानी के बाद हवा की गतियों पर गौर करें। बवंडर या चक्रवात धूल और घास-फूस आदि को कैसे अपनी चपेट में लेते हैं, यह सभी ने देखा होगा। यह जमीन के अनुतीर हवा की भँवरी धारा है। जब हवा पानी की सतह के अनुतीर बहती है, तो जिस जगह बवंडर बनता है, वहां हवा का दबाव कम होने के कारण पानी ऊपर उठ आता है और तरगें पैदा होती हैं। मरुभूमि और बालुकूट पर रेत की लहरों के बनने का कारण यही है (चित्र 82)।

अब आप आसानी से समझ सकते हैं कि हवा में झंडा फहरता क्यों है: उसके साथ भी वही होता है, जो जलधारा में पड़ी रस्सी के साथ होता है। वातदर्शक मुर्गा ठोस पत्तर का बना होता है, इसीलिये वह स्थायी तौर पर एक दिशा नहीं दिखाता। भँवर के प्रभाव से वह अपने स्थान पर कंपन करता रहता है। चिमनी से निकलते लहरदार धुएं की उत्पत्ति भी हवा की भँवराकार गति से संबंधित है। चिमनी में गैस बवंडर की तरह भँवर खाती हुई निकलती है। जड़त्व के कारण उनकी यह गति चिमनी से निकलने के बाद भी बनी रहती है (चित्र 83)।

चित्र 82. मरुभूमि में लहरदार रेतीली सतह।

चित्र 83. चिमनी से निकलते धुएं के थक्के।

हवा की विक्षुब्ध गति विमानन के लिये बहुत बड़ा महत्व रखती है। हवाई जहाज के डैनों का रूप ऐसा होता है कि उनके नीचे स्थित विरल हवा का स्थान डैने स्वयं ले लेते है और डैनों पर हवा का भँवरी प्रभाव तीव्र हो जाता है। फल यह होता है कि डैनों को नीचे से टेक मिलती रहती है और साथ ही वे ऊपर की ओर खिंचे जाते हैं (चित्र 84)। पक्षियों के पंख फैलाये मंडराने की क्रिया में भी ऐसी ही बात देखने को मिलती है।

छप्पर हवा में कैसे उड़ जाता है? भँवर छप्पर के ऊपर हवा को विरल बना देता है और वहां दबाव कम हो जाता है। छप्पर के नीचे की हवा इस कमी को पूरी करने के लिये ऊपर उठती है और छप्पर पर नीचे से दबाव डालती है। परिणाम यह होता है कि हल्का और कमजोर छप्पर हवा के साथ उड़ चलता है। इन्हीं कारणों से खिड़कियों में लगे बड़े शीशे भीतर से दब कर (बाह्य दबाव से नहीं) निकल आते हैं। पर इन संवृतियों को सीधा-सीधी गतिमान वायु में दबाव की कमी से समझाया जा सकता है (दे. ऊपर "बर्नूली सिद्धांत," पृ. 140)।
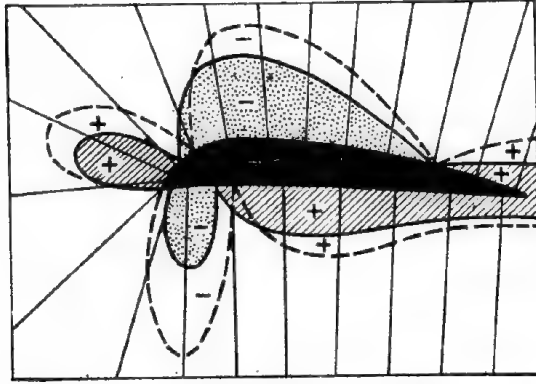
चित्र 84. **विमान के डैने पर कौनसे बल क्रियाशील रहते हैं। हवा के दबाव (+) और उसकी विरलता (—) का डैने पर वितरण प्रयोगों द्वारा प्राप्त होते हैं। टेक देने वाले और अपनी ओर खींचने वाले सभी बलों की क्रिया के परिणाम से विमान ऊपर की ओर खिंचता है। (सतत रेखायें दबाव का वितरण दखाती हैं; छिन्न रेखायें भी वही दिखाती हैं, जब विमान के वेग में तेजी से वृद्धि होती है।)**

जब भिन्न तापक्रमों वाली हवा की धारायें एक दूसरे को स्पर्श करती हुई बहती हैं, तो उनमें से प्रत्येक में भँवर बनते हैं। बादलों की अनेकानेक आकृतियां अधिकांशतः इन्हीं कारणों से उत्पन्न होती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भँवरी धारा का अनेक संवृत्तियों के साथ संबंध है।

पृथ्वी की गहराइयों में

जमीन में 3.3 km से अधिक गहरा कोई नहीं गया है, जबकि पृथ्वी की त्रिज्या 6400 km है। कहना नहीं होगा कि केंद्र तक पहुँचने के लिये रास्ता काफी लंबा है। पर जूल वेर्न की कल्पनाशक्ति "पृथ्वी-केंद्र की यात्रा" नामक उपन्यास के पात्रों—झक्की प्रोफेसर लिडेनब्रोक और उनके भतीजे आक्सेल—को पृथ्वी के केंद्र तक पहुँचा देती है। इस उपन्यास में जूल वेर्न ने भूगत यात्राओं का आश्चर्यजनक विवरण दिया है।

पृथ्वी के गर्भ की विचित्रताओं में से एक बात थी—हवा के घनत्व में वृद्धि। ऊपर उठने पर हवा का तेजी से विरलन होता है: यदि आप समांतर श्रेढ़ी के क्रम से ऊपर चढ़ रहे हैं, तो हवा के घनत्व में ह्रास गुणोत्तर श्रेढ़ी के क्रम से होता है। इसके विपरीत, सागर-स्तर से नीचे उतरने पर ऊपर स्थित परतों का दबाव बढ़ता जाता है और इसीलिये हवा घनी होती जाती है। भूगत यात्री इस महत्त्वपूर्ण बात को कैसे नहीं देखते!

वैज्ञानिक चचा और उनके भतीजे के बीच की एक बात-चीत सुनें, जो 12 ली (48 km) की गहराई में चल रही है:

"—देखो तो, मैनोमीटर क्या बता रहा है?—चाचा ने पूछा।

—दबाव बहुत शक्तिशाली है।

—अब तो तुम देख रहे हो कि थोड़ा-थोड़ा करके उतरने से हम घनित हवा के आदी होते जा रहे हैं और उससे हमें कोई तकलीफ नहीं हो रही है।

—यदि कान दुखने की बात छोड़ दें।

—यह छोटी-मोटी बात है!

—खैर,—चाचा का विरोध नहीं करने के लिये मैंने कहा।—घनित हवा में एक तरह से मजा भी आ रहा है। आपने ध्यान दिया कि इसमें आवाज कितनी प्रबल होती है?

—और नहीं तो क्या। इस वातावरण में तो बहरा भी सुनने लगेगा।

—लेकिन हवा घनी होती जा रही है। कहीं वह पानी जितनी घनी तो नहीं हो जायेगी?

—हाँ; 770 वातदाब पर।

—और इससे भी नीचे जायें तो?

—घनत्व और बढ़ जायेगा।

—फिर हम नीचे कैसे उतरेंगे?

—जेबों में पत्थर भर लेंगे।

—आपके पास तो हर सवाल का जवाब है!

मैंने आगे छान-बीन बंद कर दी। डर रहा था कि कहीं चाचा को नाराज करने वाली कोई बाधा मेरे दिमाग में न आ जाये। पर इतना तो स्पष्ट ही था कि कुछेक हजार वातदाब पर हवा ठोस अवस्था

में आ जायेगी और तब हमें यात्रा समाप्त करनी ही पड़ेगी, चाहे हम उसके दबाव को सहन भी क्यों न कर लें। यहां बहस से कुछ नहीं मिलेगा।"

कल्पना और गणित

उपन्यासकार ने यह विवरण दिया है। पर यदि हम इस अवतरण में दिये गये तथ्यों की जांच करेंगें, तो कुछ और ही बात मिलेगी। इसके लिये हमें पृथ्वी की गहराइयों में नहीं उतरना होगा; सिर्फ भौतिकी की एक छोटी सी यात्रा करनी होगी और इसके लिये कागज-पेंसिल से अधिक कुछ भी नहीं चाहिये।

सबसे पहले यह निर्धारित करने का प्रयत्न करते हैं कि वातावरण के दबाव में 1000-वें अंश की वृद्धि के लिये किस गहराई तक उतरना होगा। वातावरण का साधारण दबाव 760 मिलिमीटर ऊँचे पारद-स्तंभ के दबाव के तुल्य होता है। यदि हम हवा की बजाय पारे में डूबे रहते, तो हमें सिर्फ $760/1000 = 0.76$ mm की गहराई पर उतरना होता; यहां दबाव में हजारवें अंश की वृद्धि हो जाती। हवा में बेशक इससे कहीं अधिक गहरा उतरना होगा; इतना गुना अधिक गहरा, जितना गुना पारा हवा से भारी होता है। पारा हवा से 10500 गुना अधिक भारी है। मतलब कि हमें दबाव में हजारवें अंश की वृद्धि का अवलोकन करने के लिये 0.76 mm नहीं 0.76×10500, अर्थात् लगभग 8 m की गहराई पर उतरना होगा। इसी प्रकार से जब हम 8 m और नीचे उतरेंगे, तब वात के दबाव में एक और हजारवें अंश की वृद्धि हो जायेगी, आदि।[1] किसी भी स्तर पर हम क्यों न हों – चाहे वातावरण की ऊपरी सतह पर (22 km), या एवरेस्ट की चोटी पर (9 km) या सागर-स्तर के पास, – वातावरण के दबाव में

[1] हवा की अगली 8 मीटर मोटी परत पिछली परतों से अधिक घनी होगी, अतः दबाव के सांख्यिक मान में पिछली की अपेक्षा अधिक वृद्धि होगी। पर उसे अधिक होना भी चाहिये, क्योंकि यहां हजारवां अंश एक बड़े मान से लिया जा रहा है।

हजारवें अंश की वृद्धि पाने के लिये हमें 8 m नीचे उतरना होगा। अतः गहराई में हवा के दबाव की वृद्धि के लिये निम्न सारणी प्राप्त होती है:

पृथ्वी तल पर	दबाव 760 mm	= साधारण वातदाब
8 m की गहराई »	»	= 1.001 साधारण वातदाब का
2×8 » »	» »	= $(1.001)^2$ » » »
3×8 » »	» »	= $(1.001)^3$ » » »
4×8 » »	» »	= $(1.001)^4$ » » »

और व्यापक रूप में $h \times 8$ m की गहराई पर हवा का दबाव साधारण से $(1.001)^h$ गुना अधिक होगा; और जबतक दबाव बहुत अधिक नहीं बढ़ जाता, हवा के घनत्व में भी इतनी ही गुनी वृद्धि होगी (मैरियट का नियम)।

ध्यान देने योग्य है कि उपन्यास में पृथ्वी की सतह से सिर्फ 48 km नीचे की बात चल रही है और इसीलिये गुरुत्व बल में कमी और इससे संबंधित हवा के भार में कमी को नगण्य माना जा सकता है।

अब अंदाज किया जा सकता हैं कि जूल वेर्न के भूगत यात्री 48 km (48000) m की गहराई पर कितना दबाव अनुभव कर रहे थे। हमारे सूत्र में h बराबर है $48000/8 = 6000$। अत: 1.001^{6000} का मान ज्ञात करना होगा। चूंकि 1.001 को अपने आप से 6000 बार गुना कराना काफी थकाने वाला कार्य है और इसमें काफी समय लगेगा, इसलिये लघुगणकों की सहायता लेनी होगी, जिनके बारे में लैप्लेस ने ठीक ही कहा था कि वे कलनकर्ता के श्रम को कम करके उसकी जिंदगी दुगुनी बढ़ा देते हैं।[1]

[1] विद्यालय से ही जो लघुगणकों की सारणी से नफरत करने लग गये हैं, वे शायद महान फ्रांसीसी ज्योतिर्विद के शब्दों को पढ़ने के बाद अपना विचार बदल लेंगे। यह अवतरण "विश्व-संरचना का वर्णन" कृति से लिया गया है: "लघुगणकों का अविष्कार महीनों के कलन-श्रम को चंद दिनों में पूरा कर सदा लंबे कलनों में रत ज्योतिर्विदों की आयु को एक तरह से दुगुनी कर देता है, उन्हें गलतियों व थकावट से बचाता है। यह आविष्कार मानव-बुद्धि का यशगान है, क्योंकि यह पूर्णतया इसी (अर्थात् बुद्धि) की उपज है। तकनीक में अपने सामर्थ्य को बढ़ाने के लिये मनुष्य परिवेश

विचाराधीन व्यंजन का लघुगणक लेने पर उसके मान का लघुगणक प्राप्त होता है :

$$6000 \times \lg 1.001 = 6000 \times 0.00043 = 2.6$$

सारणी से देखते हैं कि 2.6 किस संख्या का लघुगणक है ; यही इष्ट मान है और यह 400 के बराबर है।

इस प्रकार, 48 km की गहराई पर वातावरण का दबाव साधारण से 400 गुना अधिक है। प्रयोग दिखाते हैं कि इस दबाव पर हवा का घनत्व 315 गुना बढ़ जाता है। इसीलिये यह निहायत संदेहजनक है कि यात्रियों को कान में दर्द के अतिरिक्त और कोई कष्ट नहीं महसूस हो रहा था। पर जूल वेर्न के उपन्यास में 120 और 325 km की गहराई पर भी यात्रा का वर्णन किया गया है। यहां हवा का दबाव भयानक रूप से अधिक होना चाहिये, क्योंकि आदमी तीन-चार वातदाब से अधिक दबाव बिना किसी खतरा के नहीं सहन कर सकता।

यदि इसी सूत्र पर हम कलन करें कि किस गहराई पर हवा पानी जितनी, अर्थात् 770 गुनी अधिक घनी हो जाती है, तो हमें संख्या मिलती : 53 km। पर यह परिणाम सही नहीं है ; क्योंकि अत्यधिक दबाव पर गैस का घनत्व उसके दबाव का समानुपाती नहीं होता। मैरियट का नियम सिर्फ उस स्थिति के लिये सही है, जब दबाव बहुत ज्यादा न हो या कुछेक सौ वातदाब से अधिक न हो। प्रयोग द्वारा प्राप्त हवा का घनत्व निम्न है :

दबाव	घनत्व
200 वातदाब	190
400 »	315
600 »	387
1500 »	513
1800 »	540
2100 »	564

की प्राकृतिक शक्तियों व पदार्थों का उपयोग करता है पर लघुगणकों में पूर्णतया उसकी बुद्धि व्यक्त होती है।"

घनत्व के बढ़ने का दर, जैसा कि देख रहे हैं, दबाव में वृद्धि के दर से काफी कम है। जूल वेर्न का वैज्ञानिक बेकार ही उस गहराई तक पहुँचने की उम्मीद कर रहा था, जहां हवा पानी से अधिक घनी होती। पानी जितना घनत्व हवा सिर्फ 3000 वातदाब पर प्राप्त करती है और इसके बाद उसमें शायद ही कोई संकोचन हो पाता है। हवा को 146° से भी कम तापक्रम तक ठंडा किये बिना उसे ठोस में परिणत करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

जूल वेर्न के साथ अन्याय न हो, इसके लिये उल्लेखनीय है कि उनका उपन्यास उपरोक्त तथ्यों के प्रकाश में आने के बहुत पहले छपा था, पर इससे कथानक को सत्य नहीं माना जा सकता।

ऊपर दिये गये सूत्र का उपयोग कर के यह भी ज्ञात कर लें कि स्वास्थ्य को बिना कोई खतरा पहुँचाये आदमी कितनी गहराई पर जा सकता है। हमारा शरीर 3 वातदाब से अधिक का दबाव सहन नहीं कर सकता। इष्ट गहराई को x द्वारा द्योतित करने पर समीकरण प्राप्त होता है : $(1.001)^{x/8} = 3$। लघुगणक ले कर x का मान ज्ञात करते हैं : $x = 8.9$ km।

इस प्रकार, आदमी लगभग 9 km की गहराई पर रह सकता है। यदि प्रशांत महासागर अचानक सूख जाये, तो लोग उसके तल पर कहीं भी रह लेते।

गहरे खान में

पृथ्वी के केंद्र के सबसे नजदीक कौन लोग गये हैं (उपन्यासकार की कल्पना में नहीं, वास्तविकता में)? ये हैं खान में काम करने वाले मजदूर। हमें ज्ञात हो चुका है कि दुनिया का सबसे गहरा खान दक्षिणी अफ्रीका में खोदा गया है (दे. अध्याय 4)। उसकी गहराई 3 km से भी अधिक है। यह बोरिंग मशीन द्वारा वेधित गहराई नहीं है ; मशीन की छेनी 7.5 km गहरी जा चुकी है। यह वह गहराई है, जहां आदमी पहुँच चुके हैं और काम कर रहे हैं। उदाहरण के लिये देखें कि मोरो वेल्खो के खान (जिसकी गहराई करीब 2300 m है) के बारे में फ्रंसीसी लेखक डा. ल्यूक ड्यूर्टेन के व्यक्तिगत अनुभव क्या हैं :

"स्वर्ण का विख्यात खान मोरो-वेल्खो रियो-दे-जेनेरे से 400km की दूरी पर है। चट्टानी इलाके में 16 घंटे की रेलयात्रा के बाद

आप जंगलों से घिरी एक गहरी घाटी में पहुँचते हैं। यहां एक अंग्रेज कंपनी इतनी गहराई में से सोना निकाल रही है, जितनी गहराई में आज तक कोई भी आदमी नहीं गया है।

खान में उतरने के लिये कूप थोड़ा तिरछा है। इसके बाद खान है, जो छे चरणों में बनी है। उदग्र खान कूप जैसे हैं और क्षैतिज – सुरंग जैसे। यह आधुनिक समाज का ही विशेष लक्षण है कि पृथ्वी में सबसे गहरा छेद, जो हमारे ग्रह में प्रविष्ट होने के लिये मनुष्य का सबसे साहसी प्रयत्न माना जा सकता है, स्वर्ण की प्राप्ति के लिये बनाया गया है।

मजदूरों की किरमिची वर्दी और चमड़े का जैकेट पहन लीजिये। सावधानी रखें : कुएं में गिरने वाला एक नन्हा सा कंकड़ भी आपको चोट पहुंचा सकता है। खान के "कैप्टेनों" में से एक आपका साथ देंगे। आप प्रथम सुरंग में प्रविष्ट होते हैं। वह अच्छी तरह से प्रकाशमान किया गया है। 4° ठंडी हवा आपको सिहराने लगती है; यह गहरी खानों को ठंडा रखने के लिये संवातन है।

धातु के संकीर्ण पिंजड़े में 700m गहरे प्रथम कूप को पार कर के आप दूसरे सुरंग में पहुँचते हैं। इसके बाद आप दूसरे कुंए में उतरना शुरू करते हैं। हवा धीरे-धीरे गर्म होने लगती है। अब आप सागर-स्तर से नीचे हैं।

अगले कुंए में गर्म हवा आपके चेहरे को झुलसाना शुरू करती है। पसीने से लथपथ नीची सुरंग में झुक कर चलते हुए आप उस ओर बढ़ते हैं, जहां से खोदने वाली मशीनों के गर्जन की आवाज आ रही होती है। घनी धूल में छिपे अधनंगे लोग काम कर रहे हैं; उनके शरीर से पसीने की धारायें बह रही हैं, हाथ लागातार एक दूसरे को पानी की बोतल थमा रहे हैं। अभी-अभी खोदे गये अयस्क के टुकड़ों को छूने की कोशिश मत कीजिये : उनका तापक्रम 57° है।

इस भयानक, घृणित वास्तविकता की उपज क्या है? – दिन में करीब 10 किलोग्राम सोना।"[1]

[1] रूसी साप्ताहिक "विदेश", 1933 № 13 में।

खान के तल पर भौतिक परिस्थितियों व मजदूरों के शोषण का वर्णन करते वक्त फ्रांसीसी लेखक ने उच्च तापक्रम पर तो ध्यान दिया है, लेकिन हवा के ऊँचे दबाव के बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। कलन करें कि 2300 m की गहराई पर वह कितना होगा। यदि तापक्रम उतना ही रहता, जितना पृथ्वी के तल पर रहता है, तो हमारे परिचित सूत्र के अनुसार हवा का घनत्व बढ़ जाता।

$$(1{,}001)^{\frac{2300}{8}} = 1.33 \text{ गुना।}$$

पर वास्तविकता में तापक्रम स्थिर नहीं रहता, वह बढ़ता जाता है। इसीलिये हवा का घनत्व इतना अधिक नहीं, बहुत कम बढ़ता है। फलस्वरूप खान के तल पर हवा का घनत्व पृथ्वी-तल के समीप की हवा के घनत्व से बहुत अधिक फर्क नहीं रखता। दोनों में उतना ही अंतर होता है, जितना जाड़े की बर्फीली हवा और गर्मियों की लू भरी हवा के घनत्वों में। इससे स्पष्ट हो जाता है कि खान के अतिथि ने इस बात पर क्यों नहीं ध्यान दिया।

पर ऐसी गहरी खानों में आर्द्रता बहुत अधिक होती है, जिसके कारण अधिक तापक्रम पर वहां टिकना असह्य हो जाता है। एक अफ्रीकन खान (योगान्सबुर्ग) में, जिसकी गहराई 2553 m है, 50° की गर्मी में आर्द्रता 100% तक पहुँच जाती है। आजकल यहां "कृत्रिम जलवायु" बना कर रखा जाता है। इसके शीतकारी उपकरण का प्रभाव 2000 टन बर्फ के तुल्य है।

गुब्बारे में

अबतक हम कल्पना में पाताल की यात्रा कर रहे थे, जिसमें गहराई पर हवा के दबाव की निर्भरता को व्यक्त करने वाला सूत्र हमारी सहायता कर रहा था। अब आकाश में जा कर इस सूत्र की सहायता से देखें कि बड़ी ऊँचाइयों पर हवा का दबाव कैसे बदलता है। इस स्थिति में सूत्र का रूप निम्न होगा :

$$p = 0.999^{\frac{h}{8}},$$

जहां p – हवा का दबाव है और h – मीटरों में ऊँचाई। सूत्र में संख्या 1.001 की जगह भिन्न 0.999 रखा गया है, क्योंकि 8 मीटर ऊपर स्थानांतरित होने पर दबाव में 0.001 की वृद्धि नहीं, बल्कि कमी होती है।

शुरूआत के लिये यह प्रश्न हल करें: किस ऊँचाई पर हवा का दबाव घट कर **आधा** हो जायेगा?

इसके लिये सूत्र में p की जगह 0.5 रख कर h का मान ढूंढ़ते हैं। प्राप्त होता है निम्न समीकरण :

$$0.5 = 0.999^{\frac{h}{8}}$$

जिन पाठकों को लघुगणकों का उपयोग करना आता है, वे आसानी से इस समीकरण को हल कर सकते हैं। उत्तर $h = 5.6$ km ही वह ऊँचाई है, जहां हवा का दबाव घट कर आधा हो जायेगा।

अब और ऊपर चलें। 19 से 22 km की ऊँचाई पर, जहां साहसी सोवियत विमानचालक पहुँच सके हैं, तथाकथित "स्ट्रैटोस्फेयर" है। इसीलिये इन ऊँचाइयों तक पहुँचने के लिये प्रयुक्त गुब्बारे को एयरोस्टैट नहीं, स्ट्रैटो-स्टैट (या स्ट्रैटो गुब्बारा) कहते हैं। मैं नहीं सोचता कि बुजुर्ग पीढ़ी के लोगों में ऐसा आदमी मिलेगा, जिसने सोवियत स्ट्रैटो गुब्बारों "USSR" व "OAX-1" का नाम नहीं सुना होगा। 1933 में इन्होंने ऊँचाइयों पर पहुँचने के नये कीर्त्तिमान (क्रमशः 19 km व 22 km) स्थापित किये थे।

कलन किया जाये कि इन ऊँचाइयों पर वातावरण का दबाव कितना होगा।

हम पायेंगे कि 19 km की ऊँचाई के लिये हवा का दबाव होना चाहिये

$$0.999^{\frac{19000}{8}} = 0.095 \text{ वातदाब} = 72 \text{ mm}$$

और 22 km की ऊँचाई के लिये

$$0.999^{\frac{22000}{8}} = 0.066 \text{ वातदाब} = 50 \text{ mm.}$$

पर यदि स्ट्रैटो गुब्बारों के यात्रियों की डायरी देखी जाये, तो पता चलेगा कि उन्होंने उक्त ऊँचाइयों पर कुछ दूसरा ही दबाव नोट किया था: 19 km की ऊँचाई पर 50 mm और 22 km की ऊँचाई पर 45 mm।

पर हमारे कलन के साथ इसका मेल क्यों नहीं बैठता? कहाँ हमने गलती की है?

इतने कम दबाव की स्थिति में गैसों के लिये मैरियट का नियम बिल्कुल लागू किया जा सकता है, पर हम यहाँ एक दूसरे प्रकार की भूल कर बैठे हैं: हमने यह मान लिया कि हवा का तापक्रम पूरे 20 km की ऊँचाई तक समान रहती है; पर वास्तविकता में हवा का तापक्रम ऊँचाई के साथ-साथ घटता है। माना जाता है कि एक किलोमीटर ऊँचा जाने पर तापक्रम औसतन 6.5° नीचे उतर आता है। यह बात सिर्फ 11 km तक की ऊँचाई के लिये सत्य है, जहां तापक्रम शून्य से 56° नीचे रहता है। इसके बाद काफी ऊँचाई तक तापक्रम लगभग अपरिवर्तित रहता है। यदि इन तथ्यों को ध्यान में रखा जाये (लेकिन यह सरल गणित की विधियों से संभव नहीं है), तो परिणाम वास्तविकता से कहीं अधिक मिलते-जुलते नजर आयेंगे। इन्हीं कारणों से इसके पहले गहराई पर दबाव के लिये दिखाये गये कलनों को भी लगभगी ही मानना चाहिये।

अध्याय 7

ताप-संवृत्तियां

पंखा

पंखा झलने पर निस्संदेह शीतलता का अनुभव होता है। कमरे में स्थित अन्य लोगों के लिये यह बिल्कुल हानिकर नहीं है; उल्टा, लोग ठंडी हवा के लिये आपके कृतज्ञ ही होंगे।

अब देखें कि यह कहां तक सही है। पंखा झलने पर हमें शीतल क्यों लगता है? हमारे चेहरे के निकट की हवा धीरे-धीरे गर्म हो जाती है। फिर यह अदृश्य नकाब चेहरे को "गर्म" करने लगती है, अर्थात् शरीर से ताप-हानि की क्रिया मंद करने लगती है। यदि हमारे गिर्द हवा स्थिर है, तो चेहरे के पास स्थित हवा की गर्म परत ठंडी व भारी हवा द्वारा बहुत धीरे-धीरे ऊपर की ओर विस्थापित होती है। जब हम पंखा झलते हैं, तो चेहरे के पास की गर्म हवा दूर हो जाती है और दूसरी जगह की ठंडी हवा चेहरे को स्पर्श करने लगती है और हमारे शरीर की गर्मी दूर ले जाने लगती है। शीतलता की अनुभूति का यही कारण है।

इसका मतलब है कि पंखा झल कर हम अपने शरीर के पास की गर्म हवा को अपेक्षाकृत ठंडी हवा द्वारा विस्थापित करते रहते हैं।

पंखा हवा के स्थानांतरण की क्रिया को तेज कर देता है, जिससे कमरे में शीघ्र ही हवा का तापक्रम एक जैसा हो जाता है। इसका मतलब है कि पंखा वाला व्यक्ति अपने लाभ के लिये दूसरे लोगों को घेर कर रखने वाली ठंडी हवा का इस्तेमाल करता है। पंखे के सार्थक प्रभाव के लिये एक और बात का महत्व है, जिसके बारे में हम अभी बताने जा रहे हैं।

हवा में ठंड क्यों लगती है?

सभी जानते हैं कि बर्फीली ठंड सहन करना आसान है, यदि हवा नहीं बह रही हो। पर सभी इसका सही कारण नहीं समझते। तेज हवा

में अधिक ठंड की अनुभूति सिर्फ **सजीव प्राणियों** को ही होती है: थर्मोमीटर का पारा हवा लगने से नीचे नहीं उतरता। बर्फीली ठंड में हवा बहने पर तेजी से ठंडक लगने का कारण यह है कि शरीर से (विशेष कर उसके खुले भागों से) कहीं अधिक गर्मी निकल कर वातावरण में लीन हो जाती है, बनिस्बत कि शांत मौसम में, जब शरीर द्वारा गर्म की गयी हवा नयी ठंडी हवा से इतनी जल्द विस्थापित नहीं हो पाती। हवा जितनी ही तेज होगी, प्रति मिनट उसकी उतनी ही अधिक मात्रा शरीर की सतह को स्पर्श करती हुई निकलेगी और इसके फलस्वरूप शरीर से प्रति मिनट ताप-हानि की मात्रा भी उतनी ही अधिक होगी। तेज ठंड की अनुभूति के लिये यही पर्याप्त है।

लेकिन एक कारण और है। हमारी चमड़ी से वाष्प के रूप में हमेशा आर्द्रता निकलती रहती है। वाष्पीकरण के लिये ताप चाहिये; वह हमारे शरीर से मिलता है और हमारे शरीर की निकटवर्ती हवा की परत से (यदि हवा स्थिर है, तो) वाष्पीकरण बहुत मंद होता है, क्योंकि चमड़ी के पास की हवा वाष्प से जल्द ही संतृप्त हो जाती है (आर्द्रता से संतृप्त हवा में वाष्पीकरण की क्रिया तीव्र नहीं होती)। पर यदि हवा प्रवाहमान है और चमड़ी को स्पर्श करती हुई नयी-नयी हवा गुजरती रहती है, तो वाष्पीकरण की गति अपनी प्रचंडता बनाये रखती है; वह मंद नहीं होती। और इसके लिये अधिक ताप खर्च होता है, जो हमारे शरीर से ही खींचा जाता है।

हवा की शीतकारी शक्ति कितनी बड़ी है? वह हवा के वेग और तापक्रम पर निर्भर करती है और जितना लोग सोचते हैं, उससे कहीं अधिक प्रचंड है। एक उदाहरण देता हूँ, ताकि आपको इस शक्ति का कुछ अंदाजा मिल सके। मान लें कि हवा का तापक्रम $+4^\circ$ है और वह शांत है। इस परिस्थिति में हमारी चमड़ी का तापक्रम 31° होता है। यदि हल्का समीरण हो, जो पताके में सिहरन सी गति उत्पन्न करे, पर पत्तियों को नहीं हिलाये (जब हवा का वेग 2m/s हो) तो चमड़ी का तापक्रम 7° नीचे उतर आता है। यदि पताका फहर रहा हो, अर्थात हवा का वेग 6 m/s हो, तो चमड़ी के तापक्रम में 22° की कमी आ जाती है; उसका तापक्रम 9° हो जाता है! ये तथ्य नि. नि. कालीचिन की पुस्तक "चिकित्साशास्त्र में वातावरण की भौतिकी के उपयोग का आधार" से लिये गये हैं; इसमें आप अनेक रोचक बातें जान सकते हैं।

11-567

अतः कितनी ठंड लग रही है, यह सिर्फ तापक्रम पर ही नहीं, हवा के वेग पर भी निर्भर करता है। एक ही तापक्रम पर मास्को की अपेक्षा लेनिनग्राद में अधिक ठंड महसूस होती है, क्योंकि वहां बाल्टिक समुद्र के तट पर हवा का वेग 5-6 मीटर प्रति सेकेंड होता है। मास्को में हवा का औसत वेग सिर्फ 4.5 m/s है। बैकाल झील के पार ठंड सहन करना और भी सरल है, क्योंकि वहां हवा का वेग सिर्फ 1.3 m/s होता है। पूर्वी साइबेरिया की ठंड इतनी कड़ाके की नहीं होती, जितना हम सोचते हैं। दरअसल हम युरोप की तेज हवा के आदी हो गये हैं, जबकि बैकाल के पार हवा का वेग नहीं के बराबर होता है।

मरू का ऊष्म उच्छ्वास

पिछले निबंध को पढ़ने के बाद शायद पाठक कहेंगे: "इसका मतलब है कि हवा बहने पर कड़ी गर्मी में भी शीतलता का अनुभव होना चाहिये। फिर मरूभूमि के यात्री मरू के गर्म उच्छ्वास की बात क्यों करते है?"

इस विरोधाभास का कारण यह है कि उष्णकटि की जलवायु में हवा **हमारे शरीर से अधिक गर्म होती है।** अतः इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि वहां हवा बहने पर लोगो को शीतलता की बजाय और अधिक गर्मी महसूस होती है। वहां ताप हमारे शरीर से हवा में नहीं जाता, बल्कि उल्टा हवा से हमारे शरीर में आता है। इसीलिये हमारे शरीर की सतह को प्रति मिनट जितनी ही अधिक हवा स्पर्श करेगी, हम उतनी ही अधिक गर्मी अनुभव करेंगे। यह सच है कि ऐसी स्थिति में शरीर से आर्द्रता के वाष्पीकरण की क्रिया तीव्र हो जाती है। पर इस क्रिया में जितना ताप खर्च होता है, उससे कहीं अधिक ताप शरीर को हवा से मिलती रहती है। ताप के आगमन को रोकने के लिये ही मरू इलाके के वासी, जैसे तुर्कमान, गर्म लबादा और फर की टोपी पहन कर घूमते हैं।

झीने घूंघट से गर्मी?

दैनिक जीवन एक और प्रश्न प्रस्तुत करता है भौतिकी के लिये। स्त्रियों का कहना है कि घूंघट या बुर्के से गर्मी मिलती है और उनके बिना चेहरे में ठंड लगती है। पर घूंघट के महीन झीने कपड़े को देख कर, जिसमें अक्सर बड़े-बड़े छेद होते हैं, पुरुषो को विश्वास नहीं होता। वे सोचते हैं कि यह सब कल्पना का खेल है।

पर यदि आप ऊपर कही गयी बातों को याद करें, तो आप को इस पर संदेह नहीं होगा। छिद्र कितने भी बड़े क्यों न हों, कपड़ा हवा के आवागमन पर रोक-थाम जरूर लगाता है। चेहरे की त्वचा को स्पर्श करने वाली हवा की परत धीरे-धीरे गर्म हो जाती है और घूंघट उसे उड़ने नहीं देता। इसीलिये जब स्त्रियां कहती हैं कि घूंघट से ठंड कम लगती है, विशेषकर जब ठंड अधिक न हो और हवा मंद हो, तो इस पर अविश्वास करने का कोई आधार नहीं होता।

शीतकारी घड़ा

यदि आपने ऐसे घड़ों को देखा नहीं होगा, तो इनके बारें में पढ़ा या सुना अवश्य होगा। कच्ची मिट्टी के बने इन बरतनों की यह विशेषता है कि इनमें ढाला गया पानी कालांतर में आस-पास की वस्तुओं की अपेक्षा ठंडा हो जाता है। दक्षिणी देशों में और हमारे यहाँ भी (क्रिम में) ऐसे बरतनों का काफी प्रचलन है और अलग-अलग जगहों पर ये अलग-अलग नामों से पुकारे जाते हैं, जैसे स्पेन में इन्हें "आलकारासा" कहा जाता और मिश्र में – "गाउला"।

इन घड़ों के शीतकारी प्रभाव का रहस्य सरल है: भीतर का द्रव मिट्टी की दीवार से रिस कर बाहरी सतह पर आता है और वाष्पित होने लगता है; वाष्पीकरण के लिये ताप (वाष्पीकरण के गुप्त ताप) की आवश्यक मात्रा बरतन और पानी से ली जाती है, इसीलिये पानी ठंडा होने लगता है।

पर यह सही नहीं है कि इन बरतनों में पानी बहुत ठंडा हो जाता है। दक्षिणी देशों के यात्री अपने वर्णन में कुछ बढ़ा-चढ़ा कर लिख दिया करते हैं। बहुत अधिक शीतन संभव ही नहीं है। ठंडे होने की क्रिया अनेक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। हवा जितनी गर्म होगी, द्रव बरतन के वाह्य सतह से उतनी ही जल्दी और उतनी ही अधिक मात्रा में वाष्पित होगा और इसके फलस्वरूप बरतन में स्थित द्रव उतना ही अधिक ठंडा होगा।

शीतन परिवेशी हवा की आर्द्रता पर भी निर्भर करता है: अधिक आर्द्रता से वाष्पन मंद हो जाता है, जिससे पानी कम ठंडा होता है। इसके विपरीत, शुष्क हवा में वाष्पन तेज हो जाता है और इसके कारण पानी जल्द ठंडा होने लगता है। तेज हवा भी वाष्पन की क्रिया को तीव्र कर के पानी अधिक ठंडा कर देती है। गर्मी में तेज हवा के समय भीगे कपड़े पहनने पर ऐसी ठंड सभी ने महसूस की होगी। शीतकारी घड़ों से पानी के तापक्रम में 5° से अधिक की कमी नहीं होती। कड़ी गर्मी में जब तापमापी 33° दिखाता है, घड़े के पानी का तापक्रम 28° होता है। स्पष्ट है कि इस शीतन का कोई व्यावहारिक लाभ नहीं हो सकता। पर घड़ा **पानी की ठंड को** अच्छी तरह सुरक्षित रख सकता है और उसका व्यवहार भी अधिकतर इसी काम के लिये होता है।

घड़े में पानी के ठंडे होने की सीमा निर्धारित करने का प्रयत्न किया जा सकता है।

माना कि किसी घड़े में 5 l पानी अँटता है। कल्पना करें कि इसमें से $^1/_{10}$ l पानी वाष्प में परिणत हो गया। कड़ी गर्मी में जब वातावरण का तापक्रम 33° होता है, पानी के 1 l (1 kg) की मात्रा को वाष्पित करने के लिये 580 cal ताप की आवश्यकता पड़ती है। हमारे बरतन से $^1/_{10}$ kg पानी वाष्पित हुआ है, अतः 58 cal ताप खर्च हुआ है। यदि यह सारा ताप सिर्फ घड़े के पानी से लिया गया होता, तो उसका तापक्रम $^{58}/_5$, अर्थात 12° के लगभग कम हो जाता। पर वाष्पन के लिये ताप की आवश्यक मात्रा का अधिकतम भाग स्वयं घड़े की दीवारों और परिवेश की हवा से लिया जाता है; इसके अतिरिक्त, पानी ठंडा होने के साथ-साथ गर्म हवा के संसर्ग से गर्म भी होता रहता है। इसीलिये शीतन प्राप्त संख्या 12° के आधे से अधिक शायद ही होता है।

यह कहना मुश्किल है कि घड़े का शीतन धूप में अधिक होता है या छाये में। धूप में वाष्पन तो तेज हो जाता है, पर ताप का आगमन भी बढ़ जाता है। शायद घड़े को ऐसे स्थान पर रखना उत्तम रहेगा, जहाँ छाया हो और हल्की-हल्की हवा बह रही हो।

बिना ओला ठंड

खाद्य-सामग्रियों को सुरक्षित रखने के लिये शीत-अलमारी की बनावट वाष्पन से ठंड की प्राप्ति पर ही आधारित है। इसकी बनावट जटिल नहीं

है: यह लकड़ी (या जस्ते का मुलम्मा चढ़े लोहे) की अलमारी होती है, जिसकी पिछली दीवार पर एक कपड़ा फैला रहता है। कपड़े का ऊपरी सिरा अलमारी पर रखे बरतन के पानी में डूबा रहता है और निचला सिरा नीचे रखे बरतन में। कपड़ा बाती की तरह पानी को सोखता रहता है, जिससे पानी रिस कर कपड़े के तार-तार पर फैलता हुआ धीरे-धीरे वाष्प में परिणत होता रहता है। इसीसे अलमारी के सभी खंदे ठंडे होते रहते हैं।

ऐसी अलमारी घर के किसी शीतल व हवादार स्थान पर रखनी चाहिये। बरतन का पानी हर शाम बदला जाता है, ताकि रात भर में वह अच्छी तरह ठंडा हो जाये। कहने की आवश्यकता नहीं कि पानी का बरतन और उसे सोखने वाला कपड़ा आदि बिल्कुल साफ होने चाहिये।

हम कितनी गर्मी सहन कर सकते हैं?

मनुष्य कहीं अधिक गर्मी बर्दाश्त कर सकता है, बनिस्बत कि जितना हम सोचते हैं। दक्षिणी देशों के निवासी ऐसी गर्मी सहन कर सकते हैं, जिसे हम शीतोष्ण कटि के लोग बिल्कुल असह्य मानते हैं। मध्य अस्ट्रेलिया की गर्मियों में तापक्रम छाँव में भी 46° तक चला जाता है। कई बार तो वहां छाया में 55° (सेल्सियस) तक का तापक्रम भी देखा गया है। लाल सागर से फारस की खाड़ी पार करते वक्त जहाजों में 50° से भी अधिक तापक्रम देखा जाता है, जबकि वहां बिजली के पंखों से दिन-रात वात-संचारण चलता रहता है।

पृथ्वी पर प्रकृति में 57° से अधिक का तापक्रम अवलोकित नहीं हुआ है। इतनी गर्मी कैलीफोर्निया की "मृत्यु-घाटी" में होती है। मध्य एशिया सोवियत संघ का सबसे गर्म स्थान माना जाता है, पर वहां 50° से अधिक तापक्रम नहीं होता।

ऊपर बताये गये तापक्रम **छाया में** नापे गये हैं। यहां मैं आपको समझा दूँ कि मौसम-विशेषज्ञों की दिलचस्पी धूप में नहीं, छाये में नापे गये तापक्रम के साथ क्यों होती है। बात यह है कि हवा का तापक्रम सिर्फ छाये में रखा गया थर्मोमीटर बता सकता है। यदि उसे धूप में रखा जायेगा, तो वह सूर्य-किरणों से गर्म हो कर परिवेशी हवा के तापक्रम से अधिक दिखाने

लगेगा; उसका पारा हवा की तापीय-अवस्था निर्धारित करने में कोई सहायता नहीं देगा। इसीलिये धूप में रखे हुए तापमापी का पठन कर के मौसम को गर्म करार करना कोई मानी नहीं रखता।

ऐसे प्रयोग भी किये गये थे, जिससे निर्धारित हो सके कि कौन सा अधिकतम तापक्रम मानव-शरीर बर्दाश्त कर सकता है। पता चला कि शुष्क हवा में यदि शरीर धीरे-धीरे गर्म किया जाये, तो वह पानी के उबलने का तापक्रम (100°) ही नहीं, उससे कहीं अधिक ऊँचा तापक्रम (160° C तक) सहन कर सकता है। यह सिद्ध किया ब्लैकडेन और चेंट्री नामक अंग्रेज भौतिकविदों ने, जो प्रयोग के लिये डबल रोटी बनाने की बेकरी में भट्ठी जला कर घंटों व्यतीत किया करते थे। "कमरे की हवा में अंडा उबाला जा सकता था और बीफस्टेक्स भूने जा सकते थे, पर लोगों का वहां बाल-बाँका नहीं होता था"—यह टिंडल ने ऐसी परिस्थिति के बारे में लिखा था।

इस सहनशीलता का कारण क्या है? यही कि व्यवहारतः हमारा शरीर इस तापक्रम का एक अंश भी नहीं ग्रहण करता; वह अपना साधारण तापक्रम सुरक्षित रखता है। गर्मी के विरुद्ध उसके संघर्ष का साधन है पसीना बहाना। पसीने का वाष्पीकरण हवा की उस परत का अधिकांश ताप हजम कर जाता है, जो प्रत्यक्षतः त्वचा के संसर्ग में आती है और इसीसे उसका तापक्रम पर्याप्त कम हो जाता है। इन सब बातों के लिये एकमात्र शर्त यही है कि शरीर गर्मी के स्रोत के साथ प्रत्यक्ष संसर्ग में न आये और हवा शुष्क हो।

जो मध्य एशिया में हो आये हैं, उन्होंने ध्यान दिया होगा कि 37° से अधिक तापक्रम भी बिना किसी कष्ट के सहन हो जाता है, पर लेनिनग्राद में 24° की गर्मी भी असह्य होती है। कारण यही है कि लेनिनग्राद की हवा काफी आर्द्र होती है और मध्य एशिया की हवा लगभग शुष्क होती है; वहाँ के लिये वर्षा एक विरल घटना है।[1]

---

[1] दिलचस्प बात यह है कि मेरे जेबी आर्द्रतामापक ने वहां जून महीने में दो बार शून्य आर्द्रता दिखायी थी (13 व 16 जून 1930 में)।

तापमापी या दाबमापी

एक भोले-भाले व्यक्ति के बारे में चुटकुला है कि वह टब में स्नान नहीं करना चाहता था। जब उससे पूछा गया, तो उसने एक बड़ा ही असाधारण कारण बताया:

—खतरनाक काम है यह! मैंने उसमें बैरोमीटर घुसाया, तो पता चला कि वहां तूफान आया हुआ है।

पर आप यह न सोचें कि तापमापी और दाबमापी में हमेशा अंतर किया जा सकता है। ऐसे भी तापमापी हैं, जिन्हें दाबमापी भी कहा जा सकता है। इन्हें तापदर्शी (थर्मोस्कोप) कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसके विपरीत, ऐसे दाबमापी भी हैं, जिनसे तापमापी का काम लिया जा सकता है। इसका उदाहरण है अलेक्जेंडर हिरोन द्वारा निर्मित एक प्राचीन तापदर्शी, जिसे चित्र 85 में दिखाया गया है। गोल बरतन के ऊपरी भाग में स्थित हवा सूर्य किरणों से गर्म हो कर फैलती है और पानी को दबा कर टेढ़ी नली और टीप के सहारे नीचे डिब्बे में चूने को विवश करती है।

इसके विपरीत, ठंडे मौसम में गोले के भीतर स्थित हवा की प्रत्यास्थता कम हो जाती है और डिब्बे का पानी वाह्य हवा के दबाव से सीधी नली में चढ़ कर गोले में आ जाता है।

पर यह उपकरण दाबमापीय परिवर्तनों के प्रति भी संवेदनशील है: जब वाह्य दबाव कम हो जाता है, पुराने दबाव पर स्थित गोले की हवा फैल कर पानी का एक अंश मुड़ी नली के सहारे डिब्बे में विस्थापित कर देती है; वाह्य दबाव के बढ़ने पर डिब्बे का पानी सीधी नली के सहारे गोल बरतन में गिरने लगता है। तापक्रम में प्रति डिग्री का परिवर्तन हवा के आयतन में उतना ही परिवर्तन लाता है, जितना पारे के दाबमापी स्तंभ की ऊँचाई में 760/273=करीब $2^1/_2$ mm का अंतर। मास्को में वातावरण के दबाव
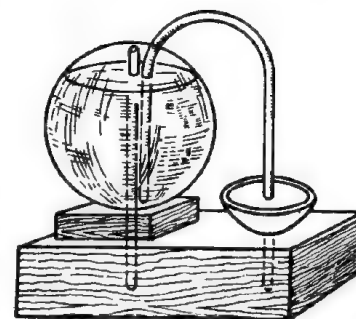
चित्र 85. हिरोन का तापदर्शी

में 20 या इससे अधिक मिलिमीटर का परिवर्तन होता है। यह हिरोन के तापदर्शी में 8°C के परिवर्तन के अनुकुल है; अतः मास्को के वातदाब में होने वाली कमी को तापक्रम में 8° की वृद्धि का फल मान लेने की भूल करना कोई बड़ी बात नहीं है।

आप देखते हैं कि प्राचीन तापदर्शी को दाबदर्शी कहलाने का भी कम अधिकार नहीं था। एक जमाने में हमारे यहां पानी का प्रयोग करने वाले बैरोमीटर बेचे जाते थे, जिनका थर्मोमीटर की तरह भी उपयोग किया जा सकता था। पर खरीददार तो क्या, इसका आविष्कारक भी इस तथ्य से अनभिज्ञ था।

लालटेन में शीशा किस लिये है?

बहुत कम लोगों को ज्ञात होगा कि लालटेन के शीशे को आधुनिक रूप ग्रहण करने के लिये कितनी लंबी यात्रा करनी पड़ी है। सहस्राब्दियों तक लोग बिना शीशे का उपयोग किये सिर्फ आग की लौ से प्रकाश प्राप्त करते थे। लालटेन या बत्ती में इस महत्वपूर्ण सुधार के लिये लियोनार्दो दे विंची (1452-1519) की प्रतिभा को जन्म लेना था। पर लियोनार्दो ने आग की लौ को शीशे की नहीं, धातु की नली से घेरा था। इसके बाद तीन शताब्दियां और बीतीं जबतक कि धातु की नली का स्थान शीशे के पारदर्शक बेलन ने लिया। जैसा कि आप देख रहे हैं, लालटेनी शीशे के आविष्कार पर दसियों पीढ़ियों को श्रम करना पड़ा है।

लालटेन के शीशे का काम क्या है?

इस अतिस्वाभाविक प्रश्न का उत्तर शायद ही सब के पास होगा। लौ को हवा के झोंके से बचाना शीशे का सिर्फ गौण कार्य है। उसका मुख्य कार्य है—लौ की **प्रभा** (जलने की क्रिया) को तीव्र करना है। लालटेन के शीशे की वही भूमिका होती है, जो भट्ठी या फैक्टरी में धुआं निकालने के लिये चिमनी की होती है:[1] वह लौ की ओर हवा के प्रवाह को बढ़ाता है।

इसे विस्तार से देखें। शीशे के भीतर का वायु-स्तंभ वाह्य हवा की

[1] हिंदी में लालटेन के शीशे को चिमनी ही कहते हैं। —अनु.

अपेक्षा जल्द गर्म होता है। गर्म होने के कारण हवा हल्की हो जाती है और आर्कमेडिस के नियम के अनुसार वह दूसरी ठंडी हवा द्वारा विस्थापित हो जाती है। ठंडी हवा के प्रविष्ट होने के लिये ही नीचे छेद बने होते हैं। इस प्रकार नीचे से ऊपर तक ताजी हवा का संवहन होता रहता है और जलन से प्राप्त गैस, कालिख आदि भी दूर होती रहती है। शीशे की ऊँचाई जितनी ही अधिक होगी, गर्म व ठंडी हवा के स्तंभों की ऊँचाइयों में अंतर उतना ही अधिक होगा। और यह अंतर जितना अधिक होगा, ताजी हवा उतनी ही तेजी से आयेगी और आग को उतनी ही अधिक उकसायेगी। फैक्टरियों की चिमनियां भी यही काम करती हैं, इसीलिये वे इतनी ऊँची बनायी जाती हैं।

दिलचस्प बात यह है कि इस पूरी परिवृत्ति को लियोनार्दो अच्छी तरह समझ चुके थे। प्रमाण हैं उनकी हस्तलिपि में ये शब्द: "जहां आग होती है, वहां उसके गिर्द हवा की धारा बनती है: वही उसका पोषण करती है और उसे प्रज्वलित करती है।"

लपट अपने आप क्यों नहीं बुझती?

यदि दहन की क्रिया पर अच्छी तरह से विचार करें, तो चाहें न चाहें, एक प्रश्न उठ आयेगा: लपट अपने आप क्यों नहीं बुझ जाती? दहन के उत्पाद हैं—जल-वाष्प और कार्बन डायक्साइड। ये अदहनशील हैं और दहन का पोषण कर सकने में असमर्थ हैं। अदहनशील पदार्थों को दहन के आरंभिक क्षणों में ही लपट को आवृत्त कर के उसे हवा के संसर्ग से वंचित कर देना चाहिये। और चूँकि हवा की अनुपस्थिति में दहन जारी नहीं रह सकता, लपट को बुझ जाना चाहिये।

पर ऐसा क्यों नहीं होता? दहन क्यों तबतक जारी रहता है, जबतक कि सारा इंधन समाप्त नहीं हो जाता? सिर्फ इसलिये कि गैसें गर्म हो कर फैलती हैं और आयतन-प्रसार के कारण **हल्की हो जाती** हैं। इसी कारण दहन के उत्पाद लपट के समीप अपने उद्‌भव-स्थल पर टिके नहीं रह पाते; शीघ्र ही ताजी हवा द्वारा ऊपर विस्थापित कर दिये जाते हैं। यदि आर्कमेडिस का नियम गैसों पर लागू नहीं होता (या गुरुत्व ही नहीं होता), तो कोई भी लपट थोड़ी बहुत जल कर स्वयं बुझ जाती।

दहन के उत्पाद लपट के लिये कितने हानिकारक होते हैं, इसकी परख आसानी से की जा सकती है। जब आप फूँक मार कर दीया या लालटेन बुझाते हैं, आप जानेअनजाने इसी बात का उपयोग करते हैं: आप ऊपर से फूँक मारते हैं, ताकि दहन के उत्पाद वापस लपट पर छा जायें। लपट ताजी हवा से वंचित हो कर बुझ जाती है।

जूल वेर्न के उपन्यास का अलिखित अध्याय

जूल वेर्न ने तोप के गोले में चांद की ओर अग्रसर तीनों हिम्मतमंदो की दिनचर्या का सविस्तार वर्णन किया है। पर उन्हों ने इसके बारे में एक शब्द भी नहीं लिखा कि इस असाधारण परिस्थिति में मिशेल अर्दान अपनी रसोइये की जिम्मेदारी कैसे निभाता है। शायद उपन्यासकार ने यह सोचा होगा कि उड़ते हुए गोले में खाना पकाना ऐसी कोई बात नहीं है, जिसका रोचक वर्णन किया जा सके। यदि वे सचमुच ऐसा सोचते थे, तो निस्संदेह वे गलत थे। बात यह है कि तोप के उड़ते हुए गोले में सारी वस्तुएं अपना भार **खो बैठती हैं** (इस मनोरंजक संवृत्ति की सविस्तार व्याख्या "मनोरंजक भौतिकी" के प्रथम भाग, "अंतर्ग्रही यात्रायें," "राकेट में सितारों की ओर," "राकेट में चांद पर" नामक मेरी अन्य पुस्तकों में दी गयी है)। जूल वेर्न ने इस परिस्थिति पर कोई ध्यान नहीं दिया। पर विश्वास कीजिये कि भारहीनता में खाना पकाना उपन्यासकार के लिये रोचक विषय हो सकता था। हमारे लिये सिर्फ अफसोस करना रह जाता है कि प्रतिभावान लेखक ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। मैं इस कमी को पूरा करने का भरसक प्रयत्न करता हूँ, ताकि पाठकों को अंदाजा मिले कि जूल वेर्न की लेखनी से कितनी सशक्त कहानी बनती।

पाठक इसे पढ़ते वक्त यह स्मरण रखें कि तोप के गोले में भार **अनुपस्थित** है; उसमें सभी वस्तुएं **भारहीनता की अवस्था** में हैं।

भारहीन रसोई

—मित्रो, हमने अभी तक नाश्ता नहीं किया है,—मिशेल अर्दान ने अपने अंतरिक्षी सहयात्रियों को बुला कर कहा।—हमारा भार

लुप्त हो गया है, तो इसका यह मतलब नहीं है कि हमारी भूख भी लुप्त हो गयी है। अभी मैं आपके लिये भारहीन खाना तैयार करता हूँ, जो बेशक दुनिया का सबसे हल्का-फुल्का नाश्ता होगा।

और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर रसोई में लग गया।

—पानी की बोतल खाली होने का बहाना कर रही है,—अर्दान एक बड़ी सी बोतल खोलने की कोशिश करता हुआ बड़बड़ा रहा था।—लेकिन मुझे धोखा देना आसान नहीं है: मुझे तो मालूम है कि तू इतनी हल्की क्यों है... खैर, काग खुल गया; अब जरा अपनी अंतर्वस्तु ढालने की कृपा करो तो।

पर बोतल लाख झुकाने पर भी पानी ढल नहीं रहा था।

—परेशान न होओ, मेरे प्यारे अर्दान,—सहायता के लिये आते हुए निकोल ने कहा।—जरा समझने की कोशिश करो कि हमारे गोले में भार नहीं है और यहां पानी **नहीं ढल सकता**। तुम्हें पानी गाढ़ी चाशनी की तरह छिड़क-छिड़क कर निकालना पड़ेगा।

अर्दान ने सोचने में देरी नहीं की; औंधी बोतल की पेंदी पर एक जोरदार धौल लगा दी। एक नयी आफत आ खड़ी हुई: बोतल से एक बड़ा सा गोला निकल कर हवा में लटक गया।

—हाय, क्या हाल हो गया पानी का?—चकित हो कर अर्दान ने कहा।—कम से कम इस अचंभे की तो जरूरत नहीं थी! वैज्ञानिक मित्रो, कुछ तो बतायें कि यह सब क्या है?

—यह पानी की बूंद है, प्यारे अर्दान, एक सीधी-सादी बूंद है। भारहीनता की दुनियां में बूंद जितनी चाहे, बड़ी हो सकती है... याद करो कि द्रव गुरुत्व के प्रभाववश ही बरतन का रूप धर लेता है, धार के रूप में बहता है, आदि। यहां गुरुत्व नहीं है, इसीलिये द्रव पूरी तरह अपने भीतर की आण्विक शक्तियों के वश में होता है। यहाँ बूंद भी गोले का रूप धारण कर लेगी, जैसे प्लेटो के विख्यात प्रयोग में तेल।

—पर प्लेटो के प्रयोग से मुझे क्या लेना है। मुझे शोरूबे के लिये पानी उबालना है और कोई भी आण्विक शक्ति मुझे नहीं रोक सकती।—बिगड़ कर उसने कहा।

और वह क्रोध में पागलों की तरह बोतल झाड़ने लगा। पानी

के बड़े-बड़े गोले उड़ती पतीली तक पहुँच कर उसकी सतह पर पसरना शुरू कर देते थे। बात यहीं खत्म नहीं होती थी: पानी भीतरी दीवारों से बाहरी पर बह आता था, – और अंत में पतीली पानी की एक मोटी परत से आच्छादित हो गयी। इस रूप में पानी उबालना असंभव था।

– कितना रोचक प्रयोग है। इससे सिद्ध होता है कि संसंजना (आपसी चिपकाव) का बल कितना बड़ा होता है, – निकोल ने निर्द्वंद भाव से कहना शुरु किया। – तुम चिंता मत करो: यह द्रव द्वारा ठोस पिंडों के भिगाने की क्रिया है; यहाँ गुरुत्व नाम की कोई चीज इस क्रिया में बाधा नहीं पहुँचा रही है, इसीलिये वह अपनी पराकाष्ठा पर है।

– बहुत दुख की बात है! – अर्दान ने अड़ कर कहा। – भीगने की क्रिया हो या कुछ और; मुझे पानी पतीली के **भीतर** चाहिये, उसके **इर्द-गिर्द** नहीं। यह भी कोई बात हुई। इन परिस्थितियों में दुनिया का एक भी रसोइया खाना पकाने को तैयार नहीं होगा।

– यदि क्लेदन (भीगने की क्रिया) तुम्हारे काम में बाधक हो रहा है, तो तुम उसे सरलतापूर्वक रोक सकते हो, – उसे शांत करते हुए बार्बीकेन ने कहा। – तुम्हे याद होगा कि यदि पिंड पर तैल पदार्थ की महीन परत हो, तो पानी उसे नहीं भिगाता। पतीली की बाहरी सतहों पर तेल मल दो, पानी उसके भीतर टिका रहेगा।

– शाबाश! इसको मैं विज्ञान का सच्चा ज्ञान कहता हूँ, – सलाह को अमल में लाते हुए उसने खुशी-खुशी कहा। इसके बाद वह पानी को गैस के चूल्हे पर गर्म करने की तैयारी करने लगा।

पर अर्दान के भाग्य में शांति नहीं थी; सब कुछ उसके विरुद्ध था। गैस का चूल्हा नखडे करने लगा: वह मंद लौ से करीब आधा मिनट जला, फिर पता नहीं क्यों अपने आप बुझ गया।

अर्दान अब चूल्हे के पीछे पड़ा। वह धैर्यपूर्वक तरह-तरह की युक्तियां लगाता रहा, ताकि लौ देर तक जलती रहे। पर सारा श्रम बेकार था: लौ जलने का नाम नहीं ले रही थी।

– बार्बिकेन! निकोल! क्या सचमुच इस जिद्दी लौ को वैसे जलने पर विवश नहीं किया जा सकता, जैसे आपकी भौतिकी और गैस की कंपनी कहती है? – फ्रांसीसी आजिज हो कर अपने मित्रों को बुलाने लगा।

– इसमें कोई नयी बात नहीं है, – निकोल ने समझाया। – इन परिस्थितियों में यही उम्मीद की जानी चाहिये थी। लौ भौतिकी के नियमों का ही अनुसरण कर रही है। और जहाँ तक गैस कंपनियों का प्रश्न है, ... मैं सोचता हूँ कि यदि गुरुत्व नहीं होता, तो उनका दिवाला निकल गया होता। तुम जानते हो कि जलने से कार्बन डायक्साइड, जलवाष्प आदि गैसें बनती हैं, जो अदहनशील हैं। साधारण परिस्थितियों में दहन के ये उत्पाद लौ के पास नहीं टिके रहते: वे गर्म हो कर हल्के हो जाते हैं और इसीलिये ताजी हवा द्वारा ऊपर विस्थापित होते रहते हैं। पर यहाँ गुरुत्व नहीं है, इसलिये दहन के उत्पाद अपनी उत्पत्ति के स्थान पर ही टिके रहते हैं और लौ को अदहनशील गैसों से ढक देते हैं। लौ के पास ताजी हवा का आना रुक जाता है और वह बुझ जाती है। आग बुझाने वाले उपकरणों के कार्य इसी बात पर आधारित हैं: वे लपट को अदहन-शील गैसों से ढक देते हैं।

– तुम कहना चाहते हो कि, – फ्रांसीसी ने टोका, – यदि पृथ्वी पर गुरुत्व नहीं होता, तो दमकलों की आवश्यकता नहीं पड़ती; आग खुद ब खुद अपनी ही निःश्वास से घुट कर बुझ जाती?

– बिल्कुल! पर अभी हालात ठीक करने के लिये एक बार फिर से गैस जलाओ; हम दोनों मिल कर फूँक लगाते हैं। मैं सोचता हूँ कि हमें हवा की कृत्रिम संवहन धारायें बनाने में सफलता मिल जायेगी और लौ वैसे ही जलने लगेगी, जैसे पृथ्वी पर।

यही किया गया। अर्दान ने फिर से गैस जलायी और रसोई में लग गया। वह निकोल और बार्बिकेन की हालत देख कर मन ही मन खुश हो रहा था: उन्हें लागातार हवा करना पड़ रहा था, ताकि लौ को ताजी हवा मिलती रहे। फ्रांसीसी अपने हृदय में इन सारी आफतों का कसूरवार अपने मित्रों और उनके विज्ञान को मान रहा था।

– अब आप एक तरह से कारखाने की चिमनी का काम कर रहे हैं, क्योंकि ताजी हवा के लिये संवहन धारा बना रहे हैं, – अर्दान

ने हँसी उड़ाने के मूड में बोलना शुरू किया। – मुझे आप लोगों पर बहुत तरस आ रहा है, मेरे वैज्ञानिक मित्रो, लेकिन यदि हम गर्म-गर्म नाश्ता चाहते हैं, तो भौतिकी की गुलामी करनी पड़ेगी।

पंद्रह मिनट बीत गये, आधा घंटा बीता, घंटा बीत गया, पर पतीली में पानी उबलने का नाम नहीं ले रहा था।

– तुम्हे धीरज से प्रतीक्षा करनी होगी, अर्दान। बात यह है कि साधारण भारयुक्त पानी बहुत जल्द गर्म होता है, क्योंकि उसमें गर्म व ठंडी परतों का निरंतर स्थानांतरण होता रहता है। नीचे की परत गर्म हो कर हल्की हो जाती है और ऊपर उठ आती है। उसका स्थान ठंडी परत ले लेती है और गर्म होने लगती है। फल यह होता है कि शीघ्र ही सारा पानी ऊँचे तापक्रम पर पहुँच जाता है। तुमने कभी पानी को नीचे की बजाय ऊपर से गर्म किया है? इस स्थिति में परतों का स्थानांतरण नहीं होता; ऊपर की गर्म परत अपने स्थान पर टिकी रहती है। पानी की ताप-चालकता नगण्य होती है, इसलिये ऊपरी परत निचली परत को गर्मी नहीं देती; वह स्वयं उबलने लगती है, पर नीचे की परत में रखा हुआ बर्फ का टुकड़ा पिघलने का भी नाम नहीं लेता। पर हमारी भारहीन दुनिया में कोई फर्क नहीं पड़ता कि किधर से पानी गर्म किया जा रहा है। किधर से भी गर्म करो, पतीली में संवहन धारायें नहीं बनेंगी और इसीलिये पानी बहुत धीरे-धीरे गर्म होगा। यदि तुम चाहते हो कि पानी जल्द गर्म हो, तो तुम्हें पानी को निरंतर हिलोड़ें देते रहना होगा।

निकोल ने अर्दान को सावधान कर दिया कि वह पानी को सौ डिग्री तक गर्म न करे, उसे कुछ कम तापक्रम पर ही रखे। 100° पर बहुत अधिक मात्रा में वाष्प बनने लगेगा, जिसका विशिष्ट भार पानी के विशिष्ट भार के बराबर होगा (दोनों ही शून्य हैं) और इसीलिये पानी और भाप मिल कर समरूप फेन बनाने लगेंगे।

एक दूसरा घपला मटर के साथ हो गया, जिसके कारण मित्रों को कुछ कम कठिनाई नहीं उठानी पड़ी। अर्दान पोटली खोल कर मटर पतीली में डालना चाहता था। इसके लिये उसने गलती से पोटली को एक झटका दे दिया। फिर क्या था: मटर के सारे दाने हवा में बिखर कर उड़ने लगे, दीवारों से टकरा-टकरा कर सब ओर

मंडराने लगे। इन घुमक्कड़ दानों के कारण एक दुर्घटना होती-होती बच गयी: निकोल की साँस के साथ एक दाना उसके फेफड़े तक पहुँच गया और उसका खाँसी से दम घुटने लगा। फिर से ऐसी दुर्घटना न हो जाये, इसके लिये मित्रों ने पहले हवा साफ करने का निश्चय किया। तीनों मटर के दाने पकड़ने में लीन हो गये। यहाँ तितली पकड़ने वाली जाली काम आ गयी, जिसे अर्दान ने चांद की तितलियों का संग्रह करने के लिये अपने साथ रख लिया था।

इन परिस्थितियों में खाना बनाना सचमुच ही जटिल काम था। अर्दान बिल्कुल सही कह रहा था कि कोई भी अच्छा रसोइया यहाँ खाना बनाने को राजी नहीं होगा। बीफस्टेक्स भूनने में भी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा: मांस के टुकड़े को हर समय काँटे से दबा कर रखना पड़ रहा था, क्योंकि तेल का स्प्रिंग जैसा प्रत्यास्थ वाष्प बीफस्टेक्स को पतीली से उछाल देता था और कच्चा मांस "ऊपर" उड़ने लगता था (यदि "ऊपर" शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, जहाँ न तो "ऊपर" था, न "नीचे")।

इस गुरुत्वहीन दुनिया में खाना खाना भी मुश्किल काम था। बैठने का कोई प्रश्न नहीं था; तीनों मित्र अजीबोगरीब मुद्राओं में एक दूसरे से सर के बल टकराते हुए मंडरा रहे थे (कहना नहीं होगा कि दृश्य बड़ा मनोहर था!)। टेबुल, कुर्सी, बेंच आदि जैसी वस्तुएं इस दुनिया में बेकार थीं। सच पूछिये तो टेबुल की जरूरत भी नहीं थी, यदि अर्दान की अकाट्य इच्छा नहीं होती कि "टेबुल पर" ही खाना खाया जाये।

शोरबा बनाना तो कठिन काम था ही, पर इससे भी कठिन काम निकला उसे निगलना। पहले तो इस भारहीन शोरबे को कप में ढालना ही कठिन था। इस चक्कर में अर्दान की सुबह से अबतक कि मिहनत नष्ट होते-होते रह गयी। वह भूल गया कि शोरबा भारहीन है और उसे ढालने के लिये उसने पतीली की पेंदी पर एक धौल जमा दी। परिणामस्वरूप पतीली से द्रव का एक बड़ा सा गोला उछल आया – यह वर्तुलज रूप में शोरबा था। यहाँ अर्दान को सरकस की बाजीगरी दिखानी पड़ी, अन्यथा इतनी कठिनता से बना हुआ शोरबा हाथ से निकल जाता।

खाने के लिये चम्मच का प्रयोग भी निष्फल रहा। शोरबा चम्मच के गड्ढे में जमा होने की बजाय पूरे चम्मच पर फैल जाता था; यहाँ तक कि उंगलियाँ भी गीली हो जाती थीं। चम्मच पर तेल मल दिया गया, ताकि भीगने की क्रिया रुक जाये, पर इससे स्थिति सुधरी नहीं: चम्मच में शोरबा गोली का आकार ग्रहण कर लेता था, जिसे मुँह तक लाने की कोई संभावना नहीं थी।

अंततोगत्वा निकोल ने समस्या का हल ढूँढ़ निकाला: उसने मोम चढ़े कागज की नली बनायी और उसके सहारे सुड़क-सुड़क कर पीने लगा। यात्रा के पूरे दौर मित्रगण पानी, शराब आदि कोई भी द्रव इसी विधि से पीते रहे।[1]

पानी आग क्यों बुझाता है?

इस सरल प्रश्न का उत्तर सभी नहीं जानते, इसीलिये यदि मैं संक्षेप में बता दूँ, तो आशा है कि पाठक बुरा नहीं मानेंगे।

---

[1] इस पुस्तक के पिछले संस्करणों के पाठकों ने इस बात पर शंका प्रकट की थी कि गुरुत्वहीन परिवेश में भी द्रव पीया जा सकता है, चाहे उपरोक्त विधि ही क्यों न इस्तेमाल की गयी हो। अक्सर उनके पत्रों में यह तर्क होता था: उड़न-गोले में हवा भी भारहीन है, अतः उसमें दबाव डालने का गुण नहीं हो सकता; और यदि दबाव नहीं है, तो सुड़क कर भी आप द्रव को नहीं पी सकते। विचित्र बात तो यह है कि यही आपत्ती पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कुछ समीक्षकों ने भी उठायी थी। जबकि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हवा की भारहीनता का उसके दबाव के साथ कोई संबंध नहीं है: किसी भी बंद व्योम (या बरतन) में हवा दबाव डालती है; इसलिये नहीं कि उसमें भार है, बल्कि इसलिये कि गैसीय पिंड होने के नाते वह असीम प्रसारण की प्रवृत्ति रखती है, जिसके कारण उसे घेर कर रखने वाली दीवारों पर दबाव पड़ता है। पृथ्वी-तल पर खुले व्योम में दीवार की भूमिका गुरुत्व निभाता है; वही हवा के असीम प्रसार में बाधा डालता है। गुरुत्व और दबाव के इस प्राकृतिक संबंध के कारण ही मेरे आलोचक गलती कर बैठे थे।

प्रथमतः, पानी जलती वस्तु के संसर्ग में आ कर वाष्प में परिणत हो जाता है और इस क्रिया में वह जलती वस्तु से ताप का बहुत बड़ा अंश लेकर खर्च कर देता है; खौलते पानी को पूरी तरह वाष्प में परिणत करने के लिये पाँच गुना अधिक ताप की आवश्यकता पड़ती है, बनिस्बत कि ठंडे पानी को सौ डिग्री तक गर्म करने में।

और दूसरे: इस विधि से उत्पन्न वाष्प उसे जन्म देने वाले पानी से सैकड़ों गुना अधिक आयतन रखता है; वह जलती वस्तु को घेर कर उसके चारों तरफ की हवा को विस्थापित कर देता है और बिना हवा के कोई भी वस्तु नहीं जल सकती।

पानी की अग्निशामक शक्ति बढ़ाने के लिये कभी-कभी उसमें बारूद मिला दिया करते हैं। पढ़ कर आपको आश्चर्य होता होगा, पर बात काफी बुद्धिमानी की है: बारूद बहुत जल्द जल जाती है और ढेर सारी अदहनशील गैसें बना देती है। ये गैसें जलती वस्तु को आवृत्त कर के जलने की क्रिया में बाधा डालने लगती हैं।

आग से अग्नि-शमन

आपने सुना होगा कि जंगल या ऊँची घास व झाड़ियों वाले विस्तृत मैदान में लगी आग को रोकने के लिये कभी-कभी दूसरी तरफ से आग लगा दी जाती है। नयी लपटें मार्ग में मिलने वाले दहनशील पदार्थों को जला कर उसे उसके आहार से वंचित कर देती हैं। जैसे ही आग की दोनों दीवारें मिलती हैं, दोनों तरफ की आग बुझ जाती है, मानो वे एक दूसरे को निगल गयी हों।

अमेरिका के एक मैदान में लगी आग को इस विधि से बुझाने की विधि का वर्णन बहुतों ने कूपर के उपन्यास "प्रेयरी" में पढ़ा होगा। बूढ़े ट्रैपर (बहेलिये) द्वारा पथिकों की मैदानी आग से रक्षा का नाटकीय दृश्य भुलाया नहीं जा सकता। "प्रेयरी" का यह अंश उद्धृत किया जा रहा है:

"बूढ़ा अचानक उठ कर खड़ा हो गया।
—अब कुछ करना चाहिये; समय आ गया है,—उसने कहा।
—अब! अब बहुत देर हो चुकी है, बूढ़े।—मिडिलटोन ने चीख

12-567

चित्र 86. आग से आग बुझाना।

कर कहा। — आग हमसे कोई चौथाई मील की दूरी पर है और हवा उसे भयानक गति से हमारी ओर बढ़ा रही है!

— आग-वाग से मैं नहीं डरता। आओ बहादुरो, जरा इस सूखी घास को हाथ लगाते हैं। यहाँ जमीन को थोड़ी नंगी करनी है।

जल्द ही करीब 20 फीट व्यास वाली गोलाकार जगह साफ हो गयी। ट्रैपर ने औरतों को आग से दूर वाले छोर पर खड़ा रहने और उन्हें अपने कपड़ों को कंबल से लपेट लेने की हिदायत दे दी; कपड़ों के जल उठने का खतरा अधिक था। यह सावधानी बरत लेने के बाद बूढ़ा उस ओर बढ़ा, जिधर से आग की लपलपाती लपटें उन्हें छल्ले की तरह घेरती चली आ रही थीं। उसने मुट्ठी भर घास बंदूक की नली पर उठायी और उसमें आग लगा दी। सूखी घास क्षण भर में लहक उठी। बूढ़े ने उसे ऊँची झाड़ियों में फेंक दी और साफ की हुई जगह के बीच में खड़ा हो कर अपने काम का नतीजा देखने लगा।

नयी लपटें भुक्खड़ों की तरह अपने शिकार पर टूट पड़ीं और मैदान को सफाचट करती हुई आगे बढ़ चलीं।

— अब आप देखेंगे कि आग आग को कैसे बुझाती है।

— क्या इससे खतरा नहीं है? — मिडिलटोन ने आश्चर्य से पूछा। — क्या आप दुश्मन को दूर भगाने की बजाय उसे और करीब तो नहीं ला रहे हैं?

अब आग तीन तरफ से बढ़ रही थी; चौथी दिशा में उसका अंत हो रहा था, वह भूख से दम तोड़ रही थी। वहाँ खाना नहीं था। आग के पीछे धुँआ छोड़ती काली जमीन छूटती जा रही थी। घास गढ़ने पर भी वह इतनी साफ नहीं होती।

भगेडुओं की स्थिति और भी खतरे में होती, यदि उनके द्वारा साफ की गयी जमीन का क्षेत्रफल बढ़ता नहीं जाता, — आग दूसरी दिशा से भी तो बढ़ रही थी!

कुछ मिनटों बाद लपटें हर ओर पीछे हटने लगीं। लोग धुएं के बादलों में लिपटे हुए थे, पर पागलों की तरह बढ़ रही आग की बाढ़ से बिल्कुल स्वतंत्र थे।

लोग ट्रैपर द्वारा प्रयुक्त विधि की सरलता पर चकित थे और उसके कारनामे को यूं देख रहे थे, जैसे फेर्दिनांद के दरबारी कोलंबो को, जब वह अंडे को टेबुल पर उसके सिरे के सहारे खड़ा कर रहा था।"

पर मैदानी आग बुझाने की विधि इतनी सरल नहीं है, जितना ऊपर से देखने में लगता है। आग बुझाने के लिये आग भेजने का काम किसी अनुभवी व्यक्ति को ही करना चाहिये, अन्यथा प्रकोप कम होने की बजाय बढ़ भी सकता है।

इसके लिये कितनी निपुणता की आवश्यकता है, यह आप निम्न प्रश्नों का उत्तर देने के बाद ही समझ सकेंगे: ट्रैपर द्वारा लगायी गयी आग असली आग की दिशा में ही क्यों भागने लगी; वह उल्टी दिशा में क्यों नहीं बढ़ने लगी? आखिर हवा आग की ओर से आ रही थी और आग को पथिकों की दिशा में खदेड़ रही थी! इसीलिये ट्रैपर द्वारा लगायी गयी आग को असली आग, की ओर नहीं, उल्टा लोगों की ओर बढ़ना चाहिये था। पर यदि ऐसा होता, तो राहियों की मृत्यु निश्चित थी।

क्या रहस्य था ट्रैपर की विधि का?

भौतिकी के एक साधारण नियम का ज्ञान। यह ठीक है कि हवा मैदान

के जलते भाग से पथिकों की ओर बह रही थी, पर आग के **आगे-आगे, उसके निकट**, हवा का विपरीत बहाव भी होना चाहिये था। आग से गर्म हो कर हवा हल्की हो जाती है और ऊपर उठने लगती है। रिक्त स्थान को भरने के लिये मैदान के दूसरे हिस्सों से ताजी हवा का आग की ओर बढ़ना शुरू हो जाता है। इसीलिये आग की सीमा के पास **हवा का खिंचाव लपटों की ओर होता है।** आग तभी जलानी चाहिये, जब असली आग पर्याप्त निकट आ जाये, अर्थात् जब असली आग की ओर हवा का खिंचाव महसूस होने लगे। इसीलिये ट्रैपर जल्दीबाजी नहीं कर रहा था; वह शांत खड़ा आवश्यक क्षण की प्रतीक्षा कर रहा था। यदि असली आग की ओर हवा का खिंचाव महसूस करने के थोड़ा पहले वह आग लगा देता, तो आग उल्टी उन्हीं की ओर बढ़ने लगती और लोगों के सामने मरने के सिवा कोई चारा नहीं बचता। आग लगाने में देर भी नहीं की जा सकती थी; असली आग काफी निकट आ जाती।

उबलते पानी से पानी उबालना

एक छोटी सी शीशी में पानी भर कर आग पर चढ़ी पतीली के शुद्ध पानी में इस प्रकार डुबाइये कि शीशी पतीली की पेंदी को स्पर्श न करे। इसके लिये आपको शीशी महीन तार से बांध कर लटकानी पड़ेगी। कायदे से, जब पतीली का पानी खौलने लगेगा, शीशी के पानी को भी खौलने लगना चाहिये। पर आप जितनी मर्जी इंतजार कर सकते हैं; ऐसा नहीं होगा। शीशी के भीतर पानी गर्म होगा, बहुत गर्म हो जायेगा, पर खौलेगा नहीं। खौलता पानी इतना गर्म नहीं होता कि पानी को खौला सके।

निष्कर्ष आशातीत है, पर ऐसा होगा – यह पहले से कहा जा सकता था। पानी को खौलाने के लिये 100° C तक उसे गर्म करना ही पर्याप्त नहीं है: उसे इतना और अतिरिक्त ताप देना होगा कि वह एक समुच्च अवस्था से दूसरी (वाष्प की अवस्था) में आ जाये।

शुद्ध जल 100° C पर खौलने लगता है; साधारण परिस्थितियों में आप उसे जितना चाहें, गर्म कर सकते हैं; उसका तापक्रम इस बिंदु से ऊपर नहीं उठेगा। अर्थात् ताप का स्रोत, जिससे आप शीशी का पानी गर्म कर रहे हैं, 100° तापक्रम पर है; इसलिये वह शीशी के पानी को इससे

अधिक गर्म नहीं कर सकता। जब दोनों बरतनों में स्थित पानी का तापक्रम समान (100° C) हो जायेगा, तब **पतीली के पानी से शीशी के पानी की ओर ताप का संचार बंद हो जायेगा।**

अतः शीशी के पानी को वाष्प में परिणत करने के लिये अतिरिक्त ताप उसे उपरोक्त विधि द्वारा नहीं दिया जा सकता (100° C तक गर्म किये गये एक ग्राम पानी को वाष्प में परिणत करने के लिये 500 कैलोरी अतिरिक्त ताप देना पड़ता है)। यही कारण है कि शीशी का पानी पतीली में गर्म हो जाता है, पर खौलता नहीं।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है: पतीली के पानी और शीशी के पानी में आखिर अंतर क्या है? शीशी में भी तो वही पानी है; सिर्फ वह बाकी पानी से शीशे की दीवार द्वारा घिरा हुआ है। फिर उसके साथ वही क्यों नहीं होता, जो बाकी पानी के साथ होता है?

क्योंकि दीवार शीशी में स्थित पानी को उन संवहन धाराओं में भाग लेने से वंचित कर देती है, जो पतीली के पानी को हिलोड़ती रहती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उबलते पानी की गर्मी से पानी उबालना संभव नहीं है। पर यदि पतीली के पानी में मुट्ठी भर नमक घोल दिया जाये, तो बात दूसरी हो जाती है। नमकीन पानी सौ डिग्री पर नहीं, कुछ अधिक पर खौलता है और इसीलिये वह शीशी के शुद्ध पानी को खौलाने की सामर्थ्य रखता है।

क्या पानी को बर्फ से खौलाया जा सकता है?

कुछ पाठक कहेंगे: "यदि इस काम के लिये खौलता पानी बेकार है, तो फिर बर्फ की क्या बात की जा सकती है!" पर उत्तर देने में जल्दीबाजी न करें। बेहतर होगा कि एक प्रयोग करें; उसी शीशी के साथ, जिसका आप अभी-अभी प्रयोग कर चुके हैं।

शीशी को आधी दूरी तक पानी से भर दीजिये और नमकीन खौलते पानी में डुबा दीजिये। जब शीशी में पानी खौलने लगे, उसे पतीली से निकाल लीजिये और पहले से तैयार किये गये एक डाट से उसका मुँह अच्छी तरह बंद कर दीजिये। अब शीशी को औंधा लटका कर थोड़ा इंतजार करें। जब भीतर पानी का खौलना बंद हो जाये, तो उसकी पेंदी पर थोड़ा
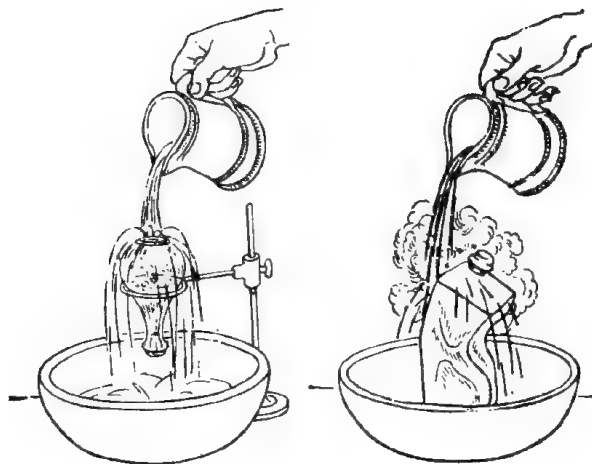
चित्र 87. फ्लास्क में पानी का उबलना।

चित्र 88. टिन का डिब्बा ठंडा करने का नतीजा।

बर्फ रखें, या चित्र 87 की भाँति उस पर ठंडा पानी ढालें, — और आप देखेंगे कि पानी खौलने लगा है... बर्फ ने वह कर दिया जो खौलता पानी नहीं कर सका!

बात और भी रहस्यमय लगेगी, जब आप शीशी छू कर देखेंगे कि वह कुछ विशेष गर्म नहीं है, पर पानी खौल रहा है।

दरअसल बर्फ शीशी की दीवारों को ठंडा कर देता है और परिणामस्वरूप भीतर का वाष्प संघनित हो कर पानी की बूंदों में परिणत हो जाता है। और चूँकि शीशी में से हवा पानी खौलाते वक्त ही निकल गयी थी, इसलिये उसके भीतर स्थित पानी पर दबाव बहुत कम रह जाता है। कम दबाव पर द्रव आवश्यक तापक्रम से कम पर ही खौलने लगता है। यही कारण है कि शीशी का पानी ठंडा होने पर भी खौलता रहता है।

यदि शीशी की दीवारें काफी पतली होंगी, तो वाष्प के हठात् संघनन से विस्फोट हो जा सकता है: वाह्य हवा भीतर से हवा का प्रतिरोध न

पाकर शीशी को दबाव से तोड़ देगी (इसीलिये इसे सही माने में विस्फोट नहीं कहा जा सकता)। बेहतर होगा यदि आप गोल पेंदी की शीशी (जैसे उन्नतोदर पेंदी वाले फ्लास्क) के साथ प्रयोग करेंगे। शीशी की गुंबजाकार पेंदी वाह्य हवा के दबाव को सहन कर लेगी।

आप एक दूसरा प्रयोग भी कर सकते हैं, जिसमें किसी दुर्घटना का डर नहीं है। एक टिन के डिब्बे में थोड़ा पानी खौला कर उसका डाट अच्छी तरह बंद कर लीजिये और उस पर ठंडा पानी उड़ेलिये। वाष्प से भरा डिब्बा वाह्य हवा के दबाव से पिचक जायेगा, क्योंकि भीतर का वाष्प ठंडा हो कर पानी में परिणत हो जायेगा। डिब्बा पिचक कर इस तरह टेढ़ा-मेढ़ा हो जायेगा, जैसे उस पर हथौड़े चलाये गये हों (चित्र 88)।

बैरोमीटर का शोरबा

अमरीकी व्यंग्यकार मार्क ट्वेन अपनी पुस्तक "विदेश-भ्रमण" में आल्प की यात्रा का एक किस्सा बताते हैं। किस्सा मनगढ़ंत है:

"कठिनाइयां समाप्त हुईं; लोग अब विश्राम कर सकते थे और मैं इस अभियान के वैज्ञानिक पक्षों पर कुछ सोच-विचार कर सकता था। सबसे पहले मैं बैरोमीटर की सहायता से उस स्थान की ऊँचाई ज्ञात करना चाहता था, जहाँ हम लोग टिके हुए थे। पर मेरे सारे प्रयत्न असफल रहे। किताबें पढ़-पढ़ कर मैंने विज्ञान का जो ज्ञान इकट्ठा किया था, उसके अनुसार मुझे थर्मोमीटर *या* बैरोमीटर उबालना था। लेकिन क्या — यह मैं ठीक-ठीक नहीं जानता था और इसीलिये मैंने दोनों को उबालने का निश्चय किया

पर बात बनी नहीं। उपकरणों को देख कर मुझे विश्वास करना पड़ा कि दोनों ही खराब हो चुके थे: बैरोमीटर में दबाव दिखाने वाली सूई बची थी और थर्मोमीटर में सिर्फ पारे की घुंडी और उसमें छलकता हुआ पारा...

मैंने एक दूसरा बैरोमीटर ढूंढ़ कर निकाला; वह बिल्कुल नया था और बहुत ही अच्छा काम कर रहा था। मैंने उसे आधे घंटे तक सेम के शोरबे में उबाला, जिसे हमारा रसोइया बना रहा था।

चित्र 89. मार्क ट्वेन द्वारा "वैज्ञानिक अध्ययन"।

परिणाम की आशा मैंने नहीं की थी : उपकरण ने काम करना बिल्कुल बंद कर दिया और शोरबे में बैरोमीटर का स्वाद आने लगा। उसका स्वाद इतना तेज था कि मुख्य रसोइये ने, जो बहुत ही समझदार आदमी था, व्यंजनों की सूची में इस शोरबे का नाम काट कर नया नाम रख दिया। चूँकि नया शोरबा सभी को पसंद आया, इसलिये मुझे हर दिन बैरोमीटर का शोरबा बनाने का आदेश देना पड़ा। बैरोमीटर सचमुच खराब हो गया, पर इसका मुझे कोई अफसोस नहीं था। जब उससे ऊँचाई नापने में सहायता नहीं मिली, तो फिर उसकी जरूरत ही क्या थी!"

खैर, मजाक छोड़ें और निम्न प्रश्न पर गौर करें: वस्तुतः क्या उबालना चाहिये था – थर्मोमीटर या बैरोमीटर?

थर्मोमीटर। और इसका कारण यह है:

पिछले प्रयोगों से हम देख चुके हैं कि पानी पर दबाव जितना कम होगा, उसके उबलने का तापक्रम भी उतना ही कम होगा। पहाड़ पर वातावरण का दबाव घटता है, इसलिये वहाँ पानी के उबलने का तापक्रम भी कम होना चाहिये।

भिन्न वातदाबों पर शुद्ध जल के उबलने का तापक्रम सचमुच ही भिन्न होता है:

उबलने का तापक्रम, °C	बैरोमीटरी दबाव, mm
101	787,7
100	760
98	707
96	657,5
94	611
92	567
90	525,5
88	487
86	450

बेर्न (स्वीटजरलैंड) में, जहाँ वातावरण का औसत दबाव 713 mm है, पानी खुले बरतन में 97.5° पर उबलने लगता है। मोंटब्लांक की चोटी पर बैरोमीटर 424 mm दबाव दिखाता है और वहाँ पानी सिर्फ 84.5° पर खौलता है। हर एक किलोमीटर ऊँचा जाने पर क्वथनांक (पानी उबलने का तापक्रम) 3°C नीचे उतर आता है। मतलब कि यदि हम पानी के उबलने का तापक्रम नाप लेते हैं (या ट्वेन के शब्दों में – "थर्मोमीटर उबालते हैं"), तो **तदनुरूप सारणी** देख कर हम उस स्थान की ऊँचाई बता सकते हैं। लेकिन सारणी पहले से तैयार रखनी होगी, जिसके बारे में मार्क ट्वेन बिल्कुल ही भूल गये थे।

इस काम के लिये अक्सर प्रयुक्त होने वाला उपकरण – उच्चतातापमापी (हिप्सोथर्मोमीटर) – ढोने में धातु के बैरोमीटर जितना ही सुविधाजनक है, पर इससे कहीं अधिक शुद्ध मान मिलते हैं।

स्पष्ट है कि बैरोमीटर भी स्थान की ऊँचाई निर्धारित करने में सहायक हो सकता है, क्योंकि वह बिना कुछ "उबाले" ही वातावरण का दबाव बता देता है। दबाव तथा ऊँचाई के बीच संबंध बिल्कुल सरल है: जितना ही हम ऊपर उठते हैं, दबाव उतना ही कम होता जाता है। पर सारणी की आवश्यकता यहाँ भी पड़ेगी; ऐसी सारणी की, जो सागर-स्तर से ऊपर उठने पर दबाव में होने वाली कमियां बता सके। यदि सारणी नहीं है, तो आवश्यक सूत्रों का ज्ञान होना आवश्यक है। व्यंग्यकार के दिमाग में ये बातें उलट-पुलट हो गयी होंगी, इसीलिये उन्हें "बैरोमीटर का शोरबा" बनाना पड़ा।

क्या उबलता पानी हमेशा गर्म होता है?

जूल बेर्न के उपन्यास "हेक्तर सेर्वादाक" के अर्दली बेन-जूफ से पाठक अवश्य ही परिचित होंगे। बेन-जूफ को पूरा विश्वास था कि खौलता पानी

हर जगह समान रूप से गर्म होता है। शायद वह सारी जिंदगी यही सोचता, यदि संयोगवश अपने कमांडर सेर्वादाक के साथ पुच्छल तारा पर नहीं पहुँच गया होता। यह घुमक्कड़ नक्षत्र पृथ्वी से टकरा कर हमारे ग्रह का वह भाग काट ले गया, जहाँ ये दोनों पात्र उस समय मौजूद थे। पुच्छल के दीर्घवृत्तीय कक्ष पर भ्रमण करते वक्त ही अर्दली को पहली बार अनुभव हुआ कि उबलता पानी सर्वत्र समान रूप से गर्म नहीं होता। यह खोज उसने बिल्कुल संयोगवश की, जब वह नाश्ता तैयार कर रहा था।

> "बेन-जूफ ने पतीले में पानी ढाल कर उसे चूल्हे पर चढ़ाया और उसके खौलने का इंतजार करने लगा। उसे अंडे उबालने थे, जो उसे भीतर से खाली प्रतीत हो रहे थे; वहाँ उनका भार बहुत ही घट गया था।
>
> दो मिनट भी नहीं बीता कि पानी खौलने लगा।
>
> – कंबख्त! कितनी गर्म है आग यहाँ। – बेन-जूफ आश्चर्य से बोल उठा।
>
> – आग अधिक गर्म नहीं है, – सेर्वादाक ने थोड़ा सोच कर कहा, – यहाँ पानी जल्द उबलता है।
>
> और उसने सेल्सियस का तापमापी दीवार से उतार कर खौलते पानी में डुबा दिया।
>
> तापमापी सिर्फ छियासठ डिग्री दिखा रहा था।
>
> – यह बात है! – ऑफिसर ने कहा। – पानी सौ की बजाय छियासठ डिग्री पर खौल रहा है।
>
> – तो फिर, कैप्टेन? ...
>
> – फिर, बेन-जूफ, मैं तुम्हे अंडे खौलते पानी में पंद्रह मिनट तक रखने की सलाह देता हूँ।
>
> – वे बहुत सख्त हो जायेंगे।
>
> – नहीं दोस्त, वे मुश्किल से सीझे होंगे।"

इस विचित्रता का कारण संभवतः वातावरण की ऊँचाई कम हो जाने में था। जमीन के ऊपर हवा के स्तंभ की ऊँचाई करीब तिहाई कम हो गयी थी, जिससे वातदाब कम हो गया था और पानी सौ की बजाय

छियासठ डिग्री पर खौलने लगा था। पृथ्वी पर यह बात 11000 m ऊँचे पर्वत पर देखने को मिलती। यदि कैप्टेन के पास बैरोमीटर होता, तो उसे वातदाब की कमी का पता लग जाता।"

हम इन पात्रों द्वारा अवलोकित तथ्यों पर संदेह नहीं करेंगे: वे कहते हैं कि पानी 66 डिग्री पर खौल रहा है; हम इसे सत्य मान लेते हैं। पर यह बात अवश्य ही शंकाजनक है कि इतने विरल वातारण में वे अपने को भला-चंगा महसूस कर रहे थे।

"सेर्वादाक" के लेखक बिल्कुल सही कहते हैं कि इस तरह की संवृत्ति 11000 m की ऊँचाई पर देखने को मिलती: कलन से सिद्ध किया जा सकता है[1] कि इस ऊँचाई पर पानी को सचमुच 66°C पर खौलना चाहिये। पर वहाँ हवा का दबाव सिर्फ 190 mm ऊँचे पारद-स्तंभ के दबाव के बराबर होगा, जो साधारण से ठीक चौगुना कम है। इतनी विरल हवा में साँस ले सकना असंभव है! यह ऊँचाई स्ट्रैटोस्फेयर की है। बिना आक्सीजन की नकाब के पायलट इस ऊँचाई पर अपना होश खो बैठते हैं, पर सेर्वादाक और उसका अर्दली अपने को बिल्कुल स्वस्थ्य महसूस कर रहे थे। अच्छा ही हुआ कि सेर्वादाक के पास बैरोमीटर नहीं था, अन्यथा उपन्यासकार को वहाँ के दाब का भौतिकी-संगत मान छिपा कर कोई दूसरा मान दिखाना पड़ता।

यदि हमारे पात्र किसी काल्पनिक पुच्छल तारे पर नहीं, मंगल ग्रह पर पहुँच जाते, तो उन्हें और भी कम तापक्रम (सिर्फ 45°C) पर खौलने वाला पानी पीना पड़ता।

इसके विपरीत, यदि हम किसी गहरे खान की तली पर पहुँच जायें, तो वहाँ पृथ्वी-तल की तुलना में कहीं अधिक वातदाब होगा। इसीलिये पानी 300 m गहरे खान में 101° पर खौलता है और 600 m की गहराई में – 102° पर।

यदि दबाव बहुत अधिक हो, तो पानी को वाष्प-इंजन की भट्ठी ही खौला सकती है। उदाहरण के लिये, 14 वातदाब पर पानी खौलाने के

---

[1] हम पहले बता चुके हैं (पृ. 184 पर) कि पानी का क्वथनांक एक किलोमीटर ऊपर उठने पर 3°C नीचे उतर आता है, अतः क्वथनांक के 66° होने के लिये $34:3 \approx 11$ km ऊँचा जाना होगा।

लिये 200°C का ताप चाहिये! इसके विपरीत, यदि बरतन में से हवा वायु-निष्काषक पंप द्वारा निकाली जा चुकी है, तो उसमें पानी कमरे के साधारण तापक्रम 20°C पर ही खौलने लगेगा।

गर्म बर्फ

ऊपर ठंडे खौलते पानी की बात चल रही थी। पर इससे भी ग्राश्चर्य-जनक चीज है: **गर्म बर्फ**। हम यह सोचने के ग्रादी हो गये हैं कि 0° से ग्रधिक तापक्रम पर पानी ठोस ग्रवस्था में नहीं रह सकता। पर ग्रंग्रेज भौतिकविद् ब्रिजमेन की खोजों से ज्ञात होता है कि यह सही नहीं है: यदि दबाव बहुत ग्रधिक हो, तो पानी शून्य से ऊँचे तापक्रम पर भी ठोस ग्रवस्था में रह सकता है या उसमें संक्रमण कर जा सकता है। ब्रिजमेन ने दिखाया कि बर्फ सिर्फ एक प्रकार की नहीं होती; उसके कई प्रकार होते हैं। जिस बर्फ को उन्होंने "बर्फ न. 5" की संज्ञा दी, वह 20600 वातदाब पर प्राप्त होती है ग्रौर उसका तापक्रम 76°C होता है। यदि हम उसे छू पाते, तो हमारी उंगली जल जाती। लेकिन उसे छूना संभव नहीं है: बर्फ न. 5 शक्तिशाली संपीडक (प्रेस) के दबाव से मोटी दीवार वाले बरतन में बनती है, जो सबसे ग्रच्छे इस्पात का होता है। इसीलिये उसे देखना या हाथ में लेना संभव नहीं है; उसके गुणों के बारे में हम सिर्फ ग्रप्रत्यक्ष विधियों से बता सकते हैं।

एक रोचक बात यह भी है कि "गर्म बर्फ" साधारण बर्फ से ही नहीं, पानी से भी भारी होती है: उसका विशिष्ट भार 1.05 के बराबर है; वह पानी में डूब जाती है, जबकि साधारण बर्फ तैरती रहती है।

कोयले से ठंड

कोयले से गर्मी की बजाय ठंड की प्राप्ति कोई कोरी कल्पना नहीं है: यह तथाकथित "शुष्क बर्फ" बनाने वाले कारखानों में हर दिन किया जाता है। उसमें स्थित कार्बन डायक्साइड गैस क्षारीय घोल में कैद कर ली जाती है। फिर उसे गर्म करके शुद्ध कार्बन डायक्साइड प्राप्त करते हैं ग्रौर इसे 70 वातदाब पर संपीडित कर के ठंडा करते हैं, जिससे वह द्रव

ग्रवस्था में ग्रा जाती है। यह वही द्रव कार्बोनिक ग्रम्ल है, जो गैस-मिश्रित पेय तैयार करने के लिये मोटे-मोटे सिलिंडरों में कारखानों तक लाया जाता है। ग्रौद्योगिकी में भी इसका काफी उपयोग है। यह इतना ठंडा होता है कि जमीन तक को जमा दे सकता है; मास्को में मेट्रो (भूगत रेलपथ) बनाते वक्त गीली जमीन को जमाने के लिये भी इसका उपयोग किया था। पर ग्रनेक दूसरे कार्यों के लिये कार्बोनिक ग्रम्ल ठोस ग्रवस्था में प्राप्त करना इष्ट है, जिसे **शुष्क बर्फ** कहते हैं।

शुष्क बर्फ, ग्रर्थात् ठोस कार्बोनिक ग्रम्ल, कम दबाव पर द्रव के शीघ्र वाष्पीकरण द्वारा प्राप्त करते हैं। इसके टुकड़े देखने में ऐसे लगते हैं, जैसे भुरभुरी बर्फ दबा कर प्रेस कर दी गयी हो। साधारण बर्फ से यह कई बातों में भिन्न है। यह साधारण बर्फ से भारी होता है ग्रौर पानी में डूब जाता है। इसका तापक्रम इतना कम (ऋण 70°) होने पर भी यदि सावधानीपूर्वक उसे हाथ में लिया जाये, तो उंगलियां ठंड से गल नहीं जातीं: उसे छूते ही त्वचा की गर्मी से बनी कार्बन डायक्साइड त्वचा को ग्रावृत्त कर लेती है ग्रौर उंगलियों को भीषण ठंड से बचाने लगती है। सिर्फ उसे मुट्ठी में जकड़ने से उंगलियों के गलने का खतरा रहता है।

"शुष्क बर्फ" नाम इस बर्फ की एक विशेषता पर प्रकाश डालता है: वह कभी गीली नहीं होती ग्रौर न ही ग्रास-पास की वस्तुग्रों को गीली करती है। ताप के प्रभाव से वह बिना द्रव में परिवर्तित हुए ही गैसीय ग्रवस्था में संक्रमण कर जाती है। वह 1 वातदाब पर द्रव की ग्रवस्था में नहीं रह सकती।

ग्रपनी इस विशेषता ग्रौर ग्रपने ग्रति निम्न तापक्रम के कारण शुष्क बर्फ कई व्यावहारिक कार्यों के लिये उत्तम शीतकारी वस्तु मानी जाती है। यह ठंडी की जाने वाली खाद्य-सामग्रियों को ग्रार्द्र नहीं करती ग्रौर कार्बन डायक्साइड का वातावरण कीटाणुग्रों ग्रादि को पनपने नहीं देता। ऐसे वातावरण में चूहे ग्रौर कीड़े-मकोड़े भी नहीं जी सकते। इसके ग्रतिरिक्त, कार्बन डायक्साइड एक विश्वस्त ग्रग्निशामक पदार्थ भी है: शुष्क बर्फ के चंद टुकड़े जलती पेट्रौल को बुझा दे सकते हैं। इन्हीं सारे कारणों से शुष्क बर्फ का घरेलू कार्यों व ग्रौद्योगिकी में इतना उपयोग है।

अध्याय 8

चुंबकत्व. विद्युत

"प्यार भरा पत्थर"

यह काव्यात्मक नाम चीन में प्राकृतिक चुंबक को दिया गया है। चीनी कहते है: प्यार भरा पत्थर (त्शू-शी) लोहे को इस प्रकार अपनी ओर खींचता है, जैसे ममता भरी मां अपने बच्चों को। ध्यान देने योग्य है कि पुरानी दुनिया (पूर्वी गोलार्द्ध के देशों) के बिल्कुल दूसरे सिरे पर स्थित फ्रांस में भी चुंबक का कुछ ऐसा ही नाम है: "aimant"" जिसका अर्थ "चुंबक" भी है और "प्यार करने वाला" भी।

इस "प्यार" की शक्ति प्राकृतिक चुंबक में बहुत क्षीण होती है और इसीलिये चुंबक का ग्रीक नाम "हरकुलस का पत्थर" कुछ बचकाना सा लगता है। प्राचीन ऐलादवासी यदि प्राकृतिक चुंबक की साधारण शक्ति से इतने चकित थे, तो वे आधुनिक कारखानों में प्रयुक्त टन के टन लोहा खींचने वाले चुंबकों को देख कर क्या कहते। यह और बात है कि ये प्राकृतिक चुंबक नहीं, बल्कि "विद्युत-चुंबक" है। दूसरे शब्दों में, ये लोहे के टुकड़े हैं, जो उन पर लपेटे गये तार में प्रवाहित विद्युतधारा के कारण चुंबकीय गुण प्राप्त करते हैं। पर दोनों ही स्थितियों में आकर्षणबलों की प्रकृति समान होती है, जिसे चुंबकत्व कहते हैं।

यह नहीं सोचना चाहिये कि चुंबक सिर्फ लोहे पर अपना प्रभाव डालता है। कई अन्य पिंड भी हैं, जो शक्तिशाली चुंबक का प्रभाव, लोहे जितना तो नहीं, पर, अनुभव करते हैं। निकेल, कोबाल्ट, मैंगनीज, प्लैटिनम, सोना, चांदी, अल्युमीनियम आदि धातु भी चुंबक द्वारा आकर्षित होते हैं, पर कम शक्ति से। तथाकथित पारचुंबकीय पिंडों के गुण भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है: ये शक्तिशाली चुंबक से विकर्षित होते हैं। इनके उदाहरण हैं–जस्ता, सीसा, गंधक, बिस्मथ आदि।

द्रव और गैसें भी चुंबक से आकर्षित या विकर्षित होती हैं, पर बहुत
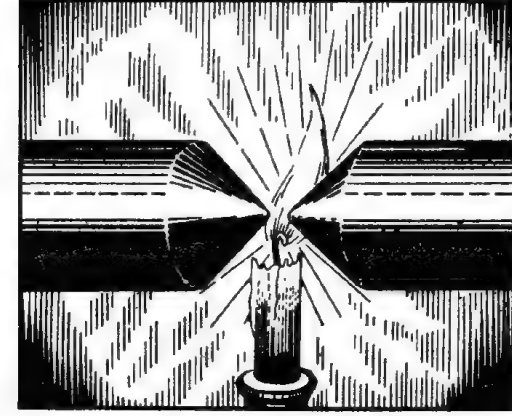
चित्र 90. विद्युत-चुंबक के ध्रुवों के बीच मोमबत्ती की लौ।

ही क्षीण शक्ति से। इन द्रव्यों को प्रभावित करने के लिये चुंबक को अत्यंत शक्तिशाली होना चाहिये। उदाहरण के लिये, शुद्ध अम्लजन (ऑक्सीजन) चुंबक से आकर्षित होती है। यदि साबुन के बुलबुले को किसी शक्तिशाली विद्युचुंबक के ध्रुवों के बीच रखा जाये, तो बुलबुला चुंबक की अदृश्य शक्ति से दोनों ध्रुवों की ओर लमड़ जायेगा। शक्तिशाली चुंबक के सिरों के बीच मोमबत्ती की लौ अपना सामान्य रूप खो देती है; यह चुंबकीय शक्ति के प्रति उसकी संवेदनशीलता दिखाता है (चित्र 90)।

कंपास का एक प्रश्न

हम यह सोचने के आदी हो गये हैं कि कंपास की सूई का एक सिरा उत्तर और दूसरा दक्षिण दिखाता है। इसीलिये हमें निम्न प्रश्न सिर-फिरा सा लगेगा: पृथ्वी के किस स्थान पर चुंबकीय सूई के **दोनों सिरे** उत्तर दिशा दिखायेंगे?

इतना ही निरर्थक यह प्रश्न भी लगेगा: पृथ्वी के किस स्थान पर कंपास दोनों सिरों से दक्षिण दिशा बतायेगा?

आप शायद यह कहना चाहते हैं कि पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नहीं है। पर वस्तुतः ऐसा स्थान है।

स्मरण करें कि पृथ्वी के चुंबकीय ध्रुव उसके भौगोलिक ध्रुवों से भिन्न हैं। अब आप समझ रहे होंगे कि उक्त प्रश्नों में हमारे ग्रह के किन स्थानों की बात चल रही है। दक्षिणी भौगोलिक ध्रुव पर रखे गये कंपास की सूई किस दिशा को इंगित करेगी? उसका एक सिरा निकटतम चुंबकीय ध्रुव की ओर इंगित करेगा और दूसरा उसकी विपरीत दिशा दिखायेगा। पर दक्षिणी भौगोलिक ध्रुव से आप जिधर भी जायेंगे, सिर्फ **उत्तर दिशा** ही होगी; दक्षिणी भौगोलिक ध्रुव से दुसरी दिशा में नहीं जा सकते,— उसके चारों ओर सिर्फ उत्तर ही है। अतः वहां रखी गयी चुंबकीय सूई अपने दोनों ही सिरों से सिर्फ उत्तर दिशा दिखायेगी।

ठीक इसी प्रकार से उत्तरी भौगोलिक ध्रुव पर लाये गये कंपास की सूई अपने दोनों सिरों से दक्षिण दिशा दिखायेगी।

चुंबकीय बल-रेखायें

फोटोग्राफ से उतारे गये चित्र 91 में एक रोचक दृश्य दिखाया गया है: विद्युतचुंबक के ध्रुवों पर रखे गये हाथ पर खड़े कड़े बालों जैसी बड़ी-बड़ी काँटियों के गुच्छे लगे हैं। स्वयं हाथ चुंबकीय बल को बिल्कुल नहीं महसूस करता: अदृश्य धागे हाथ के पार निकल जाते हैं और हाथ को उनकी उपस्थिति का पता भी नहीं लगता। पर लोहे की काँटियां उसके प्रभाव के अधीन हो जाती हैं और एक विशेष क्रम में लग जाती हैं। उनकी दिशायें चुंबकीय बलों की दिशाएं दर्शाती हैं।
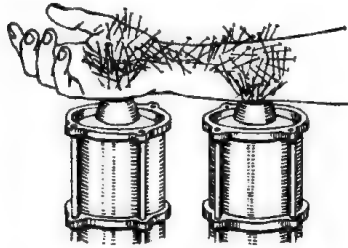
चित्र 91. चुंबकीय बल हाथ के पार जा सकते हैं।

आदमी के पास कोई चुंबकीय ज्ञानेंद्रिय नहीं है; इसीलिये हम चुंबक को आवृत्त रखने वाले चुंबकीय बलों की विद्यमानता का सिर्फ अंदाजा लगा सकते हैं।[1] पर अप्रत्यक्ष रूप से व्योम में इन बलों के वितरण का चित्र प्राप्त करना कठिन नहीं है। इसके लिये लोहे के महीन बुरादे का उपयोग करना उत्तम रहेगा। चिकने गत्ते के एक टुकड़े पर समरूप परत के रूप में ये बुरादे फैला लें; गत्ते के नीचे साधारण चुंबक रख कर गत्ते पर उंगली से हल्के-हल्के चोट देते हुए बुरादों को उछालें। चुंबकीय बल गत्ते और शीशे आदि के आर-पार स्वतंत्र रूप से प्रसारित हो सकते हैं, इसीलिये आप देखेंगे कि बुरादों का चुंबकीकरण हो गया है। जब हम ठोकर देते हैं, तो वे उछल कर क्षण भर को गत्ते से अलग हो जाते हैं और इस अंतराल में चुंबकीय बल के प्रभाव से सरलतापूर्वक उस दिशा में घूम जाते हैं, जो दिशा उस बिंदु पर चुंबकीय "बल-रेखा" की दिशा है। अंततः बुरादे कतारों में लग जाते हैं, जो अदृश्य चुंबकीय रेखाओं का वितरण द्योतित करती हैं।

गत्ते को चुंबक पर रख कर उसे ठोकर देने से हमें चित्र 92 की भाँति आकृति मिलेगी। चुंबकीय बल मुड़ी रेखाओं का एक जटिल विन्यास बनाते हैं। बुरादों के आपस में सटने की विधि से आप देख सकते हैं कि वे चुंबक के हर ध्रुव से अपसृत होते हैं और दोनों ध्रुवों को मिलाने वाले छोटे-बड़े

---

[1] यदि हमारे पास चुंबकीय प्रभावों को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करने के लिये कोई इंद्रिय होता, तो हमें कैसा लगता — यह जानना भी कम रोचक नहीं होगा। झींगा मछली में इस प्रकार का इंद्रिय लगाने में पहले-पहल क्रेडिल को सफलता मिली थी। उन्होंने देखा कि छोटी युवा झींगा मछलियां अपने कान में नन्हे कंकड़ घुसा लिया करती हैं। ये कंकड़ अपने भार के कारण एक संवेदनशील बाल पर प्रभाव डालते है, जो झींगे के संतुलनकारी अंग का एक महत्वपूर्ण भाग है। इस तरह के कंकड़ आदमी के भी कान में होते हैं; इन्हें कर्णाश्म कहा जाता है। उदग्र नीचे भार डाल कर ये गुरुत्व बल की दिशा का ज्ञान कराते हैं। क्रेडिल ने इन कंकड़ों की जगह लोहे के बुरादे रख दिये। मछलियों ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। जब उनके समीप चुंबक लाया गया, तो वे चुंबकीय व गुरुत्व बलों के परिणामी बल की दिशा के अभिलंब तल पर तैरने लगीं।

"पिछले समय ये प्रयोग कुछ परिवर्तित रूप में आदमियों पर भी सफल हुए हैं। केलेर ने कर्ण-पट के साथ लोहे के कुछ महीन कण चिपका दिये, जिसके फलस्वरूप कान चुंबकीय बल को एक विशेष ध्वनि के रूप में अनुभव करने लगा"

(प्रो. ओ. विनेर)

13–567
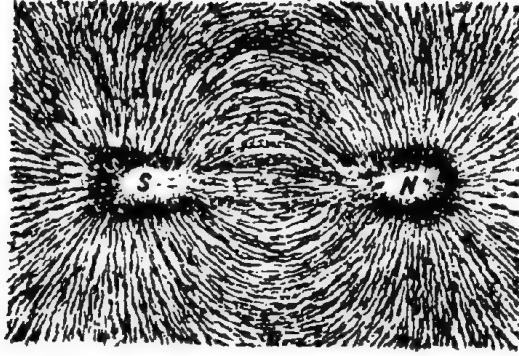
चित्र 92. चुंबक के ध्रुवों पर रखे गत्ते पर लोहे के बुरादों की स्थिति (फोटोचित्र से)।

अनगिनत चाप बनाते हैं। लोहे के बुरादे उस चीज को दृश्य-सुगम बना देते हैं, जिसे भौतिकविद अपनी कल्पना में देखते हैं और जो अदृश्य रूप से हर चुंबक के चारों ओर विद्यमान रहती है। ध्रुवों के निकट बुरादों की कतारें घनी व स्पष्ट हैं, ध्रुव से दूर जाने पर वे विरल और अस्पष्ट होती जाती हैं। यह दृगम रूप से सिद्ध करता है कि दूरी बढ़ने पर चुंबकीय बल क्षीण होते जाते हैं।

इस्पात का चुंबकीकरण कैसे होता है?

पाठक अक्सर यह पूछते हैं, पर इस प्रश्न का उत्तर देने के पहले यह समझना आवश्यक है कि इस्पात के कोरे छड़ और चुंबक के बीच क्या अंतर है। इस्पात चुंबकीकृत हो या अचुंबकीकृत, उसके हर परमाणु को एक नन्हा सा चुंबक माना जा सकता है। अचुंबकीकृत इस्पात में ये परमाणु-चुंबक इतनी बेतरतीबी से पड़े होते हैं कि उनमें से हरेक का प्रभाव विपरीत दिशा में पड़े दूसरे परमाणु चुंबक के कारण नष्ट हो जाता है (चित्र 93,*A*)। इसके विपरीत, चुंबक में ये सभी नन्हे प्राथमिक चुंबक क्रम-बद्ध स्थिति में होते हैं; उनके समान ध्रुव चित्र 93, *B* की भाँति समान दिशा में होते हैं।
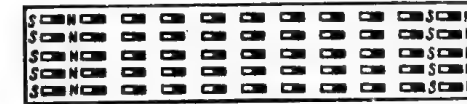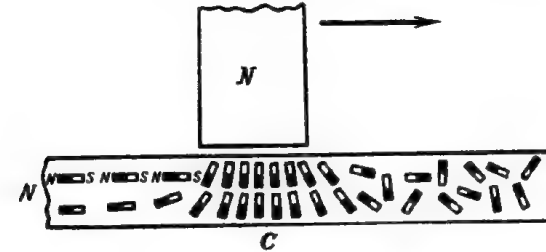
चित्र 93. *A*—इस्पात के अचुंबकित पट्टे में आण्विक चुंबकों की स्थिति; *B*—वही, चुंबकित इस्पात में; *C*—चुंबक बनाये जाने वाले इस्पात के आण्विक चुंबकों पर चुंबकीय ध्रुव का प्रभाव।

जब लोहे के टुकड़े को चुंबक से रगड़ा जाता है, तक उसमें क्या होता है? अपनी आकर्षण शक्ति से चुंबक लोहे के टुकड़े में स्थित नन्हें चुंबक की दिशा उलटने लगता है, ताकि उनके समान प्रकार के ध्रुव समान दिशा में हो जायें। चित्र 93 *C* इस क्रिया को दृश्यसुगम बनाता है: प्राथमिक चुंबक के दक्षिणी ध्रुव प्रथमतः चुंबक के उत्तरी ध्रुव की ओर उन्मुख होते हैं और फिर, जब चुंबक को आगे बढ़ाया जाता है, वे उसकी गति की दिशा में अपने दक्षिणी ध्रुव को छड़ के मध्य की ओर करने लगते हैं।

इससे आप सरलतापूर्वक समझ सकते हैं कि चुंबक द्वारा इस्पात के छड़ का किस प्रकार चुंबकीकरण करना चाहिये: छड़ के एक छोर से चुंबक का एक ध्रुव सटा कर उसे छड़ के दूसरे छोर तक रगड़ना चाहिये। यह चुंबकीकरण की सरलतम व प्राचीनतम विधि है, पर इससे सिर्फ छोटे आकारों के कमजोर

चुंबक बन सकते हैं। शक्तिशाली चुंबक विद्युतधारा के गुणों का उपयोग कर के बनाया जा सकता है।

भीमकाय विद्युतीय चुंबक

धातुकर्मी कारखानों में आप बड़े-बड़े बोझ उठाने वाले विद्युत-क्रेन देख सकते हैं। लोहा ढलैया करने वाले और इसी तरह के दूसरे कारखानों में लोहे के भारी टुकड़ों को उठाने व इधर से उधर करने में इनसे बहुत बड़ी सहायता मिलती है।

चित्र 94 व 95 में चुंबक का यह लाभदायक काम दिखाया गया है। लोहे के तख्तों को एक ढेर में जमा करना और एक जगह से दूसरी जगह ले जाना कितनी परेशानी का काम है, पर चित्र 94 का शक्तिशाली चुंबकीय क्रेन उन्हें यूँ ही एक बार में उठा लेता है। यहां सिर्फ शक्ति की ही बचत नहीं होती, काम भी आसान हो जाता है। चित्र 95 में आप देखते हैं कि चुंबकक्रेन पीपों में पैक किये गये काँटियों को भी कर दूसरी जगह रख सकता है, एक बार में ही काँटियों के छे पीपों को। एक धातुकर्मी कारखाने में एक साथ दस रेल की पटरियां उठाने वाले चार चुंबक-क्रेन हाथ से काम करने वाले दो सौ मजदूरों का स्थान ले सकते हैं। इन बोझों को क्रेन से बांधने की भी चिंता नहीं करनी है: जबतक विद्युचुंबक की कुंडली में बिजली की धारा चल रही है, एक टुकड़ा भी नहीं गिरेगा।

पर यदि किसी कारणवश कुंडली में धारा रूक जाये, तो दुर्घटना अवश्यंभावी है। शुरू-शुरू ऐसी घटनायें होती थीं। "अमरीका के एक कारखाने में–एक तकनीकी पत्रिका में खबर छपी थी–विद्युत-चुंबक मालगाड़ी से लाये गये कच्चे लोहे को उठा कर भट्ठी में झोंक रहा था। अचानक नियाग्रा जलप्रपात के विद्युत-केंद्र में कोई गड़बड़ी हो गयी और लाइन कट गयी; विद्युचुंबक से लोहे का ढेर एक मजदूर के सिर पर गिर गया। भविष्य में ऐसी दुर्घटनायें न हों, और साथ ही बिजली की बचत हो सके, इसके लिये विद्युच्चुंबकों में एक विशेष प्रयुक्ति लगायी जा रही है। जब वस्तुएं चुंबक द्वारा उठ कर क्रेन से चिपक जाती हैं, उनके बगल से मजबूत इस्पात के पंजे निकल कर उन्हें अच्छी तरह से जकड़ लेते हैं और उन्हें गिरने से रोके रखते हैं। ढुलाई के समय बिजली काट दी जाती है।"
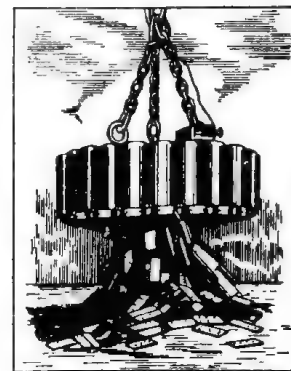
चित्र 94. लोहे के चदरों को उठाने के लिये विद्युत-चुंबकीय क्रेन।
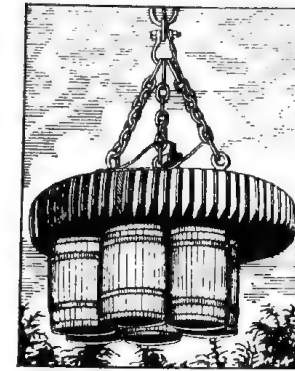
चित्र 95. काँटी भरे पीपों को उठाने के लिये विद्युत-चुंबकीय क्रेन।

चित्र 94 व 95 में दर्शित विद्युच्चुंबकों का व्यास 1.5 m तक का होता है: हर चुंबक 16 टन भारी वस्तु (मालगाड़ी का डब्बा) उठा सकता है। इस तरह का एक चुंबक दिन भर में कुल मिला कर 600 टन का भार उठाता है। ऐसे भी विद्युत-चुंबक हैं, जो एक बार में 75 टन तक का भार, अर्थात, रेलगाड़ी का एक पूरा इंजन उठा ले सकते हैं!

विद्युत-चुंबकों के इस का को देख कर कुछ पाठकों के मन में ऐसा विचार उठ सकता है: चुंबकों की सहायता से **तप्त** कच्चा लोहा उठाना कितना सुविधाजनक होता। पर अफसोस की बात है कि यह सिर्फ एक विशेष तापक्रम तक ही संभव है, क्योंकि **बहुत तप्त लोहा चुंबकीकृत नहीं होता**। 800° तक गर्म किया गया चुंबक अपने चुंबकीय गुण खो देता है।

धातुशोधन के आधुनिक तकनीक में विद्युत-चुंबक के उपयोग का काफी प्रचलन है। उसका उपयोग लोहे के सामानों को रोक कर रखने, आगे बढ़ाने आदि में होता है। सैकड़ों प्रकार के सौकेट, टेबुल आदि बनाये जा चुके हैं, जो शोधन का कार्य आसान बनाते हैं, उसे जल्द पूरा करने में सहायक होते हैं।

चुंबक से जादू

विद्युचुंबकीय बल का उपयोग कभी-कभी जादूगर लोग भी करते हैं; आप समझ रहे होंगे कि इस अदृश्य बल की सहायता से कितने प्रभावशाली ट्रिक दिखाये जा सकते हैं। "बिजली के उपयोग" नामक विख्यात पुस्तक के लेखक डेरी एक फ्रांसीसी जादूगर से सुनी कहानी उद्धृत करते हैं। जादूगर महोदय अलजीरिया में एक जादू दिखा रहे थे, जिसने वहाँ के अनपढ़ दर्शकों के बीच सच्चे चमत्कारी की पदवी पा ली थी।

"मंच पर, – जादूगर अपनी कहानी सुना रहे हैं, – सिकड़ी से बंधा एक छोटा सा डब्बा पड़ा हुआ है। मैं दर्शकों के बीच से किसी शक्तिशाली व्यक्ति को आमंत्रित करता हूँ। मेरी पुकार पर एक अरबी आता है। उसका कद साधारण है, पर हट्टे-कट्टे शरीर के कारण उसे अरबी हरकुलस का नाम दिया जा सकता है। वह प्रसन्न मन से आत्मविश्वास के साथ निकलता है और थोड़ी हँसी उड़ाने के मूड में मुस्कुराता हुआ मेरे पास आ कर खड़ा हो जाता है।

– क्या आप बहुत शक्तिशाली हैं? – उसे सर से पैर तक देखते हुए मैंने पूछा।

– हाँ, – उसने लापरवाही के साथ कहा।

– आपको विश्वास है कि आप हमेशा शक्तिशाली बने रहेंगे?

– बिल्कुल।

– आप गलतफहमी पर हैं: मैं पलक मारते आपकी सारी शक्ति हर लूंगा और आप छोटे बच्चे की तरह निर्बल हो जायेंगे।

अरबी उपेक्षा के साथ मुस्कुराया, जिसका मतलब था कि मेरे शब्दों पर उसे विश्वास नहीं था।

– यहाँ आइये, – मैं उससे कहता हूँ, – और डब्बा उठाइये।

अरबी ने झुक कर डब्बा उठा लिया और घमंड के साथ पूछा:

– बस, इतना ही?

– जरा सा और रुकिये, – मैंने उत्तर दिया।

इसके बाद मैंने गंभीर मुद्रा बनायी, जादू के ईशारे किये और घोषणा की:

– अब आप औरतों से भी कमजोर हैं। फिर से डब्बा उठाने की कोशश कीजिये।

पहलवान मेरे जादू से जरा भी नहीं डरा। उसने फिर से झुक कर डब्बे को उठाने की कोशिश की, पर इस बार डब्बा प्रतिरोध कर रहा था। अरबी ने लाख कोशिश की, पर वह टस से मस नहीं हुआ। अरबी इतनी ताकत लगा रहा था कि वह बहुत बड़ा बोझ उठा लेता, पर डब्बे पर कोई असर नहीं हो रहा था। अंत में शर्म और थकावट के मारे उसने उठाना छोड़ दिया और हाँफता हुआ वापस जाने लगा। अब उसे जादू पर विश्वास हो गया था।"

"सभ्य समाज" के प्रतिनिधि द्वारा दिखाये गये जादू का रहस्य बहुत सरल था। डब्बे का पेंदा लोहे का था और वह शक्तिशाली विद्युत-चुंबक के एक ध्रुव पर रखा हुआ था। विद्युत धारा की अनुपस्थिति में डब्बे को उठाना कठिन नहीं था, पर विद्युत-चुंबक की कुंडली में धारा चालू करने के बाद उसे उठाने के लिये दो-तीन आदमियों की ताकत भी कम पड़ती।

खेती में चुंबक

चुंबक से एक और लाभ है, जो कहीं अधिक दिलचस्प है: वह कृषि-योग्य पौधों के बीजों को अपतृणों व अकृष्य पौधों के बीजों से अलग करने में सहायक होता है। तिपतिया चारा, फ्लोक्स (पटसन की एक जाति), लसुनघास (लुसर्न) आदि जैसे लाभप्रद पौधों के बीज चिकने होते हैं। अकृष्य पौधों के बीज रुखड़े व रोमयुक्त होते हैं; उनका यह गुण करोड़ों वर्ष से चले आ रहे जीवन-संघर्ष का परिणाम है। इस गुण के कारण वे पास गुजरते जीव-जंतुओं के बालों में फँस कर अपने मातृ-पौधे से बहुत दूर पहुँच जाते हैं और नयी जगहों पर पनपने लगते हैं। चुंबक द्वारा अच्छे पौधों के बीजों से उन्हें अलग करने के लिये उनके इन्ही गुण का उपयोग किया जाता है। यदि बीजों पर लोहे के बुरादे छिड़क कर अच्छी तरह मिला दिये जायें, तो बुरादे अवांछित बीज के रोमों में फंस जायेंगे; लाभप्रद पौधों के चिकने बीजों के साथ वे किसी भी तरह नही चिपक सकते। इन बीजों को पर्याप्त शक्तिशाली चुंबक के कार्य-क्षेत्र में रखने पर उनमें

वांछित व अवांछित बीज स्वतः अलग हो जायेंगे: चुंबक उन सारे बीजों को खींच लेगा, जिनमें लोहे के बुरादे फँसे होते हैं।

चुंबकीय विमान

इस किताब के शुरू में मैंने फ्रांसीसी लेखक सिरानो दे बेर्जेराक की विख्यात कृति "चंद्रमा पर राज्य का इतिहास" की याद दिलायी थी। इस पुस्तक में चुंबक के आकर्षण बल से उड़ने वाले एक रोचक विमान का वर्णन किया गया है, जिसमें बैठ कर उपन्यास का एक पात्र चांद पर पहुँच जाता है। पुस्तक से यह अवतरण उद्धृत करता हूँ:

> "मैंने एक लोहे की हल्की सी गाड़ी बनवा ली; उसमें आराम से बैठ चुकने के बाद मैं चुंबकीय गोला अपने से ऊपर उछालने लगा। जब मैं गोला ऊपर फेंकता था, गाड़ी खिंच कर उसके पास पहुँच जाती थी और मैं गोले को और आगे बढ़ा देता था। गोले को हाथ में उठाने पर भी गाड़ी उसकी ओर गतिमान हो जाती थी। गोले को फेंकने-फेंकते आखिर मैं उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ से मैं गाड़ी समेत चांद पर गिरने लगा। इस क्षण मैंने गोले को कस कर पकड़ लिया, ताकि गाड़ी मुझसे दूर न भाग जाये। गिर कर कहीं चूर-चूर न हो जाऊँ, इसके लिये मैं गोले को इस प्रकार फेंकता था, कि गाड़ी के गिरने की गति गोले के आकर्षण से कम हो जाया करे। जब मैं चंद की जमीन से पाँच-छे सौ गज ऊपर आ गया, मैंने गोले को गिरने की दिशा के अभिलंब फेंकना शुरू कर दिया।"

इस तरह का विमान निरर्थक है, इसमें न तो उपन्यास के लेखक को कोई शक है, न उसके पाठकों को। पर मैं नहीं सोचता कि सभी ऐसी योजना की असंभाव्यता का सही कारण बताने में समर्थ होंगे। क्या लोहे की गाड़ी में बैठ कर चुंबक उछालना संभव नहीं है? या गाड़ी चुंबक के पीछे खिंचती हुई नहीं जायेगी? या कोई अन्य कारण है?

चुंबक को उछालना संभव है और यदि वह पर्याप्त शक्तिशाली है, तो वह गाड़ी को खींच भी लेगा। पर फिर भी विमान अपने स्थान से ऊपर नहीं उठेगा।

आपने कभी नाव में से कोई चीज तट पर फेंकी है? आपने बेशक ध्यान दिया होगा कि इससे नाव तट से थोड़ी दूर खिसक आती है। फेंकी जाने वाली वस्तु को एक दिशा में धक्का देते हुए आपकी पेशियां आपके शरीर को (और साथ ही नौका को) विपरीत दिशा में धकेलती हैं। यहां क्रियाशील व प्रतिक्रियाशील बलों की तुल्यता का वही नियम प्रकट होता है, जिसका नाम पहले भी कई बार आ चुका है। चुंबक उछालते वक्त भी यही होता है; जब गाड़ी में बैठा व्यक्ति गोले को ऊपर उछालता है (काफी बड़ी शक्ति से, क्योंकि गोला लोहे की गाड़ी की ओर खिंचता है), तो वह अनिवार्य रूप से गाड़ी को नीचे धकेलता है। और जब गाड़ी और गोला पारस्परिक आकर्षण के कारण पुनः मिलते हैं, तो वे उसी आरं-भिक स्थान पर पहुँचते हैं जहाँ से उन्हें अलग किया गया था। इससे स्पष्ट है कि गाड़ी यदि बिल्कुल हल्की भी होती, तो चुंबक फेंकने से उसमें एक मध्यवर्ती स्थान के गिर्द कंपन की गति ही आ सकती थी; इस विधि से उसे अग्र गति से चलने पर विवश नहीं किया जा सकता।

सिरानो के जमाने में (XVII-वीं शती के मध्य में) क्रिया व प्रतिक्रिया का नियम ज्ञात नहीं हुआ था, इसीलिये यह शंका का विषय है कि फ्रांसीसी लेखक अपनी मजाकियल गाड़ी की निरर्थकता का सही कारण जानते भी थे या नहीं।

"मुहम्मद के ताबूत" की तरह

विद्युत-चुंबकीय क्रेन के साथ काम करते वक्त एक बार एक मनोरंजक बात देखने को मिली। जंजीर के सहारे फर्श से बंधा हुआ लोहे का गोला विद्युत-चुंबक द्वारा ऊपर खिंच आया। जंजीर कुछ छोटी थी, इसीलिये गोला चुंबक को स्पर्श नहीं कर पा रहा था; चुंबक से उसकी दूरी एक बित्ते के करीब थी। दृश्य असाधारण था: जंजीर उदग्र खड़ी थी। चुंबक की शक्ति इतनी अधिक थी कि जंजीर पकड कर उस पर एक मजदूर चढ़ गया; जंजीर की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही।[1] संयोगवश पास ही एक

---

[1] यह विद्युत-चुंबकों की विराट शक्ति को दर्शाता है, क्योंकि खींचे जाने वाले पिंड से ध्रुव की दूरी बढ़ाने से चुंबक का बल बहुत तेजी से घटने

चित्र 96. ऊपर "लटकते" बोझ के साथ लोहे की सिकड़ी।

फोटोग्राफर खड़ा था, जिसने इस रोचक क्षण को चित्र में कैद कर लेने की देरी नहीं की। मुहम्मद के ताबूत की तरह हवा में लटकते आदमी का यह दृश्य चित्र 96 में दिखाया गया है।

मुहम्मद का ताबूत क्या है। धार्मिक मुसलमान यह विश्वास रखते हैं कि उनके नबी का ताबूत मकबरे के बीचोंबीच हवा में लटका हुआ है।

कहां तक यह संभव है?

"मुहम्मद का ताबूत, – अपने 'विभिन्न भौतिकीय वस्तुओं के बारे में पत्रों' में ऐलर ने लिखा है, – कहते हैं कि एक चुंबक के कारण हवा में स्थिर है; यह असंभव सा प्रतीत नहीं होता, क्योंकि कृत्रिम तौर बनाये गये ऐसे चुंबक भी हैं, जो 100 पौंड तक उठा ले सकते हैं।"[2]

ऐसी व्याख्या सही नहीं है; यदि उक्त विधि से (अर्थात् चुंबक के आकर्षण का उपयोग कर के) ऐसा संतुलन क्षण भर को प्राप्त कर भी लिया जाये, तो वह स्थायी नहीं होगा। हल्की सी भी ठोकर या हवा की मामूली सी गति इस संतुलन को तोड़ने

लगता है। नाल-चुंबक, जो प्रत्यक्ष संसर्ग से कुछेक सौ ग्राम का बोझ उठा सकता है, बोझ और उसके बीच कागज का एक पृष्ठ रख देने से बोझ उठाने की आधी शक्ति खो देता है। इसीलिये चुंबकों के सिरे पर रंग की परत नहीं चढ़ाई जाती, यद्यपि यह जंक से बचाने का अच्छा साधन है।

[2] यह 1774 में लिखा गया है, जिस समय विद्युत-चुंबक ज्ञात नहीं थे।

के लिये काफी रहेगी, – और तब ताबूत या तो जमीन पर गिर जायेगा, या छत की ओर खिंच आयेगा। उसे स्थिर अवस्था में रोक रखना उतना ही कठिन है, जितना शंकु को शीर्ष के सहारे टिका कर रखना, यद्यपि सिद्धांततः यह संभव है।

लेकिन, "मुहम्मद के ताबूत" जैसी संवृत्ति चुंबकों की सहायता से उत्पन्न की जा सकती है। सिर्फ इसके लिये उनके पारस्परिक **आकर्षण** की नहीं, पारस्परिक **विकर्षण** की सहायता लेनी पड़ेगी। (जिन्हों ने अभी-अभी भौतिकी का अध्ययन किया है, वे भी अक्सर भूल जाते हैं कि चुंबक सिर्फ आकर्षित ही नहीं, विकर्षित भी होते हैं।) सभी जानते हैं कि चुंबकों के समान ध्रुव एक दूसरे को विकर्षित करते हैं। दो चुंबकीय पट्टों को यदि एक दूसरे पर इस प्रकार रखा जाये कि उनके असमान ध्रुव पास हों, तो वे एक दूसरे को विकर्षित करेंगे। ऊपर वाले पट्टे को भार के अनुसार इस प्रकार चुना जा सकता है कि वह नीचे वाले पट्टे के ठीक ऊपर स्थायी संतुलन के साथ हवा में लटका रहे। सिर्फ इस बात का खयाल रखना होगा कि ऊपर वाला चुंबक घूमने न लगे और क्षैतिज तल पर बना रहे। इसके लिये कांच जैसे किसी अचुंबकीय पदार्थ के खंभे लगाये जा सकते हैं, जो ऊपर वाले चुंबक को इधर-उधर नहीं होने देंगे। ऐसी परिस्थितियों में मुहम्मद का ताबूत सचमुच हवा में टिका रह सकता है।

इस तरह की संवृत्ति चुंबक की **आकर्षण** शक्ति से भी उत्पन्न की जा सकती है, यदि पिंड गतिमान हो। इसी विचार के आधार पर सोवियत भौतिकविद प्रो. बे. पे. वेइनबेर्ग ने घर्षणहीन विद्युत-चुंबकीय रेलपथ की
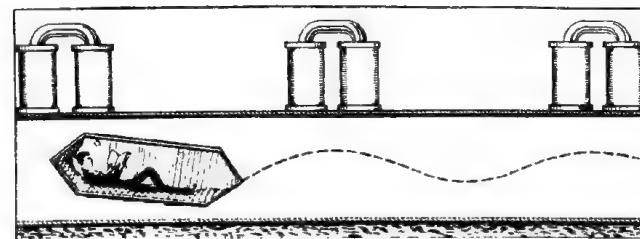
चित्र 97. घर्षणहीन गति वाली गाड़ी। पथ की योजना प्रो. ब. पे. वेइनबेर्ग द्वारा बनायी गयी थी।

एक उत्कृष्ट योजना पेश की थी (चित्र 97)। योजना इतनी शिक्षाप्रद है कि भौतिकी के साथ दिलचस्पी रखने वाले हर व्यक्ति को इसे जानना चाहिये।

विद्युत-चुंबकीय गाड़ी

प्रो. बे. पे. वेइनबेर्ग द्वारा प्रस्तावित रेलपथ के डिब्बे **बिल्कुल भारहीन** होंगे; उनका भार विद्युत-चुंबक के आकर्षण द्वारा नष्ट किया जाता है। इसीलिये आपको आश्चर्य नहीं होगा, यदि आपको पता चलेगा कि योजनानुसार ये डिब्बे न तो चक्कों से रेल पथ पर लुढ़कते हैं, न पानी में तैरते हैं और न हवा में फिसलते हैं। वे बिना किसी टेक या आधार के और बिना किसी चीज को स्पर्श किये चुंबकीय बलों के शक्तिशाली अदृश्य धागों से लटकते हुए चलते हैं। उनके साथ किसी चीज का घर्षण नहीं होता और इसीलिये एक बार गतिमान हो जाने पर जड़त्व के कारण अपना वेग स्थिर बनाये रखते हैं; उन्हे किसी इंजन की आवश्यकता नहीं पड़ती।

योजना का कार्यान्वियन निम्न प्रकार से होगा। डिब्बे तांबे की नली में चलेंगे। घर्षण डिब्बे की गति में बाधक न हो, इसके लिये नली को निर्वात कर दिया जायेगा। नली की निचली दीवार के साथ घर्षण न हो, इस के लिये डिब्बे **नली की दीवारों को स्पर्श किये बगैर** शून्य में लटकते हुए चलेंगे। इसके लिये नली के ऊपर पूरे रास्ते पर विशेष दूरियों पर शक्तिशाली विद्युत-चुंबक रखे रहेंगे। वे **लोहे** के गतिमान डिब्बों को अपनी ओर आकर्षित करेंगे और डिब्बों को गिरने से रोकेंगे। चुंबकों की शक्ति इतनी होगी कि डिब्बा हमेशा नली के "फर्श" और "छत" के बीच में रहेगा; दोनों में से किसी को भी स्पर्श नहीं करेगा। विद्युतचुंबक अपने नीचे भागते हुए डिब्बे को ऊपर खींचता है, पर डिब्बा छत को छू नहीं पाता; गुरुत्व शक्ति इसमें बाधक होती है। लेकिन जैसे ही वह फर्श पर गिरने वाला होता है, अगला चुंबक उसे ऊपर खींचने लगता है। इस प्रकार डिब्बा पृथ्वी और विद्युतचुंबकों के आकर्षण बल के बीच लटकता हुआ लहरदार रेखा पर चलता रहता है; कोई घर्षण नहीं होता, कोई झटका नहीं

लगता: डिब्बा अंतरिक्ष में ग्रहों की भाँति आराम से अपना रास्ता तय करता रहता है।

डिब्बे कैसे होते हैं? ये बेलनाकार सिगार की तरह होते हैं, इनकी ऊँचाई 90 cm और लंबाई $2^1/_2$ m होती है। निस्संदेह ये वायुरुद्ध भी होते हैं, क्योंकि नली में हवा नहीं होती। उसमें पनडुब्बियों की तरह हवा साफ करने के स्वचालित उपकरण भी लगे होते हैं।

डिब्बों को चलाने की विधि भी अबतक प्रयुक्त विधियों से भिन्न है: इसकी तुलना सिर्फ तोप से गोला दागने की क्रिया के साथ की जा सकती है। डिब्बे तोप के गोले की तरह ही छोड़े जाते हैं। पर यहां "तोप" भी विद्युत-चुंबकीय ही है। डिब्बे को विदा करने वाले उपकरण की बनावट कुंडली के रूप में लपेटे गये तार (नलिज[1]) के एक गुण पर आधारित है: जब तार में बिजली की धारा प्रवाहित की जाती है, कुंडली में घुसायी गयी छड़ खिंचाव से आगे बढ़ने लगती है। खिंचाव इतना शक्तिशाली होता है कि यदि कुंडली की लंबाई पर्याप्त बड़ी होगी, तो छड़ बहुत तीव्र वेग प्राप्त कर लेगी।[2] नये चुंबकीय पथ में यही बल डिब्बों को "फेंकेगा"। चूँकि सुरंग में घर्षण नहीं है, इसलिये डिब्बे का वेग कम नहीं होगा; वह जड़त्व के कारण तबतक चलता रहेगा, जबतक कि दूसरे स्टेशन पर स्थित नलिज उसे विपरीत शक्ति से रोक न ले।

---

[1] किसी नली पर एक तार बहुत बड़ी संख्या में लपेट कर नली को निकाल लेने से तार एक लंबे बेलनाकार पेंच की चूड़ियों का आकार ग्रहण कर लेता है। यदि चूड़ियां बहुत पास-पास होंगे, तो तार नली जैसा दिखने लगेगा। इन्हीं कारणों से ऐसी सर्पिलाकार कुंडली को नलिज या सोलेनायड कहते हैं (यूनानी 'सोलेन' का अर्थ है 'नली' और 'आयड' का – 'जैसा')। – अनु.

[2] विद्युत-धारा के कारण नलिज के भीतर उत्पन्न समरूप चुंबकीय क्षेत्र के बल छड़ को एक विशेष त्वरण के साथ गतिमान करते हैं और इसीलिये नलिज से निकलते क्षण छड़ का वेग नलिज की लंबाई पर निर्भर करता है। – अनु.

योजना के बारे में चंद सूचनायें इसके आविष्कारक के शब्दों में दी जा रही हैं :

"यह प्रयोग मैं 1911-1913 में तोम्स्क तकनीकी संस्थान की भौतिकीय प्रयोगशाला में 32 cm व्यास वाली ताम्र-नली के साथ कर रहा था। इसके ऊपर विद्युत-चुंबक रखे हुए थे। डिब्बे की जगह 10 kg भारी लोहे की नली का एक टुकड़ा काम में लाया जा रहा था। इसमें आगे और पीछे चक्के लगे हुए थे; इसकी "नाक" भी थी, जिससे वह बालू की बोरी के सहारे रखे तख्ते पर चोट करता था (रुकने के लिये!)। इस डिब्बे को 6 km/h का वेग संप्रेषित किया जा सकता था। कमरे के छोटे आकार और नली की छल्ले जैसी आकृति के कारण उसे इससे अधिक वेग देना मुश्किल था। मेरी योजना के अनुसार सोलेनायड की लंबाई करीब तीन मील होनी थी, जिससे डिब्बे का वेग सरलतापूर्वक 800-1000 km/h तक पहुँचाया जा सकता था। इस वेग को बनाये रखने के लिये अतिरिक्त ऊर्जा की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी, क्योंकि नली के भीतर फर्श या छत के साथ डिब्बे का कोई घर्षण नहीं होगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पथ के निर्माण में, विशेष कर नली के निर्माण में, काफी बड़ी धन-राशि खर्च करनी होगी, पर वेग को **स्थिर बनाये रखने में** और ड्राइवर, गार्ड, आदि रखने में कोई खर्च न लगने के कारण प्रति किलोमीटर यात्रा का मूल्य एक कोपेक के कुछेक सहस्रांश से लेकर 1-2 शतांश भर ही होगा और यदि आती-जाती (डबल) लाइन बनायी जाये, तो दिन भर में कोई 15000 यात्री एक दिशा में सफर कर सकेंगे, या एक दिशा में 10000 टन माल भेजा जा सकेगा।"

पृथ्वीवासियों के साथ मंगलवासियों का युद्ध

प्राचीन रोम के प्रकृतिदर्शी प्लीन अपने समय की एक प्रचलित कहानी के बारे में लिखते हैं, जिसके अनुसार भारत के सागर-तट पर कहीं एक विशाल चुंबकीय चट्टान था। वह लोहे की वस्तुओं को इतनी शक्ति से खींचता था कि पास से गुजरने वाले जहाज से काँटी तक उखड़ कर उससे चिपक जाती थी, और जहाज की जगह सिर्फ तख्तों का ढेर बच जाता था। नौयात्रियों के लिये यह काफी खतरनाक जगह थी।

बाद में उक्त चट्टान का वर्णन "एक हजार एक रातें" नामक कथा-संग्रह में देखा गया

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सिर्फ एक किंवदंती है। हम जानते हैं कि चुंबकीय पर्वत, अर्थात् चुंबकीय लौह-अयस्कों से समृद्ध पर्वत सचमुच में होते हैं। माग्नितागोर्स्क के विख्यात चुंबकीय पर्वत को ही लीजिये, जहाँ आज लौह-अयस्क के शोधन के लिये वात-भट्टियां लगी हुई हैं। पर ऐसे पर्वतों की आकर्षण-शक्ति इतनी क्षीण होती है कि उसे नगण्य माना जा सकता है। ऐसे चट्टान और पर्वत, जिनका वर्णन प्लीन ने किया है, पृथ्वी पर कभी नहीं थे।

ऐसे जहाज, जिनमें लोहे या इस्पात का कुछ नहीं होता, आजकल चुंबकीय पर्वतों के डर से नहीं, पार्थिव चुंबकीय के अध्ययन के लिये बनाये जाते हैं।[1]

विज्ञान-गल्प के लेखक कुर्ट लासविट्स ने प्लीन की किंवदंती के विचारो का उपयोग अपने "दो ग्रहों पर" नामक उपन्यास में एक भयानक अस्त्र की कल्पना के लिये किया। इस अस्त्र का प्रयोग पृथ्वी की सेना के विरुद्ध मंगलग्रह से आये हुए लोग करते हैं। मंगलवासी इस चुंबकीय (या और सही कहें, तो विद्युत-चुंबकीय) अस्त्र का प्रयोग कर के पृथ्वी की सेना को युद्ध के आरंभ में ही निःशस्त्र कर देते हैं।

उपन्यासकार इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार से करते हैं :

> "घुड़सवारों की शानदार कतार आगे बढ़ती जा रही थी। लग रहा था कि प्राण न्योछावर करने को तत्पर सैनिकों ने आखिर शक्तिशाली शत्रु (मंगलवासी – या. पे.) को पीछे हटने पर विवश कर दिया है; उनके हवाई विमानों में एक दूसरी ही गति होने लगी। वे एक के बाद एक ऊपर उठने लगे, मानो रास्ता छोड़ रहे हों।

---

[1] 1957-1958 में अंतर्राष्ट्रीय ज्याभौतिकी वर्ष के अध्ययन-कार्य में सोवियत संघ की ओर से एक जहाज "जर्या" ने भाग लिया था, जिस पर चुंबकीय बल अपना प्रभाव नहीं डाल सकते थे। इसमें मशीनों से ले कर काँटी और पेंच तक हर वस्तु तांबे, अलुमीनियम या किसी अन्य अचुंबकीय पदार्थ से बनी थी। – संपादक

पर इसके साथ ही ऊपर से कोई काली वस्तु मैदान पर लटकती हुई उतरने लगी। वह फहरते चादर की तरह हवा में मैदान पर छायी हुई थी और विमानों से घिरी हुई थी। घुड़सवारों की अगली कतार उस वस्तु के प्रभाव क्षेत्र में आ गयी और उसी क्षण वह विचित्र मशीन सेना की पूरी टूकड़ी पर छा गयी। उसका प्रभाव भयावह था और ऐसा, जिसकी बिल्कुल आशा नहीं की गयी थी। रणभूमि से भय की तेज चीखें आने लगीं। घोड़े और घुड़सवार जमीन पर लोटने लगे और असंख्य भाले, तलवार, तीर, फरसे आदि अस्त्र-शस्त्र हवा में उड़ चले – सब उस विचित्र मशीन की ओर आकर्षित हो कर उससे चिपकते जा रहे थे।

मशीन हवा में तैरती हुई रणभूमि से कुछ दूर हटी और हथियारों की पहली फसल जमीन पर फेंक कर वापस आ गयी। दो बार और उसने हथियारों की "कटनी" की। रणक्षेत्र में एक भी व्यक्ति नहीं बचा, जो हाथ में भाला या कोई अन्य अस्त्र ले कर खड़ा हो।

यह मशीन मंगलवासियों का नया आविष्कार थी: वह लोहे और इस्पात की बनी वस्तुओं को प्रचंड शक्ति से अपनी ओर खींचने लगती थी। हवा में फहरते इस चुंबक द्वारा मंगलवासी अपने शत्रुओं को बिना कोई चोट पहुँचाये निःशस्त्र कर देते थे।

इसके बाद हवाई चुंबक पैदल सैनिकों की ओर बढ़ा। सिपाही हथियार पकड़े रहने का निष्फल प्रयत्न कर रहे थे, पर अदृश्य शक्ति उनके हाथों से छीनती जा रही थी। बहुत से सैनिक, जो अपना हथियार छोड़ना नहीं चाहते थे, भाले-तलवार समेत चुंबक की ओर स्वयं खिंचने लगे। चंद ही मिनटों में सारी बटालियन निहत्थी हो गयी। इसके बाद मशीन शहर में मार्च करती बटालियनों के पीछे भागी और उन्हें भी निःशस्त्र कर दी।

तोपचियों की भी यही हालत हुई।"

घड़ी और चुंबकत्व

ऊपर दिये गये उद्धरण को पढ़ने के बाद मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है: क्या चुंबकीय बलों के प्रभाव से बचने का कोई उपाय नहीं

है, क्या किसी ऐसी चीज की दीवार नहीं बनायी जा सकती, जिसे चुंबकीय बल बेध न सकें?

चित्र 98. कौनसी चीज घड़ी के पुर्जों को चुंबकित होने से बचाती है?

यह पूरी तरह से संभव है। मंगलवासियों के अनोखे आविष्कार को प्रभावहीन किया जा सकता था, यदि इसके लिये पहले से आवश्यक कदम उठाये गये होते।

चुंबक के लिये अवेध्य द्रव्य लोहा ही है। यह बात विचित्र सी लग सकती है, क्योंकि लोहा चुंबक के प्रभाव से सरलतापूर्वक चुंबकीकृत हो जाता है! पर लोहे के छल्ले के **भीतर** स्थित कंपास की सूई छल्ले के बाहर रखे गये चुंबक द्वारा प्रभावित नहीं होती है।

जेबी घड़ी में जो लोहे के पुर्जे होते हैं, उन्हें चुंबक के प्रभाव से बचाने के लिये घड़ी को लोहे की ड़िब्बी में रखनी चाहिये। यदि आप नाल-चुंबक के शक्तिशाली ध्रुवों पर सोने की घड़ी रखेंगे, तो भीतर स्थित यंत्र के सभी फौलादी भाग, विशेषकर संतुलक में लगी केशिका-कमानी,[1] चुंबकीकृत हो जायेंगे और घड़ी खराब हो जायेगी, ठीक समय नहीं बताने लगेगी। चुंबक हटा लेने पर घड़ी अपनी पुरानी अवस्था में नहीं लौटेगी; उसके फौलादी भाग चुंबकीकृत ही रहेंगे और घड़ी की अच्छी खासी मरम्मत करानी पड़ेगी, बहुत सारे पुर्जों को बदलवाना पड़ जायेगा। इसीलिये सोने की घड़ी के साथ ऐसे प्रयोग न करना ही बेहतर होगा, क्योंकि यह कुछ ज्यादा ही महंगा पड़ेगा।

इसके विपरीत, जिस घड़ी के कल-पुर्जे लोहे की डिब्बी (कौरपुस) में बंद हैं, उनके साथ आप बिना किसी डर के यह प्रयोग कर सकते हैं, – चुंबकीय बल लोहे को बेध कर उसके पार नहीं जा सकता। ऐसी घड़ी को आप शक्तिशाली से शक्तिशाली डायनेमो की कुंडली के पास ले जा

---

[1] यदि यह कमानी इन्वर (invar) नामक मिश्र-धातु से बनी है, तो उस पर चुंबक का असर नहीं पड़ेगा। इन्वर चुंबकीकृत नहीं होता, यद्यपि उसमें लोहा और निकेल भी मिला होता है।

14–567

सकते हैं, घड़ी की चाल में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। बिजली तकनीशियनों के लिये लोहे की सस्ती घड़ियां आदर्श होती हैं। सोने और चांदी की घड़ियां चुंबकीय प्रभाव से उनके हाथों में अक्सर खराब होती रहेंगी।

चुंबकीय "शाश्वत" चलित्र

"शाश्वत" चलित्र बनाने के प्रयत्नों में चुंबक की भी कम भूमिका नहीं रही है। आविष्कारकों ने चुंबक का तरह-तरह से उपयोग किया, पर अनंत काल तक खुद ब खुद चलते रहने वाली कोई प्रयुक्ति नहीं बन पायी। ऐसी एक प्रयुक्ति यहां दी जा रही है (इसका वर्णन XVII-वीं शती में चेस्टर के एपिस्कोप अंग्रेज जोन विल्केंसन ने किया था)।

एक खंभे पर शक्तिशाली चुंबक *A* रखा जाता है (चित्र 99)। उससे दो पटरियां *M* और *N* उठंगा कर रखी गयी हैं। ऊपर वाली पटरी *M* सीधी है और उसके ऊपरी भाग में एक छेद *C* है। निचली पटरी *N* का आकार उल्टे मेहराब सा है। आविष्कारक का विचार था कि ऊपरी पटरी में लोहे की एक छोटी सी गोली रखी जाये, तो वह चुंबक से खिंच कर ऊपर लुढ़क आयेगी; पर छेद तक पहुँचने पर वह नीचे वाली पटरी *N* पर गिर जायेगी और वेग के कारण नीचे मुड़ी किनारी *D* पर फिसलती हुई पुनः ऊपर वाली पटरी *M* पर आ जायेगी; यहाँ से वह चुंबक द्वारा आकर्षित हो कर फिर से ऊपर चढ़ने लगेगी। गोली इसी प्रकार ऊपर-नीचे अविराम लुढ़कती रहेगी और हमें "शाश्वत गति" मिल जायेगी।

इस आविष्कार में गड़बड़ी क्या है?

यह बताना कठिन नहीं है। आविष्कारक ने यह क्यों सोच लिया कि पटरी *N* पर लुढ़कती हुई गोली मुड़ी किनारी *D* के सहारे उठ कर पटरी *M* पर आ जायेगी? क्या *N* पर लुढ़कते वक्त गोली इतना बड़ा वेग प्राप्त कर लेगी? यह तभी संभव होता, यदि गोली सिर्फ गुरुत्व-बल के प्रभाव से लुढ़कती होती: इस स्थिति में उसकी गति त्वरित होती। लेकिन गोली पर दो बल लग रहे हैं: गुरुत्व का और चुंबकीय आकर्षण का। चुंबकीय आकर्षण का बल मान्यतानुसार इतना सामर्थ्य रखता है कि वह गोली को स्थिति *B* से खींच कर स्थिति *C* में ला दे। इसीलिये पटरी *N* पर गोली त्वरित नहीं, मंदित गति से लुघड़ेगी, और यदि वह निचले छोर तक पहुँच भी जायेगी, तो वह इतना वेग नहीं एकत्र कर पायेगी कि मुड़ी किनारी *D* पर होते हुए ऊपर उठ सके।
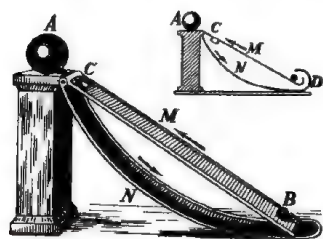
चित्र 99. मिथ्या शाश्वत चलित्र।

ऊपर वर्णित योजना कई बार अपना रूप बदल-बदल कर सामने आती रही है। इनमें से एक को जर्मनी में 1878 ई. में पेटेंट भी दिया गया था। यह काफी विचित्र बात है, क्योंकि तबतक ऊर्जा संरक्षण नियम की घोषणा हुए तीस साल बीत चुके थे। आविष्कारक ने अपने "शाश्वत चुंबकीय चलित्र" में प्रयुक्त मुख्य गलत धारणा को इस चालाकी से छिपा लिया कि पेटेंट देने वाला तकनीकी आयोग धोखा खा गया। कानून के अनुसार प्रकृति के नियमों का विरोध करने वाले विचारों को पेटेंट नहीं मिल सकता था, पर औपचारिकतः इस आविष्कार को पेटेंट मिल गया। इस तरह के एकमात्र पेटेंट का मालिक अपनी कृति से शायद जल्द ही निराश हो गया, क्योंकि दो साल बाद उसने एकस्व-कर देना बंद कर दिया। मजेदार एकस्व सर्वसुलभ हो गया, पर किसी को उसकी आवश्यकता ही नहीं थी।

संग्रहालयों की समस्या

संग्रहालयों में कभी-कभी प्राचीन वर्तिलेखों (रूल की तरह लपेटे हुए कागजातों) को पढ़ना पड़ता है, जो कागज के पुराने पड़ जाने के कारण इतने जीर्ण हो जाते हैं कि छूने से भी फटने लगते हैं।

ऐसे कागजों को कैसे सीधा किया जा सकता है?

सोवियत संघ की विज्ञान अकादमी में दस्तावेजों के जीर्णोद्धार के लिये एक विशेष प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसी समस्यायें आती रहती हैं। इसके लिये प्रयोगशाला में विद्युत का उपयोग किया जाता है। वर्तिलेख का विद्युतन कर देने से कागज की सभी परतों पर समान आवेश आ जाता है और वे एक दूसरी से विकर्षित हो कर अलग हो जाती हैं। फिर उन्हें निपुण हाथों से सीधा करना और अच्छे कागज पर चिपका लेना भर रह जाता है, जो अपेक्षाकृत कठिन काम नहीं है।

एक और काल्पनिक शाश्वत चलित्र

पिछले समय से शाश्वत चलित्र के अन्वेषकों में डायनेमो और विद्युत-चलित्र को जोड़ने का विचार काफी लोकप्रिय हो रहा है। मेरे पास साल में करीब आधी दर्जन ऐसी योजनायें आ जाया करती हैं। इन सब में मुख्य बात एक ही होती है: विद्युतचलित्र और डायनेमो के चक्कों को गति संचारक फीते से जोड़ देना चाहिये। यदि शुरू में डायनेमो को एक बार चला दिया जाये, तो उत्पन्न विद्युतधारा से विद्युतचलित्र चल पड़ेगा और साथ-साथ फीते द्वारा डायनेमो को भी चलाया करेगा। इस तरह दोनों ही मशीनें,– आविष्कारक सोचते हैं,– एक दूसरे को चलाने लगेंगी और वे तबतक चलती रहेंगी, जबतक उनके पुर्जे घिस-पिट कर खराब नहीं हो जायेंगे।

आविष्कारकों को यह विचार लुभावना लगता है; पर जिन्होंने इसे व्यवहार में उतारने की कोशिश की, उन्हें साश्चर्य बात माननी पड़ी कि उपरोक्त परिस्थितियो में दोनों में से एक भी मशीन काम नहीं करती। इस योजना से और कोई आशा भी नहीं थी। यदि दोनों संयोजित मशीनों का दक्षता-गुणांक सौ प्रतिशत भी होता, तो उनकी गति को अविराम बनाने के लिये घर्षण को पूर्णतया नष्ट करना पड़ता। उपरोक्त दो मशीनों को जोड़ने पर वस्तुतः वे एक नयी मशीन (इंजिनियरो की भाषा में– "एग्रीगेट") बन जाती हैं, जिससे स्वयं अपने आप को चलाते रहने की मांग की जाती है। यदि एग्रीगेट में घर्षण पूर्णतया अनुपस्थित रहता, तो वह अनंत काल तक चलता रहता। लेकिन इससे हम कोई लाभ नहीं उठा पाते: जैसे ही "चलित्र" से कोई वाह्य कार्य संपन्न कराने का प्रयत्न किया जाता, वह उसी क्षण रुक जाता। हमारे सामने "शाश्वत गति" का नमूना होता, शाश्वत चलित्र का नहीं। घर्षण की उपस्थिति में एग्रीगेट चलेगा ही नहीं।

आश्चर्य है कि इस विचार से आकर्षित लोगों के दिमाग में इसके कार्यान्वियन की और सरल विधि क्यों नहीं आती: किन्ही भी दो चक्कों को बेल्ट या फीते से जोड़ कर एक को चला दिया और शाश्वत चलित्र बन गया। यदि ऊपर बतायी गयी योजना के तर्कों का अनुसरण किया जाये, तो यहाँ भी एक चक्का दूसरे को घुमायेगा और दूसरा पहले को। एक चक्के से भी काम चल सकता है: उसे एक बार घुमा दें और उसका दायां भाग बायें भाग को घुमाने लगेगा और बायां भाग दायें को। पर आखिरी दो स्थितियों में विचार का बेतुकापन कुछ ज्यादा ही स्पष्ट है और इसीलिये ऐसी योजनायें बनाने के लिये कोई व्यक्ति प्रेरित नहीं होता। पर यदि सच पूछा जाये, तो ऊपर वर्णित सभी तीन "शाश्वत चलित्रों" की योजनाओं के पीछे एक ही भ्रांति छिपी है।

लगभग शाश्वत चलित्र

गणितज्ञ के लिये "लगभग शाश्वत" शब्दों में कोई आकर्षण की बात नहीं है। गति या तो शाश्वत हो सकती है या नश्वर; यथार्थतः "लगभग शाश्वत" का अर्थ है नश्वर।

पर व्यावहारिक जीवन के लिये ऐसी बात नहीं है। बहुत से लोग इतना ही से संतुष्ट हो जाते कि उनके पास बिल्कुल शाश्वत चलित्र नहीं, तो कम से कम "लगभग शाश्वत" चलित्र ही है, जो उदाहरण के लिये, एक हजार वर्ष तक काम कर सकता है। मानव जीवन बहुत ही छोटा है और हमारे लिये सहस्त्राब्दियों का भी उतना ही महत्त्व है, जितना शाश्वत का। व्यावहारिक बुद्धि के लोग कहेंगे कि शाश्वत चलित्र की समस्या हल हो चुकी है और अब इस पर सर खपाने की आवश्यकता नहीं है।

ऐसे लोगों के लिये एक खुशखबरी है कि हजार वर्षों तक काम कर सकने वाले चलित्र का आविष्कार हो चुका है। ऐसा शाश्वत चलित्र कुछ साधन लगा कर कोई भी व्यक्ति प्राप्त कर सकता है। इस आविष्कार पर किसी का एकस्व (पेटेंट) नहीं है और इसे बनाने की विधि सर्वविदित है। 1903 में प्रो. स्ट्रेट द्वारा बनाया गया उपकरण, जिसे अक्सर रेडियम-घड़ी के नाम से पुकारते हैं, बिल्कुल सरल है (दे. चित्र 100)।

शीशे के निर्वात बरतन में स्फटिक के धागे B से (जो विद्युत का कुचालक है) एक परख-नली लटक रही है। इसमें एक ग्राम का कुछेक सहस्त्रांश भर रेडियम-लवण होता है। परख-नली के निचले छोर पर विद्युतदर्शी (एलेक्ट्रोस्कोप) की तरह दो स्वर्ण-पत्तर लगे होते हैं। विदित है कि रेडियम तीन प्रकार की किरणें छोड़ता है: अल्फा, बीटा और गामा। हमारे उपकरण के लिये बीटा-किरणें अधिक महत्व रखती हैं, जो ऋण विद्युत से आविष्ट कणिकाओं (एलेक्ट्रोन) के प्रवाह से बनती हैं। ये किरणें
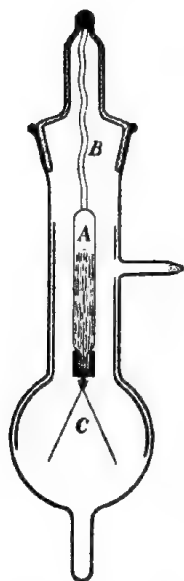
चित्र 100. रेडियम-घड़ी, जो "लगभग शाश्वत" है; एक बार चाबी देने पर यह 1600 वर्षों तक चलती रहेगी।

काँच को बेध कर उसके पार निकल जाती हैं। रेडियम द्वारा अपने गिर्द फेंकी जाने वाली कणिकायें उसके ऋणावेश का कुछ भाग अपने साथ लेती जाती हैं और इसीलिये परख नली रेडियम समेत धनाविष्ट हो जाती है। यह धनावेश स्वर्ण-पत्तरों पर आ जाता है और उन्हें पारस्परिक विकर्षण द्वारा एक दूसरे से अलग होने पर विवश कर देता है।

बहुत ज्यादा फैलने पर पत्तर बरतन की दीवारों को स्पर्श करने लगते हैं और वहाँ अपना आवेश खो देते हैं (क्योंकि वहाँ दीवार से पन्नी की पट्टियां लगी होती हैं, जिनके सहारे आवेश निकल जाता है)। आवेश खो कर वे पुनः आपस में सट जाते हैं। पर धनावेश जमा होता रहता है, इसलिये पत्तर पुनः फैलते हैं, अपना आवेश दीवारों को दे देते हैं और पुनः सट जाते है। यह क्रिया चलती रहती है और हर दो-तीन मिनट पर अपने को दुहराने लगती है। स्फुरण क्रिया इतनी नियमित होती है, जैसे यह घड़ी की लोलक हो। इसीलिये इसका नाम रेडियम-घड़ी पड़ा है। दसियों और सैंकड़ों वर्षों तक, जबतक रेडियम से विकिरण जारी रहेगा, घड़ी काम करती रहेगी।

पाठक निस्संदेह समझ रहे होंगे कि यह "शाश्वत" नहीं, सिर्फ निःशुल्क चलित्र है।

कितने समय तक रेडियम अपनी किरणें छोड़ता रहता है?

यह निर्धारित है कि रेडियम की विकिरण-क्षमता 1600 वर्षों में दुगुनी कम हो जाती है। इसीलिये रेडियम घड़ी बिना रूके एक हजार वर्षों से कम नहीं चलेगी। सिर्फ स्फुरण की आवृत्ति (बारंबारता) कम होती जायेगी, क्योंकि कालानुसार विद्युत का आवेश कम होने लगता है। यदि रूस राज्य के आरंभ में ऐसा उपकरण बनाया गया होता, तो वह आज भी काम करता रहता।

क्या इस निःशुल्क चलित्र से कोई व्यावहारिक लाभ हो सकता है?

अफसोस है कि नहीं। इस चलित्र की शक्ति, अर्थात् उसके द्वारा प्रति सेकेंड संपन्न कार्य इतना नगण्य है कि उससे कोई भी यंत्र चलाया नहीं जा सकता। उसके काम का परिणाम दृष्टिगोचर हो, इसके लिये रेडियम के काफी बड़े भंडार की आवश्यकता पड़ेगी। लेकिन तब ऐसे निःशुल्क चलित्र से दिवाला पिट जायेगा, क्योंकि रेडियम पृथ्वी पर काफी महंगा व विरल तत्त्व है।

बिजली के तार पर चिड़िये

सभी जानते है कि उच्च वोल्टता पर स्थित बिजली के किसी तार को (जैसे ट्राम के तार को) छूना आदमी के लिये खतरनाक होता है। यह आदमी और बड़े जीवों के लिये घातक सिद्ध हो सकता है। बिजली के खंभों से टूट कर लटके तार से गाय या घोड़े की मृत्यु होने की अनेक घटनायें ज्ञात हैं।

लेकिन तार पर बैठी चिड़ियों को क्यों नहीं कुछ होता? शहरों में आपने अक्सर यह दृश्य देख होगा (चित्र 101)।

चित्र 101. बिजली के तार पर पक्षी बिना किसी खतरे के बैठे रहते हैं। क्यों?

इस विरोधाभास को समझने के लिये निम्न बात पर ध्यान देना चाहिये: तार पर बैठी चिड़िया का शरीर सर्किट की एक उपशाखा का काम करने लगता है, जिसका प्रतिरोध दूसरी शाखा (दोनों पैरों के बीच के नन्हे भाग) की तुलना में बहुत अधिक होता है। इसीलिये इस उपशाखा (चिड़िया के शरीर) में धारा-बल नगण्य होता है और कोई नुकसान नहीं पहुँचाता। लेकिन यदि तार पर बैठी चिड़िया पंख, दुम या चोंच आदि से खंभे को छू दे, या किसी भी प्रकार जमीन से संलग्न हो जाये, तो उसके शरीर से हो
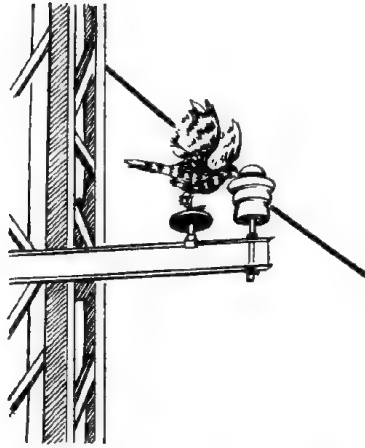
चित्र 102. उच्च वोल्टता पर बिजली भेजने के लिये बने खंभों पर चिड़ियों के बैठने के लिये पृथक्कृत स्थान।

कर पृथ्वी की ओर दौड़ती धारा द्वारा क्षण भर में उसकी मृत्यु हो जायेगी। एसा अक्सर देखा जाता है।

चिड़ियों की आदत होती है कि वे खंभे की बाजू पर बैठ कर तार से चोंच साफ करने लगती हैं। चूँकि बाजू खंभे द्वारा जमीन से संलग्न होता है, इसलिये धारामय तार को छूते ही भूसंपर्कित चिड़िया की मृत्यु हो जाती है। ऐसी घटनाओं की विशाल संख्या का अंदाज आपको इस बात से लग सकता है कि जर्मनी में चिड़ियों की रक्षा करने के लिये विशेष कदम उठाने पड़े। इसके लिये खंभों के बाजू पर चिड़ियों के बैठने के लिये पृथक स्थान बनाया जाता है (चित्र 102), ताकि वे बिना किसी खतरे के चोंच साफ कर सकें। कभी-कभी खतरनाक स्थानों को घेर दिया जाता है, ताकि पक्षी उसे छू न सके।

सोवियत संघ में इस तीव्रता से विद्युतीकरण का विकास हो रहा है कि यहाँ भी बिजली के तार से पक्षियों की रक्षा के लिये कुछ सोचना चाहिये। इससे वन और खेती को लाभ होगा।

तड़ित-प्रकाश

क्या आपने कभी बिजली की चमक में सड़क के सरगर्म भाग का दृश्य देखा है? यदि हाँ, तो आपने आकाश में चमकने वाली बिजली के प्रकाश की एक विशेषता पर अवश्य ध्यान दिया होगा: सड़क पर, जहाँ काफी चहल-पहल थी, क्षण भर को सब कुछ मृतप्राय हो जाता है। दौड़ते घोड़े हवा में पैर उठाये थम जाते हैं; गाड़ियां भी थम जाती हैं; चक्के की तीलियाँ स्पष्ट दिखने लगती हैं...

इस प्रतीयमान जड़ता का कारण है तड़ित का अत्यंत छोटा जीवन-काल। बिजली से उत्पन्न सभी चिनगारियों की तरह तड़ित भी इतनी कम देर टिकती है कि साधारण उपकरणों द्वारा उसे नापा भी नहीं जा सकता। अप्रत्यक्ष विधियों से यह निर्धारित करने में सफलता मिली है कि तड़ित सेकेंड के कुछ सहस्त्रांश भर ही जीवित रहती है।[1] इतने नन्हे अंतराल में शायद ही कोई वस्तु इतना खिसक सकती है कि उसका स्थानांतरण आँखों से दिख सके। इसीलिये चहल-पहल से भरी सड़क भी बिजली की कौंध में बिल्कुल थमी सी लगती है; हमें सड़क पर सेकेंड के सहस्त्रांश भर टिकने वाली चीज दिखती है। इस अंतराल में चलती गाड़ी के चक्के की तीली मिलीमीटर के एक क्षुद्रांश भर ही घूम पाती है। स्वाभाविक है कि आँखों को वह जड़ सी अचल लगेगी।

तड़ित की कीमत

पुराने जमाने में तड़ित को भगवान का अस्त्र माना जाता था, अतः उस समय ऐसा प्रश्न पूछना धर्म की निंदा करने का प्रतीक होता। लेकिन आज के युग में विद्युत-ऊर्जा क्रय-विक्रय की सामग्री हो गयी है; उसे नापते हैं, उसका मूल्यांकन करते हैं और इसीलिये तड़ित की कीमत जैसा प्रश्न अब निरर्थक नहीं रह गया है। तड़ित की कीमत का अर्थ है वज्रपात के लिये विद्युत-ऊर्जा की आवश्यक मात्रा को ज्ञात करना और यह हिसाब लगाना कि इतनी ही बिजली घर में खर्च करने पर आपको कितने पैसे देने पड़ते।

कलन इस प्रकार है: तड़ित में विसर्जित विद्युत का विभव करीब करोड़ वोल्ट होता है। इस स्थिति में धारा-बल अधिक से अधिक 200 हजार

[1] अधिक जीने वाली तड़ित भी होती हैं; उनका जीवनकाल सेकेंड के शतांश से दशांश तक लंबा हो सकता है। बहुगुनित तड़ितें भी होती हैं। जब एक तड़ित द्वारा बनाये गये पथ पर एक के बाद एक दसियों तड़ितें चल पड़ती हैं, तो इसे बहुगुनित तड़ित कहते हैं। इसका जीवन काल कुल मिला कर डेढ़ सेकेंड तक का हो सकता है।

— संपादक

ऐंपियर के बराबर हो सकता है (यह इस बात से ज्ञात किया जाता है कि बिजली गिरने पर तड़ित चालकों में बहने वाली विद्युत धारा के कारण लोहे का छड़ किस हद तक चुंबकीकृत हो जाता है)। वाट में शक्ति की माला ज्ञात करने के लिये वोल्ट व ऐंपियर की संख्याओं को आपस में गुणा करना पड़ता है; पर इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जबतक बिजली गिरती है, उसका विभव शून्य तक उतर आता है। अतः विसर्जित आवेश की शक्ति कलन करने के लिये औसत विभव अर्थात आरंभिक विभव का आधा लेना चाहिये। प्राप्त होता है:

$$\text{आवेश की शक्ति-}\ \frac{50\,000\,000 \times 200\,000}{2}\ \text{अर्थात्}\ 5\,000\,000\,000\,000$$

वाट या 5 अरब किलोवाट।

शून्यों की इतनी बड़ी कतार पाने के बाद स्वाभाविक ही है कि आप तड़ित का मूल्य व्यक्त करने के लिये कोई बड़ी संख्या पाने की उम्मीद कर रहे होंगे। पर किलोवाट घंटे में (जो आपके घर में लगा मीटर दिखाता है) ऊर्जा को व्यक्त करने के लिये समय को भी ध्यान में रखना होगा। इतनी बड़ी शक्ति का संचार सेकेंड के सिर्फ सहस्त्रांश तक ही जारी रहता है। इस नन्हे कालांतर में खर्च होगा:

$$\frac{5\,000\,000\,000}{3\,600 \times 1\,000} \approx 1400\ \text{किलोवाट-घंटे।}$$

उपभोगकर्ताओं को एक किलोवाट-घंटे के लिये 4 कोपेक अदा करने पड़ते हैं। इससे तड़ित की कीमत सरलतापूर्वक आँकी जा सकती है:

$$1400 \times 4 = 5600\ \text{कोपेक} = 56\ \text{रूबल।}$$

उत्तर आश्चर्यजनक है: तड़ित जिसकी ऊर्जा भारी तोप से दागे गये गोले की ऊर्जा से सौ गुनी अधिक है, बिजली-घर के अनुसार सिर्फ 56 रूबल कीमत रखती है।

जानना दिलचस्प होगा कि आधुनिक विद्युत प्राविधि द्वारा बनाया गया तड़ित प्राकृतिक तड़ित से कितनी दूर है। प्रयोगशालाओं में एक करोड़ वोल्टता की 15 m लंबी चिनगारी उत्पन्न की जा चुकी है। दूरी बहुत अधिक नहीं है...

कमरे में मुसलाधार वर्षा

घर में रबड़ की नली से छोटा-मोटा फव्वारा बहुत सरलतापूर्वक बनाया जा सकता है। उसका एक सिरा ऊँचाई पर रखी पानी से भरी बाल्टी में डुबा देते हैं या पानी के नल से जोड़ देते हैं। नली का दूसरा मुँह काफी छोटा होना चाहिये, ताकि पानी का फव्वारा महीन धार के रूप में निकले। पेंसिल के एक टुकड़े में से ग्रैफाइट की छड़ निकाल कर पेंसिल को नली में घुसा देने से काम चल जायेगा। फव्वारे को आसानी से नियंत्रित किया जा सके, इसके लिये नली के स्वतंत्र सिरे को औंधे शंकु में चित्र 103 की भाँति लगा देते हैं।

जब फव्वारा करीब आधा मीटर ऊँचा हो जाये, तो लाह की छड़ी या एबोनाइट की कंघी सिल्क पर रगड़ कर फव्वारे के समीप लायें। आप उसी क्षण एक विचित्र चीज देखेंगे: फव्वारा की अलग-अलग धारें मिल कर एक धार में परिणत हो जायेंगी, जो एक विशेष ध्वनि करती हुई पास रखी थाली में गिरने लगेगी। "यह ध्वनि आपको मुसलाधार वर्षा की याद दिलायेगी। इसमें कोई शक नहीं है, – भौतिकविद बायस इसके बारे में कहते हैं, – कि बादल गरजते वक्त वर्षा की बूंदें इसी कारण से बड़ी हो जाती हैं।" लाह की छड़ी हटा लीजिये, फव्वारा फुहारे में परिणत हो जायेगा और विशेष ध्वनि भंगुर धार की नर्म ध्वनि में बदल जायेगी।

जो इन बातों से अनभिज्ञ हैं, उनके सामने आप लाह की छड़ी जादूगर की तरह घुमा-घुमा कर खेल दिखा सकते हैं, मानों पानी के फव्वारे पर भी आप हुक्म चला सकते हैं।

फव्वारे पर विद्युत के आवेश के इस विचित्र प्रभाव का कारण समझना कठिन नहीं है। बूंदों का विद्युतन हो जाता है; छड़ी के निकट वाली बूंदें धनाविष्ट हो जाती हैं और दूर वाली ऋणाविष्ट। इसीलिये वे एक दूसरे की ओर आकर्षित हो कर एकाकार हो जाती हैं।

पानी की धार पर बिजली का प्रभाव और आसानी से देखा जा सकता है। एबोनाइट की कंघी बालों पर कुछेक बार फेर कर नल से गिरते पानी की पतली धार के पास लायें: धार टेढी हो कर कंघी की ओर झुक जाती है (चित्र 104)। इस संवृत्ति को समझाना कहीं जटिल काम है, बनिस्बत
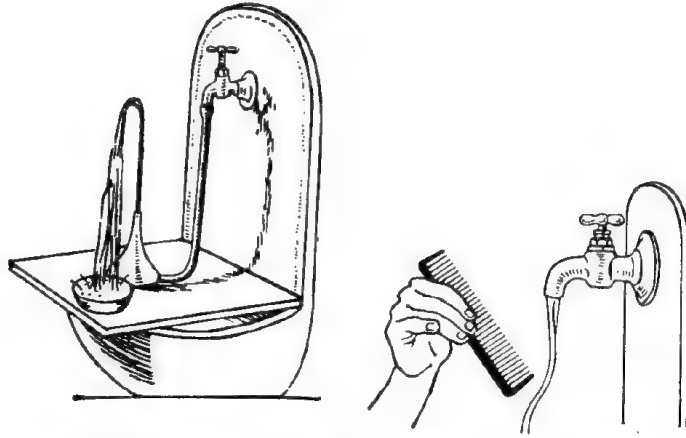
चित्र 103. मुसलाधार वर्षा का नन्हा नमूना।

चित्र 104. विद्युताविष्ट कंघी को निकट लाने पर पानी की धार विचलित हो जाती है।

की पिछली संवृत्ति को। इसका संबंध तलीय तनाव में परिवर्तन से है, जो विद्युतावेश के प्रभाव से होता है।

एक बात और बता दें कि घर्षण द्वारा विद्युत के आवेशों का आसानी से उत्पन्न हो जाना ही चक्कों को जोड़ने वाले गतिसंचारक फीते के विद्युतन का कारण होता है। उत्पादन की कुछ क्रियाओं में उससे बिजली की चिनगारियां निकलने लगती हैं और आग लगने का गंभीर खतरा बन जाता है। इसे रोकने के लिये फीतों पर चांदी की महीन परत चढ़ा देते हैं। चांदी बिजली का सुचालक है, अतः फीते पर आवेश का जमा होना संभव नही होता।

अध्याय 9

प्रकाश का परावर्तन और अपवर्तन. दृष्टि

पंचपक्षीय चित्र

फोटोग्राफी में एक निराली विधि है, – व्यक्ति को एक साथ पांच भिन्न पक्षों से दिखाना। चित्र 105 ऐसे ही एक फोटो के आधार पर बनाया गया है; आप इसमें एक व्यक्ति को पांच भिन्न मुद्राओं में देख सकते हैं। साधारण फोटो-चित्रों की तुलना में इनसे यह लाभ है कि ये व्यक्ति की विशेषताओं को पूरी तरह से दिखा सकते हैं। आप जानते हैं कि फोटोग्राफर एक बात का बहुत अधिक खयाल रखते हैं : चेहरे को कैसा घुमाव दिया जाये कि चित्र व्यक्ति की सभी विशेषताओं को दिखा सके। यहां एक ही बार में चेहरा कई पक्षों से चित्रित हो जाता है। इनमें से एक को चुन लिया जा सकता है, जो व्यक्ति की विशेषताओं को सबसे अच्छा व्यक्त करता हो।

इस तरह के चित्र कैसे प्राप्त किये जाते हैं? निस्संदेह, दर्पणों की सहायता से (चित्र 106)। व्यक्ति कैमरे A की ओर पीठ कर के बैठता
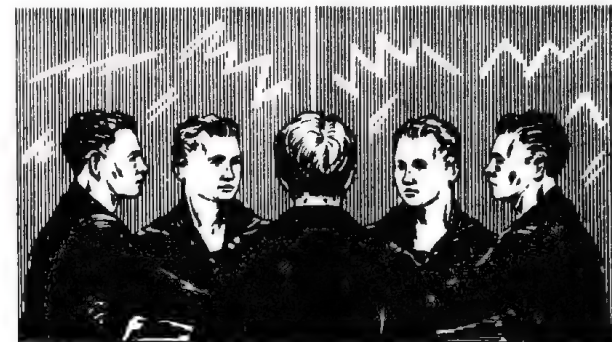
चित्र 105. एक ही व्यक्ति का एक साथ पांच ओर से खींचा गया फोटोचित्र।
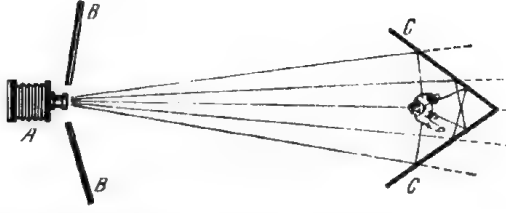
चित्र 106. पंचमुखी फोटोचित्र प्राप्त करने की विधि। आदमी को दर्पणों *CC* के बीच खड़ा किया जाता है।

है। उसका मुख दो उदग्र दर्पणों की ओर होता है। दर्पणों के बीच का कोण 360° का पाँचवा भाग, अर्थात् 72° के बराबर होता है। दर्पणों के इस जोड़े से व्यक्ति के चार बिंब मिल जायेंगे, जिनका मुख कैमरे की ओर भिन्न पक्षों से होगा। कैमरे से इन चारों बिंबों समेत व्यक्ति का चित्र खींचा जाता है। फोटो में दर्पण दिखायी नहीं देते (वे बिना फ्रेम के होते हैं)। कैमरा दर्पणों में प्रतिबिंबित न होने लगे, इसके लिये उसे दो पर्दों (*BB*) से ढक देते हैं। सिर्फ लेंस के सामने एक छेद छोड़ दिया जाता है।

बिंबों की संख्या दर्पणों के आपसी कोण पर निर्भर करती है: जितना ही वह कम होगा, बिंबों की संख्या उतनी ही अधिक होगी। यदि कोण $360^\circ/4 = 90^\circ$ हो, तो चार बिंब मिलते हैं। कोण के $360^\circ/6 = 60^\circ$ होने पर 6 बिंब प्राप्त होते हैं, और $360^\circ/8 = 45^\circ$ होने पर – आठ, आदि। पर अनेक बार परावर्तन होने से बने बिंब अस्पष्ट होते हैं, इसलिये पंच-पक्षीय चित्र से ही संतोष करना पड़ता है।

सौर चलित्र और सौर तापित्र

चलित्रों के वाष्पित्र को सौर ऊर्जा से गर्म करने का विचार आकर्षक है। पर आइये, थोड़ा हिसाब लगाते हैं। वातावरण की वाह्य (ऊपरी) सतहों के उस भाग पर, जो सूर्य-किरणों के अभिलंब होता है, प्रति वर्ग सेंटीमीटर पर प्रति मिनट प्राप्त होने वाली सौर-ऊर्जा की मात्रा सही-सही निर्धारित की जा चुकी है। यह मात्रा शायद स्थिर रहती है, इसलिये इसे "सौर-स्थिरांक" भी कहा जाता है। सौर स्थिरांक का मान प्रति वर्ग मीटर
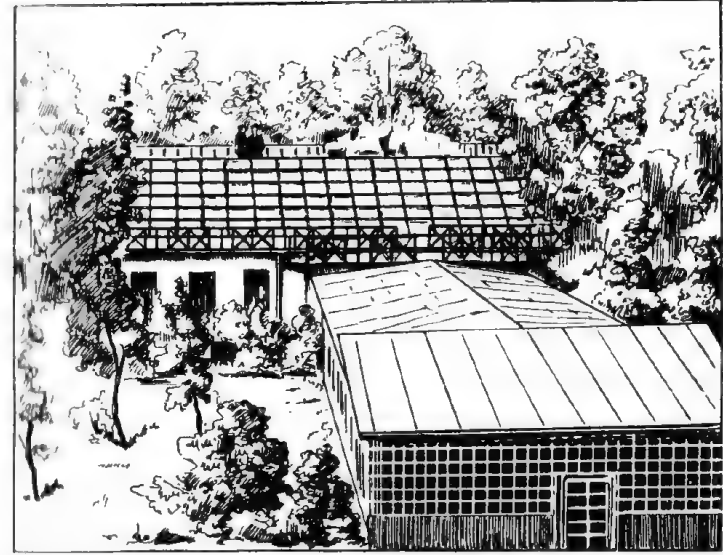
चित्र 107. तुर्कमेनिया में सूर्य-किरणों से पानी गर्म करने के लिये उपकरण

पर प्रति मिनट लगभग 2 छोटा कैलोरी (या ग्राम कैलोरी) है। सूरज द्वारा नियमित रूप से भेजी जाने वाली यह तापीय रसद पृथ्वी की सतह तक पूरी-पूरी नहीं पहुँचती: करीब आधा कैलोरी ताप वातावरण द्वारा अवशोषित हो जाता है। हम मान सकते हैं कि सूर्य-किरणों के अभिलंब पृथ्वी-तल के प्रत्येक वर्ग सेंटीमीटर को करीब 1.4 कैलोरी ताप प्राप्त होता है। यह 1 m^2 पर प्रति मिनट 14000 छोटे कैलोरी या 14 बड़े कैलोरी (किलो कैलोरी) के बराबर होगा और प्रति सकेंड – करीब $^1/_4$ बड़े कैलोरी के। चूंकि 1 बड़ा कैलोरी पूरी तरह से यांत्रिक कार्य में परिवर्तित हो कर 427 kgm ऊर्जा देता है, इसलिये पृथ्वी के 1 m^2 क्षेत्र पर उसके अभिलंब गिरती सूर्य-किरणों से प्रति सेकेंड 100 kgm से थोड़ी अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है। यह $1^1/_3$ अश्व-शक्ति से थोड़ी अधिक होगी।

सूर्य-किरणों की ऊर्जा इतना काम कर सकती है और वह भी सिर्फ अनुकूलतम परिस्थितियों में – अर्थात् जब किरणें तल के अभिलंब गिर रही हों
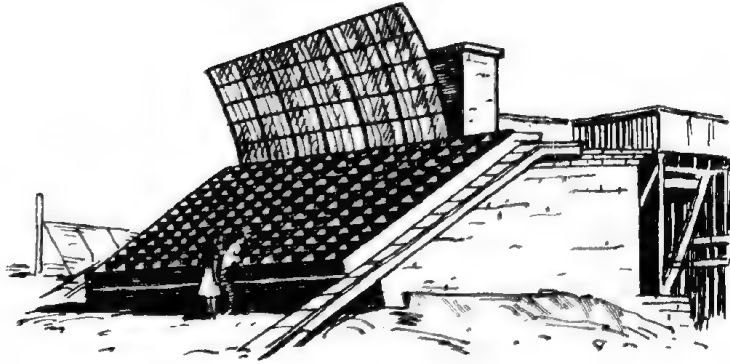
चित्र 108. तुर्कमेनिया में सूर्य चलित कोल्ड-स्टोर।

और प्राप्त ऊर्जा शत-प्रतिशत यांत्रिक ऊर्जा में परिणत की जा रही हो। पर चालकशक्ति के रूप में सूर्य का प्रत्यक्ष उपयोग करने के लिये अबतक के प्रयत्न ऐसी आदर्श परिस्थितियों से बहुत दूर रहे हैं: उनका दक्षता-गुणांक 5—6% से अधिक कभी नहीं हुआ है। विख्यात भौतिकविद् एब्बौट का सौर चलित्र अबतक कार्यान्वित योजनाओं की तुलना में सबसे अधिक दक्षता-गुणांक (15%) रखता है।

सूर्य-किरणों से यांत्रिक-कार्य की अपेक्षा सिर्फ गर्मी प्राप्त करना कहीं अधिक सरल है,—इस बात पर सोवियत संघ में विशेष ध्यान दिया गया है। यहाँ (समरकंद में) एक अखिल सोवियत सौर ऊर्जा संस्थान भी है, जहाँ विस्तृत खोज-कार्य चल रहे हैं। ताशकंत में धूप से पानी गर्म करने वाला एक हम्माम है, जिसका प्रतिदिन 70 व्यक्ति उपयोग कर सकते हैं। ताशकंत के ही एक घर के छत पर एक सौर-उपकरण है, जिसमें सूर्य-किरणों से गर्म होने वाले आठ क्वथित्र लगे है; इनमें से प्रत्येक 200 बाल्टी पानी गर्म कर सकता है। इससे घर के सभी क्वार्टरों का काम चल जाता है। सौर-तकनीशियनों के अनुसार गर्म पानी वर्ष में सात-आठ महीनों तक बिना नागा के मिला करेगा। अन्य चार-पाँच महीने गर्म पानी सिर्फ धूप उगे दिन मिलेगा। क्वथित्रों की औसत दक्षता अपेक्षाकृत अधिक है—करीब 47%। अधिकतम कार्य-दक्षता 61% तक प्राप्त की जा सकती है।

तुर्कमेनिया में एक सौर शीतित्र (गेलियो रेफ्रीजरेटर) का परीक्षण

किया गया था। परिवेशी हवा का तापक्रम छाया में 45° होने पर शीतित्र के कक्षों में प्रशीतक बैटरियों का तापक्रम शून्य से 2—3° नीचे होता था। औद्योगिक सौर-शीतित्र का यह पहला उदाहरण है।

सौर-ऊर्जा से गंधक-द्रवण (द्रवणांक 120°C) के प्रयोग भी उत्तम रहे हैं। सौर-ऊर्जा से काम करने वाले चंद और उपकरण बन चुके हैं, जिनकी याद दिला देना उपयुक्त होगा: कास्पियन व अराल सागरों पर पानी मीठा करने के लिये उपकरण, मध्य एशिया में पानी ऊपर खींचने वाले पंप, फल सुखाने वाले उपकरण आदि इस दिशा में की गयी खोजों के नये परिणाम हैं। रसोई बनाने वाले चूल्हे भी हैं, जिन पर खाना सूर्य-किरणों से पकता है। कृत्रिम रूप से कैद की गयी सूर्य-किरणों का उपयोग इतना तक ही सीमित नहीं रहेगा। मध्य एशिया, काकेशिया, क्रिम, वोल्गा व दक्षिणी उक्रैन के आर्थिक जीवन में सौर-ऊर्जा को अभी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है।

अदृश्य करने वाली टोपी

जादुई टोपी की कहानी अति प्राचीन काल से चली आ रही है: जो भी इसे पहनता है, अदृश्य हो जाता है। पुरानी किंवदंती को "रुसलान और लुदमीला" में सजीव करते हुए पुश्किन ने इस चमत्कारी टोपी का सुंदर वर्णन किया है:

"और मृदुला के मन आया,
खयालों की मनरोली में,
अटपट विचार आवारा—
लगती कैसी मैं टोपी में...
चोर्नामोर की टोपी लुदमीला,
आँखों पर, सीधा, तीरछा,
उलट रही, पुलट रही,
पहन गयी आखिर उल्टा।
फिर क्या? चमत्कार-युग का दान!
लुदमीला थी अंतर्धान।

15 567

सीधी की – और पहले जैसी
लुदमीला खड़ी दर्पण में ;
फिर उलटी – फिर गायब ;
उतार ली – दर्पण में ! "अच्छा !
ओ, मायावी ! भाग्य मेरा !
अब नहीं रहा कोई खतरा !"

अदृश्य होने की क्षमता बंदिनी लुदमीला के लिये अपनी रक्षा का एकमात्र साधन रह गयी थी। संतरी उसे देख नहीं पाते थे, सिर्फ उसके कार्यों से उसकी उपस्थिति का अनुमान लगा पाते थे :

हर समय हर जगह दिख जाते
चिह्न उसके करनामों के –
कभी पका-सा पीला फल
कलरवमय टहनी से ओझल,
कभी निर्झर की बूंदा-बूंदी
उड़ नहलाती हरी घास रौंदी ;
तब जान लेते महलवासी
जलपान कर रही सुवासी ...
जब विरल होता निशा-तम,
लुदमीला निर्झर को जाती,
स्नानरता शीतल जल छलकाती।
खुद कार्ले ने देखा एक प्रभात
अदृश्य हाथों से कैसे
छलकता था तब जल प्रपात।"

अनेक प्राचीन स्वप्न साकार हो चुके हैं, अनेक चमत्कार आज विज्ञान द्वारा दिखाये जा सकते हैं। पहाड़ों में सुरंगें बन रही हैं, आकाश की बिजली प्रयोगशालाओं में कैद की जा चुकी है, उड़न-खटोला आम बात है... पर क्या अदृश्यकारी टोपी का आविष्कार नहीं हो सकता? या कोई अन्य साधन नहीं ढूँढा जा सकता, जिससे हम अदृश्य हो सकें? यहाँ इसी समस्या पर विचार किया जायेगा।

अदृश्य आदमी

अंग्रेज लेखक वेल्स अपने उपन्यास "अदृश्य-आदमी" में पाठकों को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करते हैं कि अदृश्य बनना संभव है। उसका नायक (उपन्यासकार उसे "दुनिया के सबसे प्रतिभाशाली भौतिकविद्" के रूप में पेश करते हैं) मानवशरीर को अदृश्य बनाने की विधि ज्ञात कर लेता है। देखिये, अपने एक चिकित्सक मित्र को वह अपनी खोज के वैज्ञानिक आधार को किस प्रकार समझाता है :

"दृश्यमानता प्रकाश के साथ पिंडों की क्रिया पर निर्भर करती है। आप जानते हैं कि कोई भी पिंड या तो प्रकाश को अवशोषित करता है, या परावर्तित या अपवर्तित। यदि पिंड न तो प्रकाश को अवशोषित करता है, न परावर्तित या अपवर्तित, तो पिंड अदृश्य होगा। उदाहरण के लिये लाल डिब्बे को लीजिये ; वह दृश्यमान है, क्योंकि उसका रोगन प्रकाश का एक अंश अवशोषित कर लेता है और अन्य भाग को परावर्तित (प्रकीर्णित) कर देता है। यदि डिब्बा प्रकाश को बिल्कुल अवशोषित नहीं करता, उसे पूर्णतया परावर्तित कर देता, तो वह चांदी जैसा श्वेत और चमकदार होता। हीरे से बना डिब्बा प्रकाश को बहुत कम अवशोषित करता और उसकी पूर्ण सतह से प्रकाश का परावर्तन भी बहुत कम होता ; सिर्फ किनारियों के पास प्रकाश का थोड़ा परावर्तन व अपवर्तन होता, जिससे हमें डिब्बे का चमकदार प्रकाशीय 'अस्थिपंजर' दिखता। शीशे का डिब्बा कम चमकता और हीरे के डिब्बे जितनी स्पष्टता से दृष्टिगोचर नहीं होता, क्योंकि शीशा परावर्तन व अपवर्तन और भी कम करता है। यदि सफेद पारदर्शक काँच के टुकड़े को पानी में (या और अच्छा होगा यदि पानी से कुछ अधिक घने द्रव में) रखा जाये, तो वह लगभग पूरी तरह से गायब हो जायेगा, क्योंकि पानी में चलती प्रकाश-किरणें काँच से बहुत बहुत कम परावर्तित व अपवर्तित होती हैं। काँच वैसे ही अदृश्य हो जाता है, जैसे हवा में कार्बन डायक्साइड या उदजन (हाइड्रोजन) की फुहार। दोनों जगह एक ही कारण की भूमिका है।

– हाँ, – केंप (चिकित्सक) ने कहा, – ये बातें बहुत ही सरल हैं और हमारे युग में इन्हें स्कूल का बच्चा-बच्चा जानता है।

—एक और बात बता दूँ, जिसे स्कूल का हर बच्चा जानता है: यदि कांच को महीनी से पीस लिया जाये, तो हवा में उसकी दृष्टिगोचरता अधिक हो जाती है; वह श्वेत अपारदर्शक चूर्ण में परिणत हो जाता है। कारण यह है कि पीसने से काँच की परावर्तक व अपवर्तक सतहों की संख्या बढ जाती है। खिड़की में लगे शीशे की ऐसी दो सतहे हैं, पर चूर्ण में प्रकाश हर कण की कई सतहों से परावर्तित एंव अपवर्तित होता रहता है। इसके अतिरिक्त, चूर्ण में प्रकाश बहुत दूर तक नहीं जा सकता। पर यदि काँच के चूर्ण को पानी में डाल दिया जाये, तो वह गायब हो जाता है। पीसे हुए काँच और पानी के अपवर्तनांक लगभग समान होते हैं, इसलिये एक से दूसरे में प्रवेश करते वक्त प्रकाश का परावर्तन व अपवर्तन कम होता है।

कांच को लगभग उसके समान अपवर्तनांक वाले द्रव में रख कर आप उसे अदृश्य कर दे सकते हैं: **पारदर्शक वस्तु हमेशा अदृश्य हो जाती है, जब उसे उसके समान अपवर्तनांक वाले परिवेश में रखा जाता है।** काँच को हवा में भी अदृश्य किया जा सकता है; इसके लिये कुछ ज्यादा सोचने की आवश्यकता नहीं है: सिर्फ इतना करना होगा कि काँच का अपवर्तनांक हवा के अपवर्तनांक के बराबर हो जाये; इससे काँच से हवा में प्रवेश करते वक्त प्रकाश का न तो परावर्तन होगा, न अपवर्तन।[1]

[1] बिल्कुल पारदर्शक वस्तु को पूर्णतः अदृश्य बनाने के लिये उसे चारों ओर से ऐसी दीवारों द्वारा घेर देनी चाहिये, जो प्रकाश का समरूप प्रकीर्णन कर सके। पार्श्व के छेद से झाँकती आँख को वस्तु की सतह के हर बिंदु से ठीक उतना प्रकाश प्राप्त होगा, जितना वस्तु की अनुपस्थिति में होता: वस्तु की विद्यमानता दिखाने वाली कोई छाया या चमक नहीं रह जायेगी।

ऐसा एक प्रयोग आप भी कर सकते हैं। सफेद गत्ते को मोड़ कर चित्र 109 की भाँति आधे भीटर व्यास वाला एक शंकु बना लें और उससे कुछ ऊपर 25 कैंडिल-शक्ति का बल्ब जलने दें। अब नीचे से काँच का एक छड़ इस प्रकार घुसायें कि उसकी स्थिति यथासंभव उदग्र रहे। उदग्र स्थिति से थोड़ा भी इधर-उधर होने से छड़ अपने अक्ष पर काला और किनारों

—यह सब ठीक है,—कैंप ने कहा,—पर आदमी कोई काँच का तो नहीं बना है न।

—वह और भी पारदर्शक है।

—बकवास है!

—क्या यह एक वैज्ञानिक कह रहा है! आप क्या दस वर्षों में भौतिकी बिल्कुल ही भूल गये? कागज को लीजिये; उसके सफेद और अपारदर्शक होने का कारण वही है, जो पीसे हुए काँच के सफेद और अपारदर्शक होने का कारण है। सफेद कागज पर तेल मल दें। इससे रेशों के बीच का स्थान तेल से इस प्रकार भर जायेगा कि प्रकाश का परावर्तन व अपवर्तन सिर्फ सतह पर होने लगेगा—और कागज काँच की तरह पारदर्शक हो जायेगा। सिर्फ कागज के रेशे ही नहीं; कपड़े, ऊन, लकड़ी, हड्डियों, बालों, पेशियों,नाखून और स्नायु के रेशे भी पारदर्शक होते
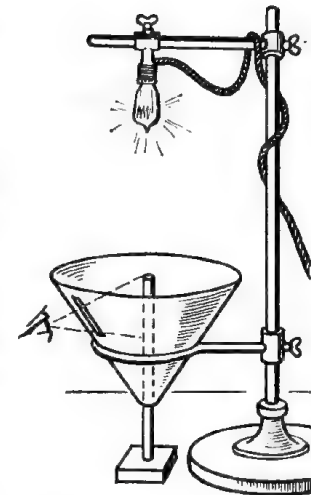
चित्र 109. कांच की अदृश्य छड़ी।

पर प्रकाशमान (या ठीक इसका उल्टा) नजर आने लगेगा। दोनों ही दृश्य छड़ को इधर या उधर हल्का झुकाव दे कर प्राप्त किये जा सकते हैं। थोड़ा घुमा-फिरा कर आप छड़ की वह स्थिति प्राप्त कर ले सकते हैं, जिसमें वह सब ओर से समरूपता के साथ प्रकाशित हो जाता है। अब यदि उसे पार्श्व की दरार से देखेंगे (उसकी लंबाई 1 cm से अधिक नहीं होनी चाहिये), तो छड़ **बिल्कुल गायब** हो जायेगा। छड़ और हवा की अपवर्तक क्षमतायें काफी भिन्न हैं, फिर भी उपरोक्त स्थिति में छड़ पूरी तरह अदृश्य हो जाता है।

तराशे हुए (फलकित) काँच के टुकड़े को अदृश्य बनाने की एक अन्य विधि है: उसे डिब्बे में डाल देते हैं, जिसकी भीतरी सतहें संदीप्त रोगन से पुती होती है।

हैं! और इन्हीं से तो आदमी बनता है। सिर्फ रक्त के लाल पदार्थ और बालों के काले रंजक (पिगमेंट) ही अपारदर्शक होते हैं और इतनी सी बात के कारण हम अदृश्य नहीं हो पाते!"

उपरोक्त बातों की सत्यता का प्रमाण है बिना बाल वाले रंजकहीन (आलबीनो) जंतु, जिनके तंतुओं में रंजक पदार्थ बिल्कुल अनुपस्थित रहते हैं। ऐसे जीव काफी हद तक पारदर्शक होते हैं। 1934 ई. में जेत्स्कोये सेलो (एक गाँव) में एक रंजकहीन मेढ़क मिला था। जीवविज्ञानी उसका वर्णन करते हैं: त्वचा और पेंशियों के तंतु पारदर्शक हैं; उनके पार भीतर की बनावटें और अस्थिपंजर साफ झलक रहे हैं... पेट की दीवार और भी पारदर्शक है — हृदय-संकोचन और आँतें साफ दिख रही हैं।"

वेल्स लिखित उपन्यास के नायक ने मानव-शरीर के तंतुओं और रंजक द्रव्यों को पारदर्शक बनाने की विधि ढूँढ़ ली और अपनी खोज का सफलतापूर्वक प्रयोग अपने ही शरीर पर कर लिया। अब देखें कि इस अदृश्य आदमी के साथ आगे क्या हुआ।

अदृश्य आदमी की शक्ति

"अदृश्य आदमी" के लेखक असाधारण निपुणता से सिद्ध करते हैं कि पारदर्शक व अदृश्य हो जाने पर आदमी लगभग असीम शक्ति का मालिक बन जाता है। वह कहीं भी अदृश्य पहुँच सकता है; कोई भी चीज उठा कर ले जा सकता है; अदृश्य होने के कारण वह हथियारबंद लोगों की पूरी भीड़ के साथ लड़ सकता है। सर्वसाधारण को कड़ी सजा की धमकी दे कर वह पूरे नगरवासियों को अपने अधीन कर लेता है। उसे कोई भी पकड़ नहीं सकता, उसे चोट नहीं पहुँचा सकता और वह सबों की खबर ले सकता है। लोग अपनी रक्षा के लिये कितनी भी सावधानी क्यों न बरतें, इस अदृश्य दुश्मन से बचना असंभव था। इस असाधारण शक्ति के कारण ही अंग्रेजी उपन्यास का नायक अपने शहर की जनता के बीच यह घोषणा करता है:

"आज से इस नगर में महारानी का शासन खत्म होता है! सेना-नायकों और पुलिस अफसरों को बता दें कि शहर मेरे अधीन है। आज का दिन नये युग के प्रथम वर्ष का प्रथम दिवस है; यह नये युग का आरंभ है और इसका नाम होगा अदृश्य युग। मैं अदृश्य-प्रथम हूँ! शुरू-शुरू में दया-भाव से शासन करूंगा। पहले दिन मात्र एक व्यक्ति को मृत्युदंड दे रहा हूँ, जिसका नाम है केंप। आज उसकी मृत्यु होगी। वह घर में बंद रहे या कहीं और छिप जाये, अंगरक्षकों के पहरे में रहे या फौलाद से अपने को ढक ले — अदृश्य मृत्यु उसकी ओर बढ़ रही है; वह बच नहीं सकेगा! वह अपनी रक्षा के सारे उपाय कर सकता है; इससे जनता पर मेरा प्रभाव ही बढ़ेगा। जिसे अपनी जान प्यारी हो, उसकी कोई सहायता न करे।"

अदृश्य को शुरू-शुरू काफी सफलता मिली। भयभीत नगरवासी बड़ी कठिनाई से सत्ता के सपने देखने वाले इस शत्रु पर विजय प्राप्त कर सके।

पारदर्शक प्रसाधन

इस विज्ञान-गल्प के भौतिकीय आधार सही हैं या नहीं? सही हैं। पारदर्शक परिवेश में कोई भी पारदर्शक वस्तु अदृश्य हो जा सकती है; परिवेश और वस्तु के अपवर्तनांकों में 0.05 तक का अंतर वस्तु के अदृश्य होने में बाधक नहीं बन सकता। अंग्रेज उपन्यासकार की कृति लिखी जाने के कोई दस साल बाद जर्मन शारीरविद् प्रो. श्पाल्टेगोल्ट्स इस विचार को व्यावहारिक रूप देने में सफल हुए। पर उनकी विधि से सिर्फ मृत अंगों को ही अदृश्य किया जा सकता है, जीवित शरीर को नहीं। पूरे जंतु या भिन्न मानव-अंगों के ऐसे पारदर्शक प्रसाधन अनेक संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं।

पारदर्शक प्रसाधन तैयार करने की प्रो. श्पाल्टेगोल्ट्स द्वारा आविष्कृत विधि (1911 में) इस प्रकार है: प्रसाधन के प्रश्वेतन और प्रक्षालन के बाद उसे सैलीसीलिक अम्ल के मेथिल ईथर से संतृप्त कर देते हैं (यह उच्च अपवर्तनांक वाला एक रंगहीन द्रव है)। इस प्रकार से तैयार किये गये चूहे, मछली या मानवीय अंग को उसी द्रव में डुबा कर रखते हैं।

स्पष्ट है कि पूर्णतया अदृश्य प्रसाधन तैयार करने का प्रयत्न नहीं किया जाता, अन्यथा शारीरविद् के लिये उसका कोई उपयोग नहीं रह जायेगा। पर उन्हें बिल्कुल अदृश्य भी किया जा सकता है।

यह बेशक वेल्स की जीवित आदमी को अदृश्य करने की कल्पना से बहुत दूर है, क्योंकि जीवित अंग के रेशों को बिना नष्ट किये पारदर्शक द्रव से संतृप्त करने की कोई विधि अबतक नहीं ज्ञात हो पायी है। इसके अतिरिक्त, प्रो श्पाल्टेगोल्ट्स के प्रसाधन सिर्फ पारदर्शक हैं, अदृश्य नहीं। इन प्रसाधनों के रेशे तभी तक अदृश्य रहते हैं, जबतक कि अनुकूल अपवर्तनांक वाले द्रव में डूबे रहते हैं। हवा में वे तभी अदृश्य हो सकेंगे, जब उनका अपवर्तनांक हवा के अपवर्तनांक के बराबर किया जायेगा; और यह कैसे किया जाये, अभी हम नहीं जानते।

पर मान लें कि कालांतर में ये दोनों बाधायें दूर कर ली जाती हैं और अंग्रेज उपन्यासकार का सपना सच हो जाता है। फिर क्या होगा?

वेल्स ने घटनाओं का वर्णन इतना सोच-समझ कर किया है कि आप जाने-अनजाने उन्हें सत्य मानने लगते हैं। लगता है कि साधारण लोगों के लिये अदृश्य आदमी सचमुच ही सर्वशक्तिमान होगा... पर यह सही नहीं है।

एक छोटी सी बात रह जाती है, जिस पर "अदृश्य आदमी" के लेखक ने ध्यान नहीं दिया। प्रश्न यह है कि –

क्या अदृश्य आदमी देख सकता है?

यदि वेल्स ने उपन्यास लिखने के पहले यह प्रश्न उठाया होता, तो अदृश्य आदमी की इतनी रोचक कहानी का जन्म ही नहीं होता...

अदृश्य आदमी की शक्ति के बारे में जो गलतफहमी है, इस प्रश्न से दूर हो जाती है। **अदृश्य आदमी अंधा होगा।**

उपन्यास का नायक अदृश्य क्यों है? इसलिये कि उसके शरीर के सभी अंग – यहाँ तक कि आँखें भी – पारदर्शक हैं और उनका अपवर्तनांक हवा के अपवर्तनांक के बराबर है।

अब आँखों की भूमिका पर गौर करें: उसका क्रिस्टलिक, उसकी काँचर (काँचवत) आर्द्रता और उसके अन्य भाग प्रकाश-किरणों को इस प्रकार अपवर्तित करते हैं कि रेटीना पर वाह्य वस्तुओं का बिंब बनने लगता है। पर यदि आँख और हवा के अपवर्तनांक समान हैं, तो अपवर्तन का एकमात्र कारण नष्ट हो जाता है। **समान अपवर्तनता** वाले एक परिवेश से दूसरे में प्रविष्ट होते वक्त किरणें अपने मार्ग की दिशा नहीं बदलतीं, और इसीलिये वे एक बिंदु पर नहीं मिल सकतीं। अदृश्य व्यक्ति की आँखों से

गुजरते वक्त किरणें कोई बाधा महसूस नहीं करेंगी; वे न तो अपने पथ से विचलित होंगी, न कहीं रुकेंगी (रंजक पदार्थ भी तो नहीं हैं![1])। इसीलिये वे चेतना में कोई बिंब भी नहीं प्रस्तुत करेंगी।

मतलब कि **अदृश्य आदमी कुछ भी नहीं देख सकता।** अदृश्य होने से जितने लाभ मिल सकते हैं, निरर्थक हो जाते हैं। सत्ता का सपना देखने वाला भीख मांगता हुआ राह टटोलता होता और लोग इससे अनभिज्ञ उसके पास से गुजरते रहते। सर्वशक्तिमान व्यक्ति की जगह वह बेसहारा और अपाहिज होता; आज्ञा देने की बजाय वह दया की याचना करता...[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेल्स द्वारा बताये गये तरीके से अदृश्य होने की समस्या को हल करना बेकार है। यदि इस तरीके से समस्या पूरी तरह हल हो भी गयी, तो इससे लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकता।

---

[1] जीव में कोई संवेदना उत्पन्न करने के लिये प्रकाश-किरणों को उसकी आँखों में किसी न किसी तरह का परिवर्तन अवश्य लाना पड़ता है। दूसरे शब्दों में, उन्हें एक नियत **कार्य** संपन्न करना पड़ता है। इसके लिये किरणों को आँख में कहीं पर **रुकना** पड़ेगा। पर बिल्कुल पारदर्शक आँखें किरणों को रोकने में असमर्थ रहेंगी, अन्यथा वे पारदर्शक नहीं होंगी। जिन जीवों के लिये आत्मरक्षा का साधन उनके शरीर की पारदर्शिता है, उनकी भी आँखें पूर्णतया पारदर्शक नहीं होतीं। "सागर की सतह के निकट, – विख्यात समुद्रवेत्ता मुर्रे लिखते हैं, – अधिकांश जीव पारदर्शक एवं रंगहीन होते हैं। जब उन्हें जाल से निकाला जाता है, उनकी उपस्थिति का पता **सिर्फ उनकी नन्ही काली आँखों** के कारण चलता है, क्योंकि उनके रक्त में हेमोग्लोबीन (रक्त-रंजक कण) भी नहीं होता; रक्त बिल्कुल पारदर्शक होता है।"

[2] यह भी संभव है कि उपन्यासकार ने जान-बूझ कर यह गलती की हो। विज्ञान-गल्प में वेल्स साहित्य-रचना के किन दाव-पेंचों का उपयोग करते हैं, यह सभी को ज्ञात है: वे अपनी कृति की त्रुटियों को यथार्थवादी विवरणों की भरमार से ढक दिया करते हैं। अपने विज्ञान-गल्पों के अमरीकी संस्करण के प्राक्कथन में वे साफ-साफ लिखते हैं: "जादू का मंत्र फूँक चुकने के बाद बाकी सभी चीजों को संभाव्य व दैनंदिन रूप में दिखाना चाहिये। भरोसा तर्क की शक्ति का नहीं, कला-सृजित भ्रम का करना चाहिये।"

रक्षी रंग

"अदृश्यकारी टोपी" की समस्या हल करने का एक और रास्ता है। वस्तु को इस प्रकार रंगा जा सकता है कि वह आँखों से दिखे नहीं। प्रकृति अपने जीवों की रक्षा के लिये, उन्हें शत्रुओं से छिपाने के लिये, उन्हें रक्षी रंग से सुसज्जित करती है। जीवन-संघर्ष में आत्म-रक्षा की यह विधि बहुत विस्तृत पैमाने पर प्रयुक्त होती है।

सैन्य-विद्या में जिसे सुरक्षा रंग की संज्ञा देते हैं, जीवविज्ञानी उसे डार्विन के जमाने से ही रक्षी या शरणदायक रंग कहते आ रहे हैं। जीव-जगत में ऐसी रक्षा के हजारों उदाहरण हैं; उन्हें आप हर कदम पर देख सकते हैं। मरुभूमि के जीवों का रंग अक्सर बालू जैसा पीला होता है। शेर हो या गिरगिट, मकड़ा हो या पक्षी, या कोई कीड़ा-मकोड़ा,—सब मरुभूमि के रंग में रंगे होते हैं। इसके विपरीत, उत्तर के हिमावृत्त स्थलों पर खतरनाक ध्रुवीय भालू से ले कर नन्ही आक चिड़िया तक का रंग सफेद होता है, जिसके कारण बर्फ की सफेद पृष्ठभूमि पर उन्हे देख पाना मुश्किल हो जाता है। पेड़ों की खाल में रहने वाले कीड़े-मकोड़ों का रंग खाल के रंग जैसा ही होता है।

कीड़े-मकोड़ों के संग्रहकर्ता अच्छी तरह जानते हैं कि प्रकृति-प्रदत्त रक्षी-रंग के कारण उन्हे आँखों से ढूँढ़ पाना कितना कठिन होता है। पैरों के पास ही घास में चीखते हरे टिड्डे को पकड़ने की कोशिश कीजिये,—पहले तो आप हरी पृष्ठभूमि पर उसे देख ही नहीं पायेंगे।

जलचर जीवों के साथ भी यही बात है। भूरे जल-घास में रहने वाले समुद्री जीवों का रंग भूरा होता है और लाल वनस्पति के क्षेत्र में विचरन करने वालों का रंग लाल होता है। मछलियों की चांदी सी चमकदार चोंइया भी रक्षी रंग का ही उदाहरण है। उनके शत्रु हवा में भी हैं और पानी में भी। ऊपर हिंसक पक्षी मंडराते रहते हैं और नीचे हिंसक जलचर उनकी ताक में घूमते रहतेहैं। चोंइया इन दोनों प्रकार के शत्रुओं से मछली को छिपाती है। बात यह है कि पानी की सतह सिर्फ ऊपर से ही दर्पण की तरह चमकदार नहीं दिखती। नीचे पानी के भीतर से वह कहीं अधिक चमकदार लगती है ("पूर्ण परावर्तन" के कारण)। सतह के इस धातुई रंग की पृष्ठभूमि से मछली की चोंइया को अलग करना कठिन हो जाता है। मेडूसा

और दूसरे पारदर्शक जलचरों—केंचुवे, सीप, शीर्षपादी आदि—ने "रक्षी रंग" के रूप में पूर्ण रंगहीनता और पारदर्शिता का चुनाव किया है। इसी कारणवश वे रंगहीन पारदर्शक परिवेश में दृष्टिगोचर नहीं हो पाते।

प्रकृति की ये "चालाकियां" मानवीय आविष्कारों से भी बढ़-चढ़ कर हैं। कई जीवों में परिवेश के अनुसार रंग बदलने की क्षमता होती है। बर्फ की पृष्ठभूमि पर अदृश्य प्रतीत होने वाले चांदी जैसे धवल रोयें से कोई लाभ नहीं होता, यदि गर्मियों में वह कत्थई नहीं हो जाता। बर्फ पिघलने के बाद निकली जमीन का रंग ऐसा ही होता है। रोंयेदार जीव-जंतुओं का रंग वसंत के आरंभ से कत्थई में परिणत होने लगता है और जाड़ों में पुनः सफेद हो जाता है।

सुरक्षा रंग

परिवेश के अनुसार अपना रंग बना कर छिपने की कला लोगों ने भी सीख ली है। पुरानी बटालियनों को तड़क-भड़क प्रदान करने वाली रंग-बिरंगी पोशाक का जमाना चला गया है: अब सैनिकों की पोशाक एकरंगी होती है, जिसे सुरक्षा की दृष्टि से अधिक उपयुक्त माना जाता है। आधुनिक युद्ध-पोतों का फौलादी भूरा रंग भी सुरक्षा रंग ही है; इसके कारण उन्हें सागर की पृष्ठभूमि पर देख पाना सरल नहीं होता।

युद्धकला में छद्मपोशी की नीति इसी श्रेणी में आती है: टैंक, किलेबंदी, जहाज आदि को छिपाना, कृत्रिम कुहासा छोड़ना—यह सब शत्रु को धोखा देने तथा उसकी निगाहों से छिपने के लिये ही किया जाता है। सैन्य-शिविरों को छिपाने के लिये विशेष जाली का उपयोग किया जाता है, जिसके छेदों में घास के गुच्छे लगे होते हैं; सैनिक अपनी पोशाक पर घास और टहनियां आदि लगा लिया करते हैं, आदि, आदि।

आधुनिक युद्ध-विमानन में भी सुरक्षा रंग के उपयोग का काफी प्रचलन है।

विमान की ऊपरी सतहें भूतल के रंगानुसार कत्थई, बैंगनी व गाढ़े हरे रंगों से रंगी जाती है। इससे विमान के ऊपर उड़ रहे दूसरे विमान में बैठा हुआ व्यक्ति नीचे वाले को भूतल की पृष्ठभूमि से अलग नहीं कर पाता।

जमीन पर खड़े संतरियों को धोखा देने के लिये विमान की निचली

सतहें आकाश के रंग के अनुसार हल्के नीले, हल्के गुलाबी या श्वेत रंग से रंगी जाती हैं। विमान पर ये रंग बड़े-बड़े धब्बों के रूप में होते हैं। 740 m की ऊँचाई पर स्थित विमान में ये धब्बे आकाश के रंग में घुल-मिल जाते हैं और विमान नीचे से नहीं दिखता। 3000 m की ऊँचाई पर ऐसा विमान जमीन वालों के लिये अदृश्य हो जाता है। रात में बम बरसाने वाले विमान काले रंग में पुते होते हैं।

किसी भी परिवेश में छिपने के लिये एक सामान्य सुरक्षा रंग है– दर्पण जैसी चमकीली सतह। इस रंग के कारण वस्तु परिवेश को प्रतिबिंबित करती हुए परिवेश के समान ही हो जाती है और उसे पहचानना कठिन हो जाता है। प्रथम विश्व-युद्ध में जर्मन विमानों पर ऐसा ही सुरक्षा-रंग चढ़ाया गया था : उनकी सतह चमकदार अलुमिनियम की थी, जो आकाश और बादलों को प्रतिबिंबित करती थी। ऐसे विमान को दूर से देख पाना बिलकुल संभव नहीं था। सिर्फ शोर के कारण उसकी उपस्थिति का पता चलता था।

प्रकृति और युद्धकला में अदृश्यकारी टोपी का सपना इसी तरह से साकार किया जाता है।

पानी में आदमी की आँख

मान लें कि आप पानी में जितनी देर चाहें, रह सकते हैं और अपनी आँखें खुली रख सकते हैं। आप कुछ देख सकेंगे या नहीं?

आप कहेंगे कि पानी पारदर्शक है, अतः उसमें उतना ही आराम से देखा जा सकता है, जितना हवा में। पर "अदृश्य आदमी" के अंधे होने की बात याद कीजिये। वह कुछ देखने में असमर्थ होता, क्योंकि उसकी आँखों और हवा के अपवर्तनांक समान होते। पानी में हमारे साथ लगभग वही बात होती, जो "अदृश्य आदमी" के साथ हवा में। निम्न आँकड़ों पर गौर करें,– बात स्पष्ट हो जायेगी। पानी का अपवर्तनांक 1.34 है। आदमी की आँख के पारदर्शक भागों के अपवर्तनांक इस प्रकार हैं :

श्रृंगल झिल्ली (कार्निया) और काँचर पिंड . . . 1.34
क्रिस्टलिक (क्रिस्टलीय) लेंस 1.43
जलीय आर्द्रता 1.34

चित्र 110. मछली की आँख का अनुच्छेद। क्रिस्टल गोल होता है और समंजन के लिये अपना रूप नहीं बदलता है। जैसा कि डैशदार पंक्ति द्वारा दिखाया गया है, वह रूप की बजाय आँख में अपनी स्थिति बदलता है।

आप देख रहे हैं कि क्रिस्टलिक का अपवर्तन-सामर्थ्य पानी से सिर्फ $^1/_{10}$ अंश अधिक है; अन्य भागों के लिये वह पानी **जैसा ही** है। इसीलिये पानी में स्थित आँख में किरणों का संसरण रेटीना के पीछे बहुत दूर स्थित बिंदु पर होता है, इसीलिये रेटिना पर बिंब अस्पष्ट होता है और कुछ देख पाना संभव नहीं होता। सिर्फ निकट-दृष्टि वाले लोग पानी में कुछ ठीक-ठाक देख सकते हैं।
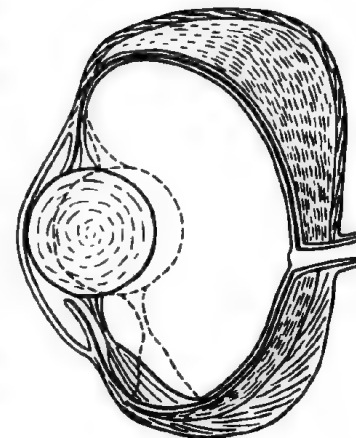
यदि आप जानना चाहते हैं कि पानी के भीतर वस्तुएं कैसी दिखती हैं, तो शक्तिशाली प्रकीर्णक (**उभयावतल**) शीशों का चश्मा पहन लें। इस स्थिति में किरणों का संसरण-बिंदु (नाभि) रेटीना के बहुत पीछे चला जायेगा और परिवेशी वस्तुएं उसे धुंधली और अस्पष्ट दिखने लगेंगी।

क्या आदमी शक्तिशाली अपवर्तक शीशों की सहायता से पानी में नहीं देख सकता?

चश्मे में प्रयुक्त साधारण शीशे यहाँ काम नहीं आयेंगे : साधारण काँच का अपवर्तनांक 1.5, अर्थात् पानी के अपवर्तनांक (1.34) से थोड़ा ही अधिक होता है। ऐसे चश्मे पानी में किरणों को बहुत कम अपवर्तित करेंगे। यहाँ विशेष प्रकार के काँच की आवश्यकता है, जिनकी अपवर्ती क्षमता बहुत अधिक होती है (तथाकथित फ्लिंटग्लास या भारी चकमकी शीशे का अपवर्तनांक लगभग दो के बराबर होता है)। ऐसे शीश के चश्मे से पानी में कुछ हद तक देखा जा सकता है (गोताखोरों द्वारा प्रयुक्त विशेष ऐनकों के बारे में आगे पढ़ें)।

इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि मछली का क्रिस्टलिक अत्यधिक

उत्तल क्यों होता है। वह वर्तुलाकार होता है और उसका अपवर्तनांक किसी भी ज्ञात जीव के क्रिस्टलिक से अधिक होता है। यदि मछली की आँखों में ऐसा क्रिस्टलिक नहीं होता, तो आँख उसके लिये बेकार होती; उसे अपना जीवन शक्तिशाली अपवर्तनता वाले परिवेश में व्यतीत करना पड़ता।

गोताखोर कैसे देखता है?

बहुत से लोग यह प्रश्न उठायेंगे: यदि पानी में हमारी आँखें प्रकाश किरणों को नहीं के बराबर अपवर्तित करती हैं, तो फिर गोताखोर वहाँ अपनी पोशाक के भीतर से कैसे कुछ देखते होंगे? उनके शिरस्त्राण भी उत्तल नहीं होते; उनमें लगा शीशा समतल होता है।... इसके अतिरिक्त, जूल वेर्न के उपन्यास में वर्णित "नाउटिलुस" नामक पनडुब्बी के यात्री जलगत दुनिया का दृश्य देख पाये होंगे या नहीं?

हमारे सामने एक नया प्रश्न है, पर इसका उत्तर देना कठिन नहीं है। उत्तर स्पष्ट हो जाएगा, यदि आप इस बात पर ध्यान देंगे कि जब हम बिना गोताखोर की पोशाक के डुबकी लगाते हैं, तो पानी हमारी आँखों के संसर्ग में होता है; गोताखोर के शिरस्त्राण (या पनडुब्बी "नाउटिलुस") में आँखें पानी से हवा और शीशे की परत द्वारा अलग कर दी जाती हैं। इससे काफी असर पड़ता है। प्रकाश-किरणें पानी से निकल कर शीशे से गुजरती हैं और फिर हवा में चलती हुई आँखों में प्रविष्ट होती हैं। जब किरणें पानी में चलती हुई समांतर-तलीय काँच पर गिरती हैं, तो प्रकाशिकी के नियमानुसार उनका अपवर्तन नहीं होता, उनकी दिशा नहीं बदलती। हवा से आँख में प्रविष्ट होते वक्त किरणें बेशक अपवर्तित होती हैं,— और आँख इन परिस्थितियों में ठीक उसी प्रकार काम करती है, जैसे पानी के बाहर हवा में। हमें चक्कर में डालने वाले विरोधाभास का रहस्य यही है। इन बातों का एक सुंदर उदाहरण पेश किया जा सकता है कि शीशे के हौज में तैरती मछलियाँ हमें बहुत अच्छी तरह से दिखती हैं।

काँच के लेंस पानी में

आपने कभी यह सरल प्रयोग करने का प्रयत्न किया है: पानी में उभयोत्तल ("विशालक") शीशे को पानी में डुबा कर डूबी वस्तुओं को

देखने की कोशिश कीजिये,— परिणाम से आप चकित रह जाएँगे: विशालक शीशा विशाल नहीं करता! लघ्वक (उभयावतल) शीशा पानी में डुबाइये, —पता चलेगा कि वह वस्तुओं को छोटी नहीं करता। यदि आप यही प्रयोग पानी के साथ नहीं, वनस्पति तेल के साथ करेंगे, जिसका अपवर्तनांक शीशे से अधिक होता है, तो उभयोत्तल शीशा वस्तुओं को छोटी कर देगा और उभयावतल शीशा — बड़ी!

पर यदि आप प्रकाश अपवर्तन के नियमों को स्मरण करें, तो चमत्कार चमत्कार नहीं रह जाएगा। उभयोत्तल लेंस हवा में वस्तुओं को बड़ा दिखाता है, क्योंकि काँच प्रकाश को अधिक अपवर्तित करता है, बनिस्बत कि उसकी परिवेशी हवा। पर काँच और शीशे की अपवर्तक क्षमतायें लगभग समान हैं; इसीलिये पानी से शीशे में प्रवेश करते वक्त किरणें अपने पथ से अधिक विचलित नहीं होतीं। यही कारण है कि विशालक शीशा हवा की अपेक्षा पानी में कम बड़ा करता है और लघ्वक शीशा — कम छोटा।

चित्र 111. डुबकी लगाने वालों के चश्मे में खोखले समतल-नतोदर वीक्ष लगाये जाते हैं। किरण MN विचलित होती हुई पथ $MNOP$ पर सफर करती है। वीक्ष के भीतर वह आपतन बिंदु के अभिलंब से दूर होने लगती है और वीक्ष के बाहर उसके (अर्थात् OR के) निकट आने लगती है। इसीलिये वीक्ष विशालक की तरह काम करता है।

वनस्पति तेल किरणों को काँच की अपेक्षा अधिक अपवर्तित करता है, और इसीलिये उसमें "विशालक" शीशा छोटा दिखाने लगता है और "लघ्वक" शीशा बड़ा दिखाने लगता है। खोखले (या हवाई) लेंस भी पानी में इस प्रकार काम करते हैं: अवतल लेंस बड़ा करते हैं और उत्तल — छोटा। डुबकी लगाने वालों का चश्मा ऐसे ही खोखले लेंसो का बना होता है (चित्र 111)।

अनुभवहीन तैराक

अनुभवहीन तैराकों की जान कभी-कभी खतरे में पड़ जाती है, क्योंकि वे अपवर्तन-नियम के एक रोचक निष्कर्ष को भूल जाते हैं: अपवर्तन पानी

चित्र 112. पानी के गिलास में स्थित चम्मच की आकृति टूटी सी दिखती है।

में डुबी वस्तु को उनकी वास्तविक स्थिति से कुछ ऊपर उठा कर दिखाता है। पोखर, नदी या किसी भी जलाशय का तल ऊपर से देखने पर उसकी वास्तविक गहराई से एक तिहाई कम गहरा लगता है, अर्थात् तल इतना ऊपर उभरा हुआ प्रतीत होता है। इस छद्म गहराई का भरोसा कर के ही लोग अपनी स्थिति खतरनाक बना लेते हैं। यह बात विशेषकर बच्चों और छोटे कद के लोगों को जाननी चाहिये, जिनके लिये गहराई के अनुमान में थोड़ी भूल भी घातक सिद्ध हो सकती है।

इस भ्रम का कारण प्रकाश किरणों का अपवर्तन है। प्रकाशिकी के जिस नियम के कारण पानी में आधा डूबा हुआ चम्मच टूटा सा लगता है (चित्र 112), उसी नियम के कारण तल भी उभरा हुआ लगता है।

आप स्वयं यह देख सकते हैं।

अपने मित्र को टबुल से कुछ दूर बैठा लीजिये, ताकि वह सामने रखी कटोरी की पेंदी न देख सके। कटोरी में एक सिक्का डाल दें, जाहिर है कि आपका मित्र उसे नहीं देख सकेगा; कटोरी की दीवारें सिक्के को छिपा लेंगी। अब अपने मित्र से अनुरोध करें कि वह स्थिर बैठा रहे, अपना सिर इधर-उधर न करे। कटोरी में धीरे-धीरे पानी ढालिये। आपके मित्र को सिक्का दिखने लगेगा! पिचकारी से कटोरी का पानी निकाल लीजिये,– कटोरी की पेंदी सिक्का समेत नीचे उतर आएगी और उनका दिखना बंद हो जायेगा (चित्र 113)।

इस घटना को चित्र 114 द्वारा समझाया गया है। अवलोकक की आँख बिंदु A पर है। वहाँ से उसे पेंदी का भाग m ऊपर उठा हुआ लगता

चित्र 113. कटोरी में पड़े सिक्के के साथ प्रयोग।

है: सिक्के से चलती प्रकाश-किरणें पानी से हवा में प्रविष्ट होते वक्त अपने पथ से विचलित हो जाती हैं और आँख A तक पहुँचती हैं; आँख सिक्के को इन रेखाओं की सीध में m से थोड़ा ऊपर देखती है। किरणें अपने पथ से जितना ही अधिक विचलित होंगी, सिक्का उतना ही ऊपर उठा हुआ लगेगा। इसलिये नाव में से देखने पर सर्वत्र समान गहराई वाले पोखर का तल नाव के ठीक नीचे अधिक गहरा लगता है और जैसे-जैसे दृष्टि दूर होती जाती है, पोखर की गहराई कम होती दिखती है।

चित्र 114. पिछले चित्र वाले प्रयोग में सिक्का अपने स्थान से उठा हुआ क्यों लगता है।

इस प्रकार, पोखर का तल नाव में से देखने पर अवतल लगता है। पर यदि आप डुबकी लगा कर पोखर के तल से उस पर लगे पुल को देखेंगे, तो वह हमें उत्तल प्रतीत होगा, जैसा कि चित्र 115 में दिखाया गया है ऐसे फोटो-चित्र प्राप्त करने की विधि आगे बतायी जायेगी।

इस स्थिति में किरणें अल्प अपवर्तक परिवेश (हवा) से अधिक अपवर्तक परिवेश (पानी) में प्रवेश करती हैं, इसीलिये चित्र उल्टा मिलता है। इन्हीं कारणों से शीशे के हौज में तैरती मछली को आदमी उत्तल प्रतीत होते होंगे। मछलियों को दुनिया कैसी दिखती होगी, इसके बारे में हम आगे विस्तारपूर्वक बतायेंगे।

16–567
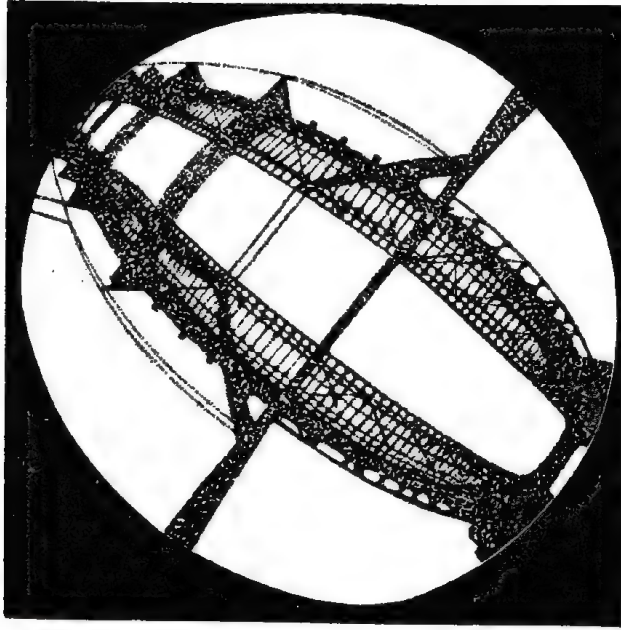
चित्र 115. रेलगाड़ी के लिये नदी पर बना हुआ पुल पानी के भीतर से ऐसा ही दिखता है (प्रो. वुड के फोटोचित्र से)।

अदृश्य सुई
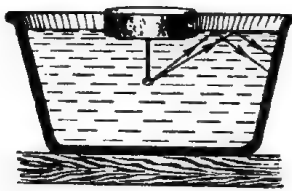
चित्र 116. पानी में अदृश्य हो जाने वाली सुई।

काग की गोल चक्की के बीचों-बीच सुई या पिन चुभा कर पानी की सतह पर उलट दें। यदि काग बहुत अधिक चौड़ा नहीं है और पिन पर्याप्त लंबा है, तो सिर झुकाने पर पिन को पानी की सतह के पार से दिखनी चाहिये। लेकिन आप जितनी मर्जी सिर झुका सकते हैं, वह नहीं दिखेगी (चित्र 116).

पिन से चलती प्रकाश किरणें हमारी आंखों तक क्यों नहीं पहुँचतीं? क्योंकि उनके साथ वही होता है, जिसे भौतिकविद "पूर्ण आंतरिक परावर्तन" कहते हैं।
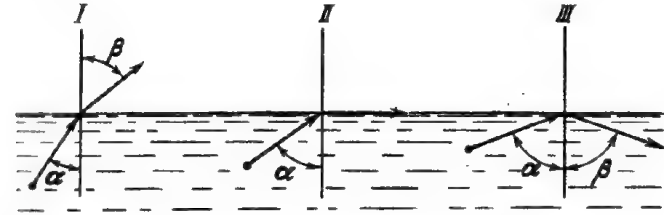
चित्र 117. पानी से हवा में प्रवेश करते वक्त किरण के अपवर्तन की विभिन्न स्थितियां। स्थिति II में किरण आपतन-बिंदु पर लंब के साथ चरम कोण बनाती हुई गिरती है और इसीलिये पानी से निकल कर पानी की सतह पर फिसलती हुई निकलती है। चित्र III में पूर्ण आंतरिक परावर्तन की स्थिति दिखायी गयी है।

इस संवृत्ति की याद दिला दूँ।

चित्र 117 में आप पानी से हवा की ओर (या किसी भी अधिक अपवर्तक परिवेश से अल्प अपवर्तक परिवेश की ओर) अग्रसर किरण के भिन्न संभव पथों को देख रहे हैं। जो जाने का पथ है, वही आने का भी पथ हो सकता है। जब किरणें **हवा से पानी में** प्रवेश करती हैं, तो वे आपतन बिन्दु पर लंब की ओर झुकती हैं। उदाहरणार्थ, यदि पानी पर गिरती किरण आपतन-तल के लंब के साथ β का कोण बनाती हैं और पानी के भीतर उस लंब के साथ α का कोण बनाती हैं, तो α कम होगा β से।

पर यदि आपतित किरण पानी की सतह पर फिसलती हुई आपतन-लंब के साथ समकोण बनाने लगती है, तब क्या होता है? वह पानी में समकोण से कम (करीब $48^1/_2$ डिग्री) का कोण बनाती हुई प्रवेश करती है। किरण पानी में इस प्रकार नहीं प्रवेश कर सकती कि पानी के भीतर वह आपतन-लंब के साथ 48.5 डिग्री से अधिक का कोण बना सके। यह पानी के लिये "चरम" कोण है। इन जटिल संबंधों को अभी ही अच्छी तरह स्पष्ट कर लेना चाहिये ताकि आगे चलकर अपवर्तन-नियम के रोचक व आश्चर्यजनक निष्कर्षों को समझने में कठिनाई न हो।

उपरोक्त बातों से पता चलता है कि प्रकाश-किरणें पानी पर किसी भी दिशा से क्यों न गिरें; **पानी के भीतर** दब कर वे एक संकीर्ण शंकु बनाने लगती हैं, जिसका कोण $48^1/_2 + 48^1/_2 = 97°$ होता है। अब उल्टी दिशा

16*
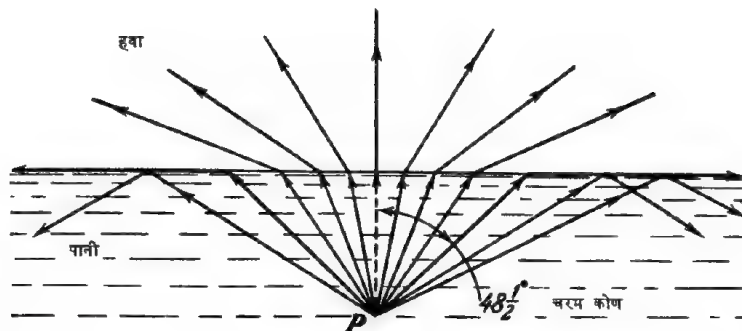
चित्र 118. बिंदु P से निकलती किरणों का आपतन कोण जब चरम कोण (पानी के लिये – $48^1/_2$°) से अधिक हो जाता है, वे पानी से बाहर नहीं निकल पातीं; भीतर ही भीतर पानी की सतह से पूर्णतया परावर्तित हो जाती हैं।

में, अर्थात् पानी से हवा की ओर चलती किरणों का पथ देखें (चित्र 118)। प्रकाशिकी के नियम कहते हैं कि पथ वे ही रहेंगे और उपरोक्त 97 डिग्री वाले संकीर्ण शंकु के भीतर चलने वाली किरणें पानी से बाहर निकलने में सफल हो जाएंगी; हवा में वे 180° कोण वाले विस्तृत व्योम में वितरित हो कर भिन्न कोणों पर सफर कर सकेंगी।

पर पानी में उक्त शंकु से बाहर की किरणें कहां जायेंगी? ज्ञात होता है, कि **वे पानी से बाहर बिल्कुल नहीं निकलतीं, वे भीतर ही भीतर उसकी सतह से दर्पण की** तरह परावर्तित हो जाती हैं। कोई भी जलगत किरण जब पानी की सतह से "चरम" कोण (अर्थात् $48/^1_2$ डिग्री) से अधिक का कोण बनाती हुई मिलती है, तो उसका अपवर्तन नहीं होता; वह परावर्तित हो जाती है। इसी को भौतिकविद् "पूर्ण आंतरिक परावर्तन" की संज्ञा देते हैं।[1]

[1] इस स्थिति में परावर्तन को **पूर्ण** कहा जाता है, क्योंकि यहां सभी किरणें परावर्तित हो जाती हैं। यह काम अच्छा से अच्छा दर्पण भी नहीं कर सकता। पालिश किये हुए चांदी या मैग्नेशियम का दर्पण भी सभी किरणों को परावर्तित नहीं करता; वह उनके एक **अंश** को परावर्तित करता है और बाकि को अवशोषित कर लेता है। अतः उपरोक्त स्थिति में पानी आदर्श दर्पण की तरह काम करता है।
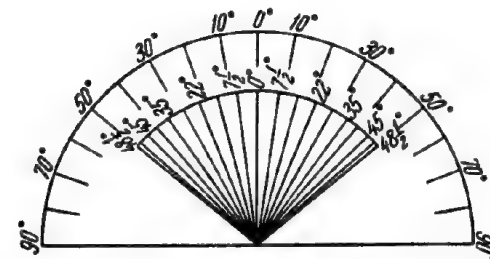
चित्र 119. वाह्य दुनिया में 180° का कोण बनाने वाला चाप पनडुब्बी प्रेक्षक की आंखों पर 97° तक का ही कोण बना सकता है। चाप का भाग आकाश के शिरोबिंदु से जितना ही दूर होगा, प्रेक्षक को वह उतना ही छोटा प्रतीत होगा।

यदि मछलियां भौतिकी का अध्ययन करतीं, तो उनके लिये प्रकाशिकी का मुख्य परिच्छेद "आंतरिक परावर्तन" ही होता, क्योंकि उनकी जलगत दृष्टि में वह मुख्य भूमिका निभाता है।

बहुत सी मछलियां चांदी की तरह सफेद होती हैं, – इस बात का संबंध भी संभवत: जलगत दृष्टि की विशेषताओं के साथ जुड़ा हुआ है। जीवविज्ञानियों के अनुसार ऐसा रंग उनके ऊपर फैली जलीय सतह के रंग के साथ समंजन का परिणाम है: **नीचे** से देखने पर पानी की सतह "पूर्ण आंतरिक परावर्तन" के कारण दर्पण सी चमकदार लगती है और ऐसी पृष्ठभूमि पर चांदी सी धवल मछलियों को देख पाना संभव नहीं होता। जलचर हिंसकों से रक्षा का यह अच्छा साधन है।

पानी में से वाह्य जगत

बहुत से लोगों को संदेह भी नहीं होता होगा कि पानी में से देखने पर बाहरी दुनिया कितनी परिवर्तित लगेगी।

मान लें कि आप डुबकी लगा कर बैठे हैं और पानी की चादर के नीचे से ऊपर की दुनिया का अवलोकन कर रहे हैं। ठीक सर के ऊपर

स्थित बादलों के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होगा: उदग्र आती किरण अपवर्तित नहीं होती। पर अन्य सभी वस्तुएं, जिनसे चलती किरणें पानी की सतह के साथ समकोण से कम का कोण बनाती हैं, विकृत दिखेंगी: वे ऊंचाई में सिकुड़ी हुई लगेंगी, मानो उन्हें ऊपर से कस कर दबा दिया गया हो। ऊंचाई में उतनी ही अधिक कमी होगी, जितना कम पानी की सतह के साथ उनसे निकली किरणों का कोण होगा। कारण समझना कठिन नहीं है: पानी के ऊपर दिखने वाली पूरी दुनिया को पानी के भीतर एक संकीर्ण शंकु में समा जाना है: 180 डिग्री को दब कर लगभग दुगुना छोटा (97° तक) हो जाना है और इसीलिये बिंबों की विकृति अवश्यंभावी है। जिन वस्तुओं से निकली किरणें पानी की सतह के साथ 10° का कोण बनाती हैं, उनका बिंब इतना पिचक जाता है कि उन्हें देख पाना संभव नहीं होता। पर इससे भी अधिक विस्मित होंगे आप जल की सतह के दृश्य से: वह समतल नहीं, शंकु के आकार की दिखेगी! आप को लगेगा कि आप एक शंकु में उसके पेंदे पर बैठे हैं; शंकु की दीवारें आपस में समकोण से कुछ अधिक (97°) का कोण बनाती हुई दूर अपसृत होती जाएंगी। इस शंकु की ऊपरी गोल किनारी लाल, पीले, हरे, नीले और बैंगनी छल्लों से घिरी होगी। क्यों? सूरज का श्वेत रंग भिन्न रंगो वाली किरणों के मिश्रण से बनता है; हर प्रकार की किरण का अपना अपवर्तनांक होता है और अपना "चरम कोण" होता है। परिणाम यह होता है कि पानी के नीचे से देखने पर बाहर की वस्तुएं इन्द्रधनुषी रंगो की पट्टियों से घिरी हुई नजर आती हैं।

यदि ऊपर की सारी दुनिया इस शंकु में ही सिमट आती है, तो शंकु के घेरे से बाहर क्या दिखता है? वहाँ पानी की चमकदार सतह होती है, जिसमें दर्पण की तरह **जलगत** वस्तुएं परावर्तित होती हैं।

जिन वस्तुओं का एक भाग पानी में डूबा होता है और दूसरा भाग पानी से ऊपर होता है, उनका रूप और भी असाधारण प्रतीत होता है। मान लें कि नदी में जल-स्तर मापक स्तंभ गड़ा हुआ है (चित्र 120)। पानी के भीतर बिंदु A पर स्थित अवलोकक को क्या दिखेगा? उसके द्वारा अवलोकित 360 डिग्री के व्योम को अलग-अलग हिस्सों में बाँट लेते हैं और हर हिस्से को अलग-अलग देखते हैं। कोण 1 की सीमा में उसे नदी का तल दिखायी देगा (यदि वहाँ पर्याप्त प्रकाश है)। कोण 2 में वह स्तंभ का जलगत भाग बिना किसी परिवर्तन या विकृति के देखेगा। कोण 3 में उसे स्तंभ के उसी भाग का परावर्तन दिखेगा, अर्थात् उसे स्तंभ के जलगत भाग का उल्टा बिंब दिखेगा ("पूर्ण आंतरिक परावर्तन" के बारे में जो कुछ कहा गया है, यहाँ स्मरण करें)। इसके ऊपर अवलोकक स्तंभ का ऊपरी भाग देखेगा; पर यह भाग निचले भाग से जुड़ा हुआ नहीं, कुछ ऊपर नजर आयेगा, मानो वह टूट कर अलग हो गया है। जाहिर है कि अवलोकक इसे उसी स्तंभ का भाग मानने को तैयार नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, स्तंभ का यह भाग ऊपर से दबा हुआ लगेगा; जैसे-जैसे आप निगाह नीचे लायेंगे, स्तंभ पर बने निशान एक दूसरे के करीब आते जायेंगे। बाढ़ में डूबे हुए तटवर्ती वृक्ष का पानी के भीतर से दृश्य वैसा ही होगा, जैसा चित्र 121 में दिखाया गया है।
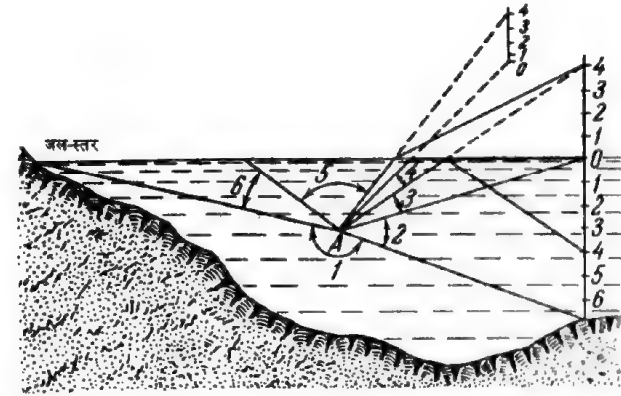
चित्र 120. पानी का स्तर नापने वाला डंडा पानी के भीतर से कैसा दिखता है। आँख बिंदु A पर है। कोण 2 में डंडे का डूबा हुआ धुंधला भाग दिखता है। कोण 3 में इसी भाग का बिंब दिखता है, जो पानी की भीतरी सतह पर किरणों के परावर्तन के कारण बनता है। इससे थोड़ा ऊपर डंडे का पानी से बाहर वाला भाग दिखता है; वह डंडे से टूट कर अलग हो गया सा प्रतीत होता है। कोण 4 में तली परावर्तित होती है। कोण 5 शंक्वाकार नली के रूप में पानी से बाहर की दुनिया दिखाता है। कोण 6 में पानी की निचली सतह से परावर्तित होता हुआ नदी का तल दिखता है। कोण 1 में तल का धुंधला रूप दिखता है।

यदि स्तंभ की जगह आदमी होता, तो वह चित्र 122 की तरह दिखता। मछलियों को पानी में नहाते लोग इसी रूप में नजर आते हैं! छीछले पानी में चलते वक्त उनके लिये हम एक की बजाय दो हो जाते हैं: ऊपरी भाग बिना पैरों का होता है और निचला भाग – बिना सर का, लेकिन चार पैरों वाला! जब हम जलगत अवलोकक से दूर होते हैं, तो हमारे शरीर का ऊपरी भाग निचले भाग के साथ कस कर दबने लगता है, छोटा होता जाता है; एक विशेष दूरी पर धड़ बिल्कुल गायब हो जाता है, – अकेला सर हिलता-डुलता नजर आता है।

इन असाधारण निष्कर्षों की सत्यता प्रत्यक्ष प्रयोग द्वारा जाँची जा सकती है या नहीं? पानी में डुबकी लगाने पर हम कुछ अधिक नहीं देख पाते। यदि पानी में आँख खुला रखने का अभ्यास भी कर लें, तो अधिक लाभ नहीं होगा। पहली बात तो यह है कि उन चंद सेकेंडों में, जितनी देर तक हम साँस रोक सकते हैं, सतह पर उत्पन्न तरंगें शांत नहीं हो पातीं और तरंगमान सतह के पार कोई चीज स्पष्ट देखना संभव नहीं होता। दूसरे, जैसा कि हम पहले समझा चुके हैं, पानी का अपवर्तनांक आँख के पारदर्शक भागों के अपवर्तनांक से अधिक भिन्न नहीं होता; इसीलिये रेटीना पर बहुत ही अस्पष्ट बिंब बनते हैं। परिवेश धुंधला और कुहासा से भरा हुआ दिखेगा (पृ. 237)। गोताखोर के शिरस्त्राण या पनडुब्बी की शीशा लगी खिड़की से देखने पर भी इष्ट फल प्राप्त नहीं होता। इन परिस्थितियों में, – जैसा कि पहले समझाया जा चुका है, – अवलोकक पानी के भीतर रहता है, पर "जलगत दृष्टि" नहीं प्राप्त कर सकता: उसकी आँखों तक पहुँचने के पहले प्रकाश-किरणें शीशा पार करके पुनः हवा में प्रविष्ट हो जाती हैं और इसीलिये उनका विपरीत अपवर्तन हो जाता है। इसके कारण किरणों की दिशा पानी में प्रविष्ट होने के पहले वाली दिशा जैसी हो जाती है, या उनकी दिशा कुछ बदल जाती है। कुछ भी हो, उनकी दिशा वह नहीं रह जाती, जो पानी में थी। यहीं कारण है कि पनडुब्बियों की खिड़की से आप "जलगत दृष्टि" का सही अंदाजा नहीं लगा सकते।

पर पानी के नीचे से दुनिया कैसी दिखती है, यह जानने के लिये स्वयं डुबकी लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। "जलगत दृष्टि" की परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिये विशेष फोटोकैमरे की सहायता

चित्र 121. पानी के नीचे से आधा डूबे हुए वृक्ष का दृश्य (तुलना करें चित्र 120 से)।
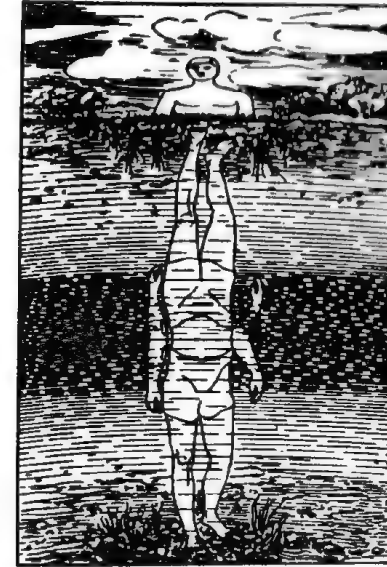
चित्र 122. पानी के भीतर से देखने पर छाती भर पानी में खड़े व्यक्ति की आकृति (तुलना करें चित्र 120 से)।

ली जा सकती है, जिसके भीतर पानी भरा होता है, इसमें लेंस की जगह धातु का पत्तर लगा होता है। प्रकाश पत्तर में बने रंध्र से भीतर प्रविष्ट होता है। स्पष्ट है कि यदि रंध्र और प्रकाश-संवेदी परत तक का व्योम पानी से भरा होगा, तो बाह्य दुनिया का चित्र वैसा ही मिलेगा, जैसा वह जलगत अवलोकक को दिखेगा। अमरीकी भौतिकविद् प्रो. वुड ने इसी विधि से अत्यंत दिलचस्प फोटोचित्र प्राप्त किये, जिनमें से एक चित्र 115 में दिखाया गया है। जलगत अवलोकक को जलोपरी वस्तुएं बिगड़े रूप में दिखती हैं (वुड द्वारा प्राप्त फोटोचित्र में सीधे रेल-पथ मेहराब की तरह मुड़े हुए हैं),— इसका कारण भी हम तभी बता चुके हैं, जब पोखर के समतल पेंदे के अवतलीय रूप को समझा रहे थे (पृ. 241)।

जलगत अवलोकक को दुनिया कैसी दिखती है, इससे प्रत्यक्ष परिचय पाने की एक और विधि है: शांत व स्वच्छ जल वाले पोखर में दर्पण डुबा कर उसे आवश्यक झुकाव दे दीजिये और उसमें जलोपरी वस्तुओं का बिंब देखते रहिये!

इन अवलोकनों के परिणाम उपरोक्त सैद्धांतिक निष्कर्षों की पूर्णरूपेण पुष्टि करते हैं।

निष्कर्ष यह है कि पानी की पारदर्शक परत अपने बाहर की वस्तु और आँख के बीच आकर जलोपरी जगत का पूरा चित्र बिगाड़ देती है और उसे कल्पनातीत रूप दे देती है। यदि कोई जीव थल पर जीने के बाद जल में लौटेगा, तो उसे अपनी पुरानी दुनिया इतनी बदली हुई लगेगी कि वह उसे पहचान भी नहीं सकेगा।

पानी की गहराइयों में रंग

पानी के नीचे वर्णाभ में होने वाले परिवर्तनों का सुंदर चित्र अमरीकी जीवविज्ञानी बीब प्रस्तुत करते है:

"हम प्लावर्तुल (बैथीस्फेयर) में बैठ कर पानी में उतरे। हमारी पीली सुनहरी दुनिया इतनी हरी हो जाएगी, —इसकी हमने कल्पना नहीं की थी। जब खिड़कियों के पास फेन और बुलबुले खत्म हो गये, हमारा कक्ष हरे रंग की किरणों से प्रकाशित हो गया। हमारे चेहरे, सिलिंडर और

यहाँ तक कि काली पड़ी दीवारें भी हरी हो गयीं; जबकि जहाज में बैठे लोगों का कहना था कि हम समुद्रपारीय नील रंग में डूब रहे हैं।

पानी में डूबते ही हमारी आँखें स्पेक्ट्रम की गर्म [1] (अर्थात् लाल व नारंगी) किरणों से वंचित हो जाती हैं। लगता था कि लाल और नारंगी रंग होते ही नहीं हैं। जल्द ही पीला रंग भी हरे रंग द्वारा विस्थापित हो गया। प्रसन्नतादायक गर्म किरणें स्पेक्ट्रम के दृश्य भाग में बहुत ही कम स्थान घेरती हैं, फिर भी 30 मीटर या इससे अधिक की गहराई पर उनके लोप हो जाने से लगता है कि दुनिया में ठंडक, अंधेरा और मृत्यु के सिवाय और कुछ नहीं बचा है।

जैसे-जैसे हम नीचे उतरने लगे, हरी आभाएं भी एक के बाद एक लुप्त होने लगीं। 60 मीटर की गहराई पर ही बताना मुश्किल हो गया कि पानी का रंग हरा-नीला है या नीला-हरा!

180 मीटर की गहराई पर चीजें चमकदार गाढ़ी नीली किरणों में सराबोर दिख रही थीं, वे इतना कम प्रकाश दे रही थीं कि कुछ पढ़-लिख सकना संभव नही था।

300 मीटर की गहराई पर मैंने पानी का रंग निर्धारित करने की कोशिश की; वह काला-नीला या काला-भूरा-नीला था। आश्चर्य है कि जब नीला प्रकाश पीछे छूट जाता है, स्पेक्ट्रम का अंतिम सदस्य बैंगनी रंग सामने नहीं आता: शायद वह पहले ही अवशोषित हो चुकता है। नीले रंग की आखिरी आभायें भूरी में परिवर्तित हो रही हैं और भूरी क्रमशः काली आभाओं में। यहाँ सूरज हार मान लेता है और रंग हमेशा के लिये भगा दिये जाते हैं, जबतक कि आदमी यहाँ आ कर विद्युत-किरणों से यहाँ की चीजों को प्रकाशित नहीं करता, जो अरबों-खरबों वर्षों से परम काले रंग में डूबी हुई थीं।"

बड़ी गहराई पर अवलोकित अंधियाली के बारे में ये ही अनुसंधानकर्ता एक अन्य स्थान पर लिखते हैं:

---

[1] यहाँ शब्द "गर्म" उस अर्थ में प्रयुक्त किया गया, जिसमें रंगाभों की विशेषता बताने के लिये चित्रकार इस शब्द का प्रयोग करते हैं; वे लाल व नारंगी रंगो को "गर्म" आभा की संज्ञा देते हैं और नीले व आसमानी को "ठंडी" आभा की।

" 750 मीटर की गहराई पर ऐसी अंधियारी थी, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती,—फिर भी अब (1000 मीटर की गहराई पर) वह काली से भी अधिक काली थी। लगता था कि ऊपरी दुनिया में आने वाली सभी रातें इस अंधेरेपन के सामने झुटपुटी शाम जैसी लगेंगी। इसके बाद मैं कभी किसी चीज के प्रति "काला" शब्द का प्रयोग पूरे विश्वास के साथ नहीं कर सका।"[1]

आँख में अंधा स्थल

यदि आप से कहा जायेगा कि आपके दृष्टि-क्षेत्र में एक ऐसा स्थल भी है, जिसे आप बिल्कुल नहीं देखते, यद्यपि वह ठीक आपकी आँखों के सामने है, तो आप निश्चय ही इसमें विश्वास नहीं करेंगे। यह कैसे संभव है कि इतने दिन जीने के बाद भी आप अपनी दृष्टि की इतनी बड़ी त्रुटि नहीं देख पाये? पर यहां एक सरल प्रयोग दिया जा रहा है, जिससे आप इस बात में विश्वास कर लेंगे।
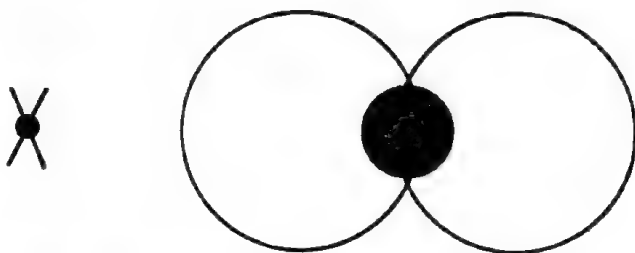
चित्र 123. रेटीना पर स्थित अंधस्थल को ढूँढ़ने के लिये आकृति।

चित्र 123 को दायीं आँख से 20 सेंटीमीटर की दूरी पर रखें (बायीं आँख बंद होनी चाहिये) और बायीं ओर स्थित कट-कुट के चित्र को देखते रहें; चित्र को धीरे-धीरे आँख के निकट लायें: इस क्रिया में ऐसा क्षण

[1] सागर की गहराइयों में अवलोकित रंगो के सविस्तार वर्णन के लिये देखें अकादमीशियन शुलेइकिन की पुस्तक "सामुद्र-भौतिकी पर निबंध" विज्ञान अकादमी, सोवियत संघ, 1949। —**संपादक**

जरूर आएगा, जब दो वृत्तों की कटान पर स्थित बड़ा वाला काला धब्बा बिल्कुल **गायब हो जायेगा**। आप उसे नहीं देखेंगे, यद्यपि वह आपके दृश्य-क्षेत्र में ही रहेगा: **उसके बायें और दायें के वृत्त आपको स्पष्ट दिखते रहेंगे।**

यह प्रयोग पहली बार विख्यात भौतिकविद् मैरियट ने 1668 ई. में किया था। उस समय इसका रूप कुछ दूसरा था और इससे लुदविक XIV के दरबारी अपना मनोरंजन किया करते थे। मैरियट का प्रयोग इस प्रकार था: वे दो दरबारियों को आमने-सामने दो मीटर की दूरी पर खड़ा करा के उन्हें एक आंख से पार्श्व के किसी बिंदु को देखने के लिये कहते थे,—इससे दोनों में से प्रत्येक को लगता था कि सामने वाले का सर नहीं है।

यह बहुत विचित्र बात है कि लोगों को सिर्फ XVII -वीं शती में पता चला कि आँख की रेटीना पर "अंध-स्थल" भी है। पहले इसके बारे में किसी ने सोचा भी नहीं था। यह रेटीना का वह स्थल है, जहां नेत्र-गोलक के साथ अक्षि-तंत्रिका (स्नायु) जुड़ती है। यहां आने के बाद से ही उसकी प्रकाश संवेदी शाखायें फूटती हैं।

हमें अपने दृष्टि-क्षेत्र में कोई काला धब्बा नहीं दिखायी देता, क्योंकि हम इसके आदी हो जाते हैं। परिवेशी दृश्य में इस धब्बे के कारण जो चीज लुप्त रहती है, उसका चित्रण हमें कल्पना-शक्ति द्वारा मिल जाता है। उदाहरण के लिये, चित्र 123 का काला धब्बा जब लुप्त हो जाता है, हम मन ही मन वृत्त की परिरेखाओं को बढ़ा कर उन्हें पूरा गोल बना लेते हैं और हमें विश्वास रहता है कि हम उनके कटान-बिन्दुओं को स्पष्ट रूप से देख रहे हैं।

यदि आप चश्मा पहनते हैं, तो एक प्रयोग कर सकते हैं: शीशे पर कागज का छोटा सा टुकडा चिपका लें (बीच में नहीं, थोड़ा बगल में)। कागज का टुकड़ा शुरू-शुरू ही देखने में बाधा डालेगा। लेकिन एक-दो हफ्ते में आप उसके आदी हो जाएंगे और आप उस पर कोई ध्यान नहीं देंगे। यह बात वे लोग अच्छी तरह से जानते होंगे, जो चनके शीशे वाला चश्मा पहनते हैं; शीशे की चनक सिर्फ शुरू के दिन तंग करती है। ठीक इसी प्रकार लंबी अवधि की आदत के कारण हमें अपनी आँखों के अंध-स्थल दिखायी नहीं देते। इसके अतिरिक्त, दोनों आँखों के अंध-स्थल दृष्टिक्षेत्र के भिन्न भागों को अदृश्य करते हैं, इसलिये दोनों आँखों से देखने पर उनके सम्मिलित दृष्टि-क्षेत्र में कोरा स्थान नहीं बचता।
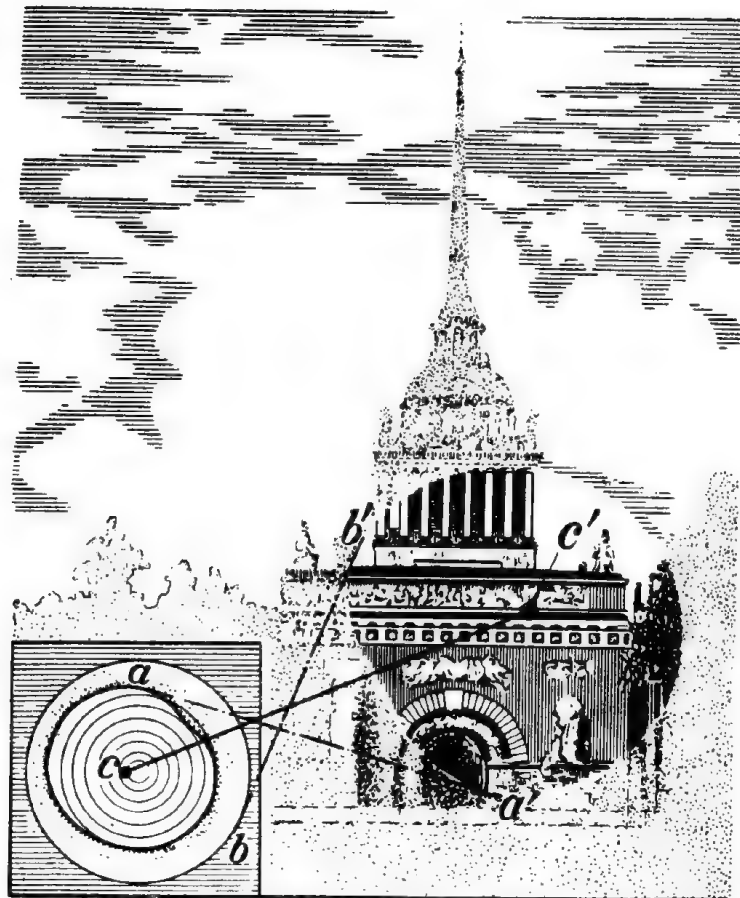
चित्र 124. एक आँख से भवन को देखने पर हम रेटीना के अंधस्थल C के कारण उसका एक नन्हा सा भाग C' देखने में बिल्कुल असमर्थ रहते हैं।

यह न सोचें कि हमारे दृष्टि-क्षेत्र में अंध-स्थल का क्षेत्र बहुत ही छोटा होता है, जब आप एक आँख से दस मीटर दूर स्थित घर को देखते हैं, तो अंध-स्थल के कारण आप उसका एक बहुत बड़ा हिस्सा नहीं देख पाते। उसका व्यास करीब एक मीटर होगा; उसमें एक पूरी खिड़की आ जायेगी।

जब हम एक आँख से आकाश को देखते हैं, पूर्णचंद्र की 'तश्तरी' से 120 गुना बड़ा क्षेत्र हमारे लिये अदृश्य रहता है।

चांद कितना बड़ा प्रतीत होता है?

चांद के दृश्यमान आकार के बारे में थोड़ी बात की जाये। यदि आप अपने परिचितों से पूछेंगे कि चांद आप को कितना बड़ा **प्रतीत** होता है, तो आपको बिल्कुल अलग उत्तर सुनने को मिलेंगे। अधिकतर लोग कहेंगे कि चांद तश्तरी के बराबर है। पर ऐसे लोग भी होंगे, जिन्हें चांद सेव जितना या बेर, जामुन आदि जितना बड़ा लगेगा। एक स्कूली बच्चे को चांद "बारह व्यक्तियों के खाना खाने लायक गोल टेबुल जितना बड़ा लगता था"। एक लेखक का कहना था कि चांद एक गज चौड़ा लगता है।

एक ही वस्तु के आकार पर इतना मतभेद क्यों है?

यह **दूरी** के मूल्यांकन पर निर्भर करता है और यह मूल्यांकन अनजाने में किया जाता है। चांद को सेव जितना देखने वाले लोग उसे कम दुरी पर स्थित मानते हैं, बनिस्बत कि उन लोगों से, जिन्हें थाली या टेबुल जितना बड़ा दिखता है।

पर अधिकतर लोगों को चांद तश्तरी जितना बड़ा ही लगता है। इससे एक रोचक निष्कर्ष निकलता है। यदि कलन किया जाये (कलन की विधि आगे स्पष्ट हो जायेगी) कि इतना बड़ा दिखने के लिये चांद को कितना दूर होना चाहिये, तो ज्ञात होगा कि वह हमसे 30 m से अधिक दूर नहीं है। अनजाने में हम चांद को कितना निकट ला देते हैं।

दूरी का गलत मूल्यांकन अनेकानेक दृष्टिभ्रमों का आधार है। मुझे बचपन का एक दृष्टिभ्रम अच्छी तरह से याद है; उस समय मेरे लिये जीवन की सभी बातें नयीं थीं। मैं शहर में पला था। एक दिन बंसत ऋतु में शहर के बाहर टहलते वक्त मुझे गायों का एक झुंड दिखा। मैं दूरी का सही मूल्यांकन नहीं कर पाया, इसलिये गायें मुझे बौनी प्रतीत हुईं। इतनी नन्ही गायें मुझे फिर कभी नहीं दिखीं, और बेशक दिखेंगी भी नहीं।[1]

---

[1] ऐसे भ्रम के शिकार वयस्क लोग भी हो जा सकते हैं। इसका प्रमाण ग्रिगोरोविच के उपन्यास "हरवाहा" के निम्न अंश से मिलता है:
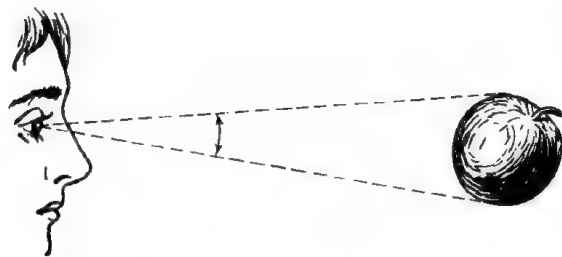
चित्र 125. दृष्टि-कोण।

नक्षत्रों के दृष्ट आकार को खगोलशास्त्री उस कोण द्वारा निर्धारित करते हैं, जो नक्षत्र द्वारा हमारी आँखो पर बनता है। "कोणिक आकार" या 'दृष्टिकोण' उस कोण को कहते हैं, जो हमारी आँख की ऊपरी व निचली किनारियों को मिलाने वाली सरल रेखाओं से बनता है (चित्र 127)। कोण, जैसा कि हमें ज्ञात है, डिग्री, मिनट, सेकेंड आदि में व्यक्त किये जाते हैं। चांद के दृष्ट आकार के बारे में पूछने पर खगोलशास्त्री यह नहीं कहेगा कि चांद तश्तरी या सेव जितना बड़ा है। वह कहेगा कि उसका आकार आधे डिग्री के बराबर है। इसका मतलब है कि चांद की 'तश्तरी' की ऊपरी व निचली किनारी को आँख से मिलने वाली रेखाओं के बीच का कोण आधे डिग्री के बराबर होता है। यह एक मात्र सही उत्तर है, जिससे कोई गलतफहमी नहीं हो सकती। ज्यामितीय नियमों के अनुसार[1] आँख से अपनी चौड़ाई की 57 गुनी अधिक दूरी पर स्थित पिंड आँख पर एक डिग्री का कोण बनाता है। उदाहरणार्थ, 5 cm व्यास वाला सेव यदि आँख से

"इलाका इस तरह दिख रहा था, जैसे वह हथेली पर हो; गाँव ठीक पुल के पास नजर आ रहा था; घर, टीले और बर्च के झुरमुट भी गाँव से सटे हुए लग रहे थे। यह सब खिलौने के गाँव सा लग रहा था, जिसमें घास का टुकड़ा पेड़ को द्योतित करता है और टूटे आइने का टुकड़ा नदी को।"

[1] यदि आप दृष्टि-कोण से संबंधित ज्यामितिक कलनों में रूचि लेने लगे हों, तो आवश्यक उदाहरण और व्याख्यायें मेरी पुस्तक "मनोरंजक ज्यामिति" में देख सकते हैं।

5 · 57 cm दूर रखा जायेगा, तो वह आँख पर एक डिग्री का कोण बनायेगा। यदि दूरी दुगुनी कर दी जाये, तो वह आँख पर $^1/_2{}^\circ$ का कोण बनाने लगेगा, अर्थात् चांद के बराबर दिखने लगेगा। यदि चाहें तो आप कह सकते हैं कि चांद आप को सेव जितना बड़ा लगता है; – लेकिन सिर्फ उसी स्थिति में, जब यह सेव आँखों से 570 cm (करीब 6 m) की दूरी पर स्थित हो। यदि चांद को तश्तरी के बराबर देखना चाहते हैं, तो तश्तरी को करीब 30 मीटर की दूरी पर रखना होगा। बहुत से लोगों को विश्वास नहीं होता कि चांद का दृष्ट आकार इतना छोटा होता है। पर यदि आप एक सिक्के को उसके व्यास से 114 गुना दूर रख कर देखेंगे, तो वह चांद को ठीक-ठीक ढक लेगा, यद्यपि वह आँखो से सिर्फ दो मीटर दूर होगा।

यदि आप से कागज पर चांद के बराबर का वृत्त खींचने को कहा जाये, तो समस्या आपको पर्याप्त स्पष्ट रूप से पारिभाषित नहीं लगेगी: गोला छोटा भी हो सकता है, और बड़ा भी; यह आँख से उसकी दूरी पर निर्भर करता है। पर प्रश्न की शर्तें स्पष्ट हो जायेंगी, यदि यह मान लें कि कागज को आँखों से उतना दूर रखना है, जितना हम किताब पढ़ते वक्त रखते हैं। साधारण स्वस्थ आँखों के लिये यह दूरी 25 cm के बराबर होगी।

अब कलन करें कि वृत्त कितना बड़ा बनाना चाहिये कि उसका आकार चांद के दृष्ट-आकार के बराबर हो जाये। हिसाब सरल है: 25 cm की दूरी को 114 से भाग दे दीजिये। उत्तर में काफी छोटा परिमाण मिलेगा – 2 mm से थोड़ा अधिक! इस पुस्तक पर छपे हुए अंक "0" से भी कुछ छोटा होगा। विश्वास नहीं होता कि चांद और सूरज दृष्ट आकार के अनुसार इतने छोटे कोण पर दिखायी देते हैं।

आपने शायद देखा होगा कि सूरज की ओर देखने के बाद आपके दृष्टि क्षेत्र में कुछ देर तक छोटे-छोटे रंगीन वृत्त झलकते रहते हैं। इन तथाकथित "प्रकाशीय चिह्नों का कोणीय मान उतना ही होता है, जितना सूरज का। पर उनके प्रतीयमान आकार बदलते रहते हैं। जब आप आकाश में देखते हैं, तब उनका आकार सूर्य की 'तश्तरी' के बराबर लगता है और जब आप किताब के पन्ने पर देखते हैं, तो उसका आकार करीब 2 mm वाले वृत्त सा होता है। हमारे कलनफल की सत्यता इससे भी प्रमाणित होती है।

17-567

यदि सप्तर्षि के कोणिक मापों को सुरक्षित रखते हुए उन्हे कागज पर अंकित करें, तो चित्र 126 का आरेख मिलेगा। उसे आँखों से इतना दूर रखा जाये कि स्पष्ट देख सकें, तो वे उसी तरह दिखेंगे, जैसे आकाश में दिखते हैं। यह सप्तर्षि का कोणिक मापों वाला मानचित्र होगा। यदि आपको सप्तर्षियों का दृश्य,—**सिर्फ रूप ही नहीं**, दृश्य,—याद हो तो इस चित्र को ध्यान से देखने पर मानो यथार्थ आकाशीय दृश्य में खो जायेंगे। सभी तारक-झुंडों के मुख्य तारों के बीच की कोणिक दूरी जान लेने पर (ये दूरियां खगोलशास्त्र की निदर्शिकाओं में मिल सकती हैं) आप खगोलीय मानचित्र बना ले सकते हैं। इसके लिये मिलिमीटर-वर्गों में बंटे कागज पर हर 4.5 mm की दूरी को एक डिग्री मान कर तारों को नन्हें वृत्तों के रूप में अंकित कर ले सकते हैं (वृत्तों का क्षेत्रफल तारों की चमक के अनुपात में ले सकते हैं)।

चित्र 126. सप्तर्षियों के बीच की कोणिक दूरियां वास्तविक हैं; चित्र को आँख से 25cm की दूरी पर रख कर देखें।

अब ग्रहों पर एक निगाह डालें। उनके दृश्य-आकार तारों की तरह ही इतने नन्हे हैं कि वे प्रकाश-बिंदुओं जैसे दिखते हैं। इसका कारण समझना कठिन नहीं है, क्योंकि कोई भी ग्रह (अधिकतम चमक के काल में शुक्र को छोड़ कर) आँखों पर एक मिनट से अधिक का कोण नहीं बनाता। यह वह सीमा है, जहाँ वस्तु की लंबाई, चौड़ाई आदि विमायें लुप्त हो जाती हैं। इससे कम कोणिक मान वाली वस्तु आकारहीन बिंदु प्रतीत होती है।

निम्न तालिका में भिन्न ग्रहों के कोणिक मान (सेकेंडों में) दिये जा रहे हैं। हर ग्रह के सामने दो संख्यायें हैं; पहली संख्या ग्रह की निकटतम

दूरी के वक्त उसका कोणिक आकार बताती है और दूसरी—अधिकतम दूरी के वक्त:

	सेकेंड
बुध	13—5
शुक्र	64—10
मंगल	25—3.5
वृहस्पति	50—31
शनि	20—15
शनि-वलय	48—35

ऐसे कोणिक मानों को "वास्तविक पैमाने" पर चित्रित करना असंभव है: पूरा एक मिनट अर्थात 60 सेकेंड के बराबर का कोणिक मान स्पष्ट दृष्टि की दूरी पर सिर्फ 0.04 mm के बराबर होगा। इस आकार की वस्तु को आँखों से नहीं देखा जा सकता। इसीलिये इन ग्रहों को इतने बड़े आकार
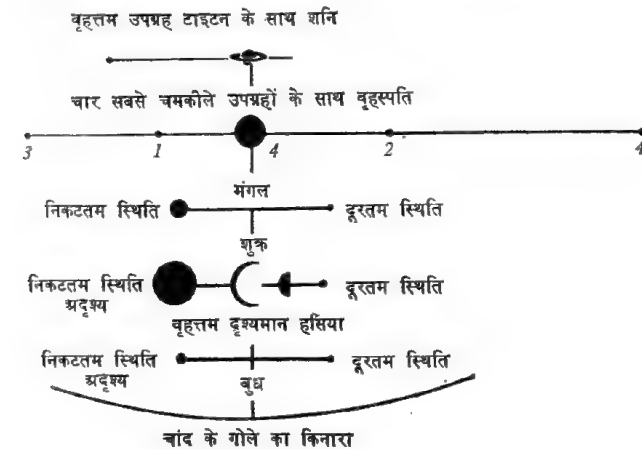
चित्र 127. यदि इस चित्र को आँखों से 25cm की दूरी पर रखी जाये, तो उसमें ग्रहों की आकृतियां ठीक उतनी बड़ी लगेंगी, जितनी बड़ी वे आकाश में सौगुनी वर्धनशीलता वाली दूरबीन से दिखती हैं।

दें, जितने बड़े ये आकार को सौ गुना बढ़ाने वाले दूरबीन में लगते हैं। चित्र 127 में ग्रहों के दृश्य-आकार इतना बढ़ा कर दिखाये गये हैं।

नीचे का मेहराब सौगुना विशालक दूरबिन में चांद (या सूर्य) की किनारी को दिखाता है। इसके ऊपर पृथ्वी से निकटतम और अधिकतम दूरियों पर स्थित बुध का आकार दिखाया गया है। इसके ऊपर शुक्र की भिन्न कलायें दिखायीं गयीं हैं। पृथ्वी से निकटतम दूरी पर वह बिल्कुल नहीं दिखायी देता क्योंकि उसका आधा भाग अंधेरे मे होता है।[1] इसके बाद उसका संकीर्ण हँसिया दिखता है। इस स्थिति में शुक्र सभी ग्रहों से बड़ा होता है। इसके बाद की कलाओं में वह छोटा होने लगता है। जब वह पूरा गोल दिखने लगता है, हँसिये की तुलना में उसका व्यास छे गुना कम होता है।

शुक्र से ऊपर मंगल दिखाया गया है। जब वह पृथ्वी से निकटतम दूरी पर होता है, उसका आकार बायीं ओर वाले वृत्त जितना बड़ा दिखता है। इस नन्हें से वृत्त में आप क्या देख सकते हैं? कल्पना द्वारा आप इस वृत्त को दस गुना बढ़ा दीजिये, – आपको अंदाज मिल जायेगा कि हजार गुना बड़ा दिखाने वाले दूरबीन से खगोलशास्त्री क्या देखते होंगे। क्या इस नन्हे से प्रकाश-धब्बे में "नहर" जैसी चीज दिख सकती है, जिनके बारे में इतना शोर था? या यह देखा जा सकता है कि उसका रंग-परिवर्तन उसके सागरों के वनस्पति-जगत के साथ संबंध रखता है? ऐसे अवलोकन के आधार पर कोई भी कुछ दावे के साथ नहीं कह सकता। इसीलिये तो मंगल के प्रेक्षकों के बीच इतना मतभेद है; सभी अलग-अलग बातें कहते हैं और एक दूसरे की बातों को भ्रम कह कर काटते रहते हैं।...[2]

---

[1] इस स्थिति में वह सिर्फ तब दिखता है, जब वह नन्हे से वृत्त के रूप में सूर्य-मंडल पर प्रक्षिप्त होता है। पर ऐसी स्थिति विरले ही मिलती है।

[2] पिछले समय से ग्रहों का अध्ययन-कार्य अंतर्ग्रही स्वचालित केंद्रों (सैटेलाइट) की सहायता से किया जा रहा है। ये सिर्फ दृश्य-साधनों का ही उपयोग नहीं करते। इनसे ग्रहों के बारे में अनेक रोचक सूचनायें मिलती हैं; इनमें से एक यह भी है कि मंगल पर न तो कोई नहरें हैं, न कोई सागर ही। जिज्ञासु पाठकों को निम्न पुस्तक का नाम बताया जा सकता है: पे. इ. बाकूनिन, ए. बे. कोनोविच, बे. इ. मोरोज, "सामान्य खगोलशास्त्र", 1974। – **संपादक**

विशाल वृहस्पति को हमारी तालिका में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है: उसका गोला शुक्र के बाद सबसे बड़ा है और उसके चार मुख्य सहयात्री (उपग्रह) रेखा-खंड पर स्थित हैं, वह चांद के व्यास से आधा है। चित्र में वृहस्पति वैसा दिख रहा है, जैसा वह पृथ्वी से निकटतम दूरी पर दिखता है (सौगुना वर्धक-क्षमता वाली दूरबीन में)। इसके बाद अपने वलय और अपने वृहत्तम उपग्रह (टाइटन) के साथ शनि ग्रह दिखाया गया है। हमसे निकटतम दूरी पर वह भी काफी बड़ा दिखता है।

उपरोक्त बातों से यह समझ में आ जाता है कि किसी दृश्यमान पिंड को हम जितना ही निकट मानते हैं, उसका आकार उतना ही छोटा लगता है। और इसका विलोम: यदि किसी कारणवश हम किसी पिंड को अधिक दूर मानने लगते हैं, तो हमारे अंदाज में उसका वास्तविक आकार बड़ा हो जाता है।

अगले पृष्ठों पर हम एडगर पो की एक कहानी उद्धृत कर रहे हैं, जिसमें एक ऐसे ही दृष्टि-भ्रम का वर्णन किया गया है। कहानी सत्य सी नहीं प्रतीत होती, पर वह सच है। मैं स्वयं एक बार ऐसे भ्रम में पड़ गया था और ऐसी घटनायें संभवतः सभी पाठकों के साथ घटी होंगी।

"स्फिंक्स" (एडगर पो की कहानी, संक्षेप में)

"न्यूयोर्क में हैजे का राज्य था। इन दिनों मेरे एक रिश्तेदार ने मुझे शहर के बाहर स्थित अपने बंगले में रहने के लिये दो हफ्तों का निमंत्रण दिया। वहाँ दिन बुरे नहीं कटते, पर हर दिन शहर से दुखद सामाचार मिल रहे थे। कोई भी दिन ऐसा नहीं बीतता था, जब किसी परिचित की मृत्यु का सामाचार न मिले। यहाँ तक कि अखबार देख कर भी डर लगता था। दक्षिण से बहने वाली हवा मृत्युरंजित लगती थी। मनहूस विचार मेरे मन को निरंतर आलोड़ित कर रहे थे। पर मेरे मेजबान शांत प्रकृति के व्यक्ति थे और यथासंभव मुझे शांत्वना देते रहते थे।

गर्मी का दिन अंधकार में डूब रहा था और मैं खुली खिड़की के पास किताब लिये बैठा हुआ था। सामने नदी के पार ऊँचे टीलों का दृश्य दिख रहा था। मन पुस्तक से उचट कर संकटग्रस्त शहर पर छायी निराशा के साथ उलझा हुआ था। अचानक मेरी निगाह टीले की नंगी ढलान पर

चली गयी... वहाँ एक विचित्र दृश्य था! टीले से एक भयानक जंतु नीचे उतर रहा था। नीचे उतर कर वह तराई के घने जंगलों में छिप गया। पहले तो मुझे लगा कि मैं पागल हो गया हूँ, या मेरी आँखें धोखा दे रही हैं। पर चंद मिनटों बाद मुझे विश्वास हो गया कि दृश्य सत्य है। यदि मैं इस जंतु का वर्णन करूं, तो आपके लिये, प्रिय पाठक, इस पर विश्वास कर पाना कठिन होगा। पर मैं उसे बिल्कुल साफ-साफ देख रहा था और तबतक देखता रहा, जबतक कि वह उतरने के बाद जंगल में छिप नहीं गया।

विशाल पेड़ों के तनों के साथ उसके आकार की तुलना करके मैंने देखा कि वह किसी युद्ध-पोत से कम नहीं है। मैं युद्ध-पोत का नाम ले रहा हूँ, क्योंकि उसका रूप जहाज की तरह ही था: चौहत्तर तोपों वाला जहाज आपको उस जंतु के रूप और आकार का सही अंदाजा देता। जंतु का मुँह उसकी सूँड़ के छोर पर था और सूड़ करीब साठ या सत्तर फीट लंबी थी। उसकी मुटाई हाथी के धड़ जितनी थी। सूँड़ के आधार के पास घने और खड़े बाल थे। उनके बीच दो लंबे गजदंत लगे हुए थे। वे थोड़ा नीचे झुक कर पार्श्व की ओर मुड़े हुए थे। ऐसे दाँत बनैले सूअर के होते हैं; पर ये बहुत बड़े थे। सूँड़ के दोनों तरफ ऊपर तीस या चालीस फीट लंबे सींग लगे हुए थे, जो शायद स्फटिक के थे; धूप में वे ऐसे ही चमक रहे थे। धड़ का आकार उल्टे खूँटे की तरह था। उसमें एक के ऊपर एक चढ़े दो जोड़े डैने लगे थे, जिनमें से प्रत्येक की लंबाई करीब 300 फीट थी। डैनों पर पंखियों की जगह घने धातुई पत्तर लगे थे; इनमें से प्रत्येक का व्यास करीब दस-बारह फीट लंबा था। इस विचित्र जंतु की मुख्य विशेषता उसकी शक्ल थी, जिसकी तुलना सिर्फ मृत्यु के देव के साथ की जा सकती थी। वह उसकी छाती तक जगह घेरे थी और सफेद होने के नाते उसके काले शरीर पर स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही थी। जब मैं डर से काँपता हुआ इस भयानक सृष्टि को देख रहा था, विशेष कर उसकी मौत जैसी शक्ल को, उसने अचानक मुँह खोल कर चिल्कार की आवाज की... यह मेरे लिये असह्य था और जब वह आँखों से ओझल हुआ, मैं फर्श पर गिर कर बेहोश हो गया...

होश में आने पर मेरी पहली इच्छा थी अपने मित्र को सारी बात बताने की। अंत तक सुन चुकने के बाद पहले तो वह जोर-जोर से हँसने

लगा, फिर तुरत गंभीर हो गया, मानों मेरे पागल होने में उसे कोई संदेह न रह गया हो।

इसी क्षण मुझे फिर से वह जंतु दिखायी दे गया। मैं चीख-चीख कर मित्र को बताने की कोशिश करने लगा कि वह कहाँ है, पर वह कसम खा रहा था कि वहाँ कुछ भी नहीं है।

मैं चेहरे को हाथों से छिपा कर बैठ गया। जब आँखें फिर से खोली, तो जंतु गायब था।

मित्र देर तक उसके रूप-आकार आदि के बारे में पूछ-तलब करते रहा। जब मैं विस्तारपूर्वक सबकुछ बता चुका, तो उन्होंने संतोष की साँस ली, मानों सर से कोई भारी बोझ उतर गया हो; वह किताबों की आलमारी के पास गया और वहाँ से प्राकृतिक इतिहास की एक पाठ्य-पुस्तक निकाली। उसने मुझसे जगह बदलने का अनुरोध किया, क्योंकि खिड़की के पास किताब के महीन अक्षरों को देखने में आसानी होती। वह कुर्सी पर बैठ कर कहने लगा:

यदि आप ने उस जीव का इतना सही वर्णन न किया होता, तो मैं कभी नहीं समझा सकता कि यह क्या था। पहले मैं आपसे इस पुस्तक के एक अंश को पढ़ कर सुनाने की अनुमति मांगूंगा; इसमें Insecta या शलभ श्रेणी के Lepidoptera (शल्कपंखी या चोंइयेदार पंख वाले) गण के Crepuscularіae (सांध्यचर) परिवार की तितली Sphinx के बारे में लिखा गया है।

"एक के ऊपर एक चढ़े डैनों के दो जोड़े होते हैं, जो धातुई चमक वाले शल्क (चोंइयों) से ढके होते हैं; मुँह निचले जबड़े के लंबे होने से काफी नीचे दिखता है; पार्श्व में लंबे लोमदार स्पर्शेंद्रिय हैं; निचले और ऊपरी डैने मजबूत बालों से जुड़े होते हैं; मूछें प्रिज्मीय छड़ियों की तरह हैं; पेट नुकीला होता है। अपनी चिल्कार जैसी आवाज और पेट पर स्थित खोपड़ी जैसे सफेद चिह्न के कारण स्फिंक्स 'मृत सर' सर्व-साधारण में अंधविश्वास का डर उत्पन्न करता है।[1]

[1] अब इस तितली को Acherontia परिवार का माना जाता है। इसकी गणना उन चंद तितलियों में होती है, जो ध्वनि पैदा कर सकती हैं। इनकी आवाज चूहे की चीं-चीं की याद दिलाती है। इसके अतिरिक्त, यह एकमात्र

यहाँ उसने किताब बंद की और खिड़की पर उसी तरह झुक कर कुछ देखने लगा, जैसे मैं जंतु को देखते वक्त झुका हुआ था।

–यह रहा वह! –चीख कर उसने कहा, –वह टीले पर चढ़ रहा है और काफी विलक्षण लग रहा है। लेकिन वह इतना बड़ा और इतना दूर नहीं है, जितना आपने सोचा था, क्योंकि हमारी खिड़की से लगे किसी मकड़े के धागे के सहारे चढ़ा रहा है!"

सूक्ष्मदर्शी से बड़ा क्यों दिखता है?

"क्योंकि वह भौतिकी के पाठ्य-पुस्तकों में वर्णित तरीके से किरणों का पथ परिवर्तित कर देता है", –यह उत्तर है, जो अक्सर सुनने में आता है। पर ऐसे उत्तर में कारण निर्दिष्ट नहीं किया गया है; मुख्य बात को ही छोड़ दिया गया है। सूक्ष्मदर्शी या दूरदर्शी की विशालक क्रिया के पीछे आखिर कारण क्या है?
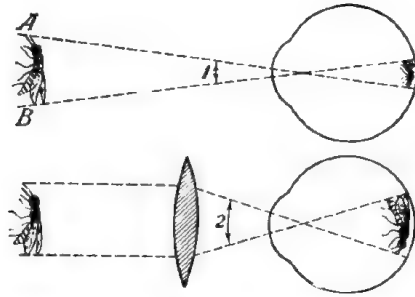
चित्र 128. विशालक शीशा बिंब को रेटीना पर संवर्धित करता है।

मुझे इस कारण का ज्ञान बिना किसी पाठ्य-पुस्तक के ही हो गया था। जब मैं स्कूल में पढ़ता था, तब की एक घटना है। मैं बंद खिड़की के पास बैठा हुआ सामने का मकान देख रहा था। अचानक मैं डर कर पीछे हट गया: ईंट की दीवार से मुझे आदमी का एक बहुत बड़ा आँख देख रहा था; उसकी चौड़ाई कुछेक मीटर की रही होगी। उस समय मैंने एडगर पो की कहानी नहीं पढ़ी थी, इसीलिये मैं समझ नहीं पाया कि यह मेरी ही आँख का प्रतिबिंब है, जिसे मैं अनजाने में सामने की दीवार पर प्रक्षिप्त कर रहा था।

कारण समझने के बाद मैं सोचने लगा कि क्या इस दृष्टि-भ्रम के आधार पर काम करने वाला एक सूक्ष्मदर्शी नहीं बनाया जा सकता? और जब मेरे सारे प्रयत्न असफल हो गये, तब मैं समझा कि सूक्ष्मदर्शी के विशालक गुण का कारण क्या है। कारण यह नहीं है कि वस्तु अपने आकार से बड़ी प्रतीत होती है, बल्कि यह है कि वह **हमारी आँखों पर वस्तु द्वारा बड़ा कोण बनवाता है** और इसलिये–यह अधिक महत्वपूर्ण है, –**उसका बिंब हमारी आँख की रेटीना पर अधिक स्थान छेंकता है।**

यहाँ दृष्टि-कोण का इतना महत्व क्यों है, यह समझने के लिये हमें आँख की एक विशेषता पर ध्यान देना चाहिये: आँख पर एक मिनट से कम कोण बनाने वाली वस्तु साधारण स्वस्थ आँखों को एक बिंदु सी लगती है, जिसमें न तो उसका कोई भाग दिखायी देता है, न उसका रूप ही। जब वस्तु आँख से इतनी दूर होती है या अपने आप में इतनी छोटी होती है कि वह (या उसके भाग) आँख पर एक मिनट से कम का कोण बनाती है, तो हम उसकी बनावट को स्पष्ट रूप से नहीं देख पाते। इसका कारण यह है कि दृष्टि-कोण के इतने छोटे होने के कारण उसका बिंब रेटीना पर कई नहीं सिर्फ एक दृष्टि-कोशिका को ढकता है। इस स्थिति में वस्तु की बनावट, उसका रूप आदि नहीं दिखता, हमें सिर्फ एक **बिंदु** दिखायी देता है।

सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी की भूमिका यही है कि वे वस्तु से निकलती किरणों के पथ को विचलित कर के उसे बड़े दृष्टि-कोण पर दिखाते हैं; रेटीना पर बिंब बड़ा हो जाता है और अधिक दृष्टि-कोशिकाओं के साथ क्रिया करता है। फल यह होता है कि हम बिंब के भिन्न अवयवों को स्पष्ट रूप से देखने लगते हैं। "सूक्ष्मदर्शी या दूरदर्शी की विशालक शक्ति 100 है"–इसका मतलब है कि वह वस्तु को 100 गुने बड़े कोण पर दिखाता है, बनिस्बत कि उस कोण के, जो वस्तु हमारी नंगी आँखों पर बनाती है। यदि उपकरण दृष्टि-कोण नहीं बढ़ाता, तो उससे वस्तु का आकार बड़ा

तितली है, जो मुँह से आवाज निकालती है। आवाज काफी प्रबल होती है और कुछेक मीटर दूर तक सुनायी दे सकती है। दी गयी परिस्थितियों में प्रेक्षक को उसकी आवाज बहुत जोरदार लगी होगी, क्योंकि प्रेक्षक उसके बहुत दूर होने की कल्पना कर रहा था। (दे. "मनोरंजक भौतिकी", भाग 1, अध्याय 10)

नहीं दिखता, **यद्यपि हमें प्रतीत हो सकता है कि वह बड़ी दिख रही है।** ईंट की दीवार पर आँख मुझे काफी बड़ी दिख रही थी (या लग रही थी), पर मुझे उसका **कोई नया अतिरिक्त विवरण नहीं दिख रहा था।** दर्पण में भी उतनी ही बड़ी दिखती (पर बड़ी नहीं लगती) और कोई नया विवरण नहीं दिखता।

क्षितिज के पास चांद बड़ा लगता है, बनिस्बत कि जब वह सर के ठीक ऊपर होता है। पर क्या उसके बड़े दिखने से हम उसमें कोई अतिरिक्त विवरण देख पाते हैं?

यदि एडगर पो की कहानी को फिर से याद करें, तो इसमें भी लेखक को "स्फिंक्स" की बनावट में कोई नया विवरण नहीं दिखा था। तितली द्वारा हमारी आँखों पर बनते कोण की मात्रा इस बात पर निर्भर नहीं करती कि हम तितली की तुलना खिड़की के फ्रेम के साथ करते हैं या दूरस्थ टीले के दृश्य के साथ करते हैं (टीले पर तितली को प्रक्षिप्त करते हैं)। और यदि दृष्टि-कोण में कोई परिवर्तन नहीं होता, तो हम चाहे कितना भी उसके बड़े दिखने वाले आकार से चकित क्यों न हों, हमें उसके वर्धन से उसकी बनावट में कोई अतिरिक्त विवरण दिखायी नहीं देगा। सच्चे कलाकार होने के नाते एडगर पो ने अपने वर्णन में एक भी ऐसी बात नहीं जोड़ी, जो तितली में नंगी आँखों से नहीं दिखी होती। दोनों वर्णनों की तुलना करें, — वे कहानी में यूँ ही नहीं घुसेड़े गये हैं, — और आप देखेंगे कि उनमें सिर्फ शब्दों का अंतर है (दस फीट व्यास वाले पत्तर — चोंइया, विशाल सींगे — मूँछें; गजदंत — स्पर्शेंद्रिय, आदि), बनावट का नहीं।

यदि सूक्ष्मदर्शी सिर्फ इसी तरह से आकार बड़ा करता, तो वह सिर्फ एक रोचक खिलौना होता; वैज्ञानिकों के लिये उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती। पर हम जानते हैं कि सूक्ष्मदर्शी ने मनुष्य की दृष्टि-सीमा बढ़ा कर उसके सामने एक नयी दुनिया खोली है:

> प्रकृति ने हमें तेज दृष्टि दी,
> पर सीमा उसकी अति संकुचित की।
> गर अनेक जीव उसकी पहुँच के बाहर,
> नन्हे आकार में छिपते जो जाकर!

— यह हमारे प्रथम प्रकृति-साधक लोमोनोसोव ने "शीशे के लाभ पर पत्र" में लिखा था।

अब हम स्पष्टतः समझ सकते हैं कि सूक्ष्मदर्शी ही क्यों उस "रहस्य" का उद्‌घाटन करता है, जिसे एडगर पो की कहानी का प्रेक्षक अपनी विशाल तितली में नहीं देख सका: क्योंकि सूक्ष्मदर्शी सिर्फ आकार ही नहीं बड़ा करता, वह वस्तुओं को **बड़े दृष्टि-कोण पर** दिखाता है, जिसके कारण रेटीना पर वस्तु का **अधिक बड़ा बिंब** बनता है। यह बिंब रेटीना पर कहीं अधिक दृष्टि-कोशिकाओं के साथ क्रिया करता है और अधिक संख्या में दृश्य-संवेदनाओं को जन्म देता है। यदि संक्षेप में कहें, तो सूक्ष्मदर्शी वस्तु को नहीं, रेटीना पर उसके बिंब को बड़ा करता है।

चाक्षुष आत्मवंचनायें

हम अक्सर "दृष्टि-भ्रम", "श्रव्य-भ्रम" आदि की बात करते हैं, पर ये नाम गलत हैं। **ऐंद्रिय** भ्रम नहीं होता। दार्शनिक कांट ने इसके बारे में बिल्कुल ही ठीक कहा है: "इंद्रिय हमें धोखा नहीं देते, — इसलिये नहीं कि वे हमेशा सही मूल्यांकन करते हैं, बल्कि इसलिये कि वे मूल्यांकन करते ही नहीं हैं।"
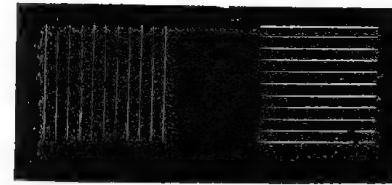
चित्र 129. कौनसी आकृति अधिक चौड़ी है — बायीं या दायीं?

चित्र 130. इस आकृति में क्या अधिक है — ऊंचाई या चौड़ाई?
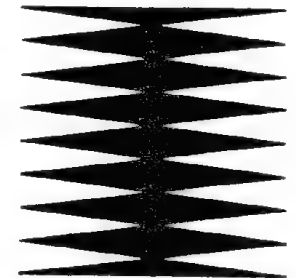
फिर तथाकथित दृष्टि-भ्रम में कौन हमें भ्रमित करता है? वही, जो मूल्यांकन करता है, अर्थात् मस्तिष्क। अधिकांश दृष्टि-भ्रम सचमुच ही सिर्फ

इस बात पर निर्भर करते हैं कि हम सिर्फ देखते ही नहीं, अनजाने में दृश्यसंवेदनाओं का **मूल्यांकन भी करते जाते हैं** और अक्सर स्वयं को भ्रम में डाल लिया करते हैं। ये **तर्क जनित** भ्रम हैं, इंद्रिय जनित नहीं।

कोई दो हजार वर्ष पूर्व लुक्रेशियस ने लिखा था :

"आँखें वस्तुओं की प्रकृति का ज्ञान नहीं देतीं, इसलिये उन्हें बुद्धि-भ्रम के लिये दोषी मत ठहराओ।"

प्रकाशिकीय भ्रम का एक सर्वविदित उदाहरण लेते हैं : चित्र 129 में बायीं आकृति दायीं से सँकरी लगती है, यद्यपि दोनों ही बिल्कुल समान वर्गों में सीमित हैं। कारण यह है कि आकृति की ऊँचाई का मूल्यांकन करते वक्त हम अनजाने में रेखाओं के बीच की दूरियां जोड़ने लगते हैं और इसीलिये उसकी चौड़ाई कम प्रतीत होती है। इसके विपरीत, दायीं आकृति में उसी अचेत मूल्यांकन के कारण चौड़ाई ऊँचाई से अधिक लगती है। इन्हीं कारणों से चित्र 130 की आकृति में ऊँचाई उसकी चौड़ाई से अधिक प्रतीत होती है।

दर्जियों के लिये लाभदायक भ्रम

यदि उपरोक्त दृष्टि-भ्रम को बड़ी आकृतियों के लिये लागू करेंगे, जिन्हें आँखें एक बारगी से पूरी तरह नहीं देख पातीं, तो वह भ्रम नहीं होगा। सभी जानते हैं कि छोटे कद का मोटा आदमी क्षैतिज धारियों वाले कोट में दुबले-पतले नहीं, और मोटे ही प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत, उदग्र धारियों वाली पोशाक में वे अपनी मुटाई कुछ हद तक छिपा ले सकते हैं।

इस विरोधाभास का क्या कारण है? यही कि ऐसे कोट-पैंट को देखते वक्त हमारी आँखें उन्हें एक-बारगी से पूरी तरह अपने दृष्टि-क्षेत्र में नहीं ले पातीं। हमारी दृष्टि जाने अनजाने धारियों के सहारे रेंगने लगती हैं। चक्षु-पेशियों का अतिरिक्त प्रयत्न हमें अनजाने में वस्तु का आकार धारी की दिशा में बढ़ाने को विवश कर देता है। चक्षु-पेशियों के प्रयत्न का संबंध हम वस्तुओं के बड़े आकार के साथ जोड़ने के आदी हो गये हैं (जब वे हमारे दृष्टि-क्षेत्र में नहीं अँटतीं)। पर नन्ही धारीदार आकृतियों को देखते वक्त आँखें स्थिर रहती हैं और उन्हें थकान नहीं होती।

क्या बड़ा है?

चित्र 131 में कौन सा दीर्घवृत्त बड़ा है : नीचे वाला या ऊपर का अंदरूनी? इस विचार से छुटकारा पाना कठिन है कि नीचे वाला ऊपरी से बड़ा है। पर **दोनों** बराबर हैं। सीर्फ ऊपरी वाह्य दीर्घवृत्त यह भ्रम उत्पन्न करता है कि उसके भीतर की आकृति निचले दीर्घवृत्त से छोटी है।

चित्र 131. कौन सा दीर्घवृत्त बड़ा है – निचला या ऊपर भीतर वाला?
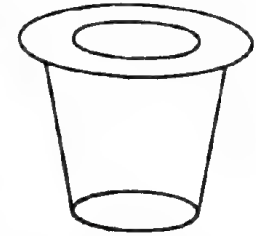
भ्रम अधिक शक्ति रखता है, क्योंकि चित्र की पूर्ण आकृति समतली नहीं, बाल्टी की तरह व्योम प्रतीत होती है : जाने-अनजाने दीर्घवृत्त परिप्रेक्ष्य के कारण दबे वृत्त से प्रतीत होते हैं और आड़ी रेखायें बाल्टी की दीवार सी प्रतीत होती हैं।

चित्र 132 में a और b बिंदुओं के बीच की दूरी m और n की दूरी से अधिक प्रतीत होती है। बीच वाली रेखा कोण के शीर्ष से निकल कर भ्रम को और बढ़ा देती है।

कल्पना की शक्ति

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अधिकांश दृष्टि भ्रमों का कारण यह है कि हम सिर्फ देखते ही नहीं हैं, अनजाने में उसके बारे में सोचते भी
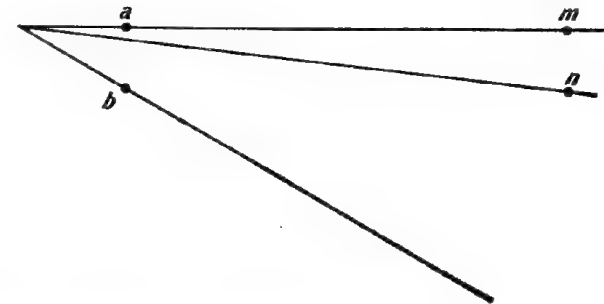
चित्र 132. कौनसी दूरी अधिक है – ab या mn?

जाते हैं। "हम ग्राँखों से नहीं, मस्तिष्क से देखते हैं," – शरीरक्रियाविज्ञानियों का कहना है। ग्राप भी इस बात से सहमत हो जायेंगे, जब ऐसे भ्रमों से परिचित होंगे, जिनमें कल्पना देखने की क्रिया में सचेत रूप से भाग लेती है।
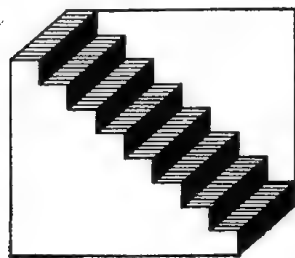
चित्र 133. क्या देख रहे हैं ग्राप यहां – सीढ़ियां, ताखे या "हार्मोनियम" (या ताड़ के पंखे की तरह मोड़ी गयी कागज की पट्टी)?
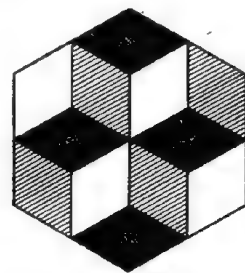
चित्र 134. घनों की स्थिति बतायें। नीचे दो घन हैं या ऊपर?
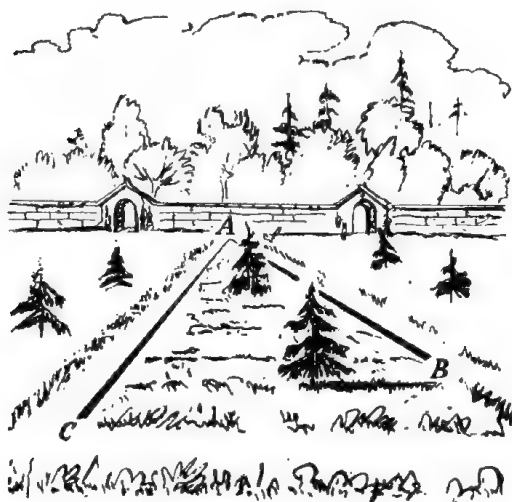
चित्र 135. क्या अधिक लंबा है – *AB* या *AC* ?

चित्र 133 को देखें। यदि ग्राप यह चित्र दूसरों को दिखा कर पूछेंगे कि यह क्या है, तो ग्रापको शायद तीन प्रकार के उत्तर मिलेंगे। कुछ लोग कहेंगे कि यह सीढ़ी है, कुछ कहेंगे कि यह दीवार में बनी ग्रलमारी है ग्रौर कुछ लोग कहेंगे कि यह हारमोनियम जैसा मोड़ा गया कागज का पट्टा है ग्रौर सफेद वर्ग पर तिरछा रखा हुग्रा है।

बात विचित्र लगेगी, पर तीनों ही उत्तर सही हैं! ग्राप स्वयं तीनों वस्तुएं देख सकते हैं; यह निर्भर करता है कि ग्राप चित्र पर किस ग्रोर निगाह डालते हैं। यदि बायें भाग को देखेंगे, तो सीढ़ी नजर ग्रायेगी। यदि निगाह दायें से बायें फिसल रही है, तो ग्रापको ग्रालमारी दिखेगी। नीचे के दायें कोने से ऊपर के बायें कोने की ग्रोर कर्ण के सहारे दृष्टि फिरा कर ग्राप हारमोनियम सा मुड़ा कागज देखेंगे।

यदि ग्राप चित्र पर टकटकी लगा कर देर तक देखेंगे, तो ग्रापकी ग्राँखें थक जायेंगी ग्रौर ग्रापकी इच्छा के विरुद्ध बारी-बारी से तीनों ही वस्तुएं दिखने लगेंगी।

चित्र 134 में भी ये ही विशेषताएं हैं।

चित्र 135 का भ्रम भी दिलचस्प है: नहीं चाहते हुए भी हमें लगता है कि दूरी *AC* बड़ी है दूरी *AB* से।

चंद ग्रौर दृष्टि-भ्रम
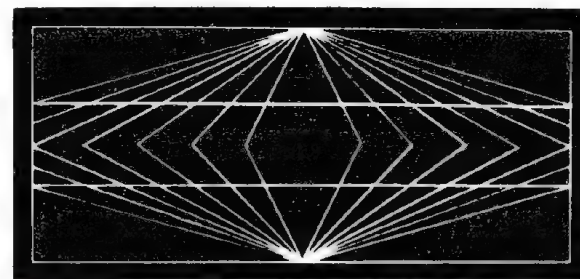
चित्र 136. बायें से दायें जाती हुई दो रेखायें समांतर एवं सरल हैं, पर वे बीच से एक दूसरी की ग्रोर झुकी सी लगती हैं। भ्रम नष्ट हो जाता है: 1) यदि ग्राकृति को ग्राँख की ऊँचाई पर रख कर इस प्रकार देखा जाये कि निगाहें रेखाग्रों के ग्रनुतीर फिसलती रहें; 2) यदि ग्राकृति के किसी बिंदु पर पेंसिल की नोक रख कर उसे ध्यान से एक टक देखा जाये।

सभी भ्रमों का कारण बता सकना कठिन है। अक्सर यह बताना भी मुश्किल होता है कि मस्तिष्क में किस प्रकार के तर्क चल रहे हैं और भ्रम किस बात का है। चित्र 136 में साफ-साफ दो चाप दिख रहे हैं, जो बीच में एक दूसरे की ओर झुके प्रतीत हो रहे हैं। पर सीधी पटरी उनके पास रखिये या चित्र को आँख की ऊँचाई पर रख कर उन पर दृष्टि फिराइये, आपको विश्वास हो जायेगा कि वे सरल रेखायें ही हैं।
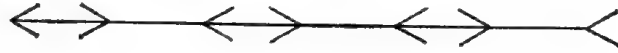
चित्र 137. सरल रेखा के छे भाग समान हैं या असमान?
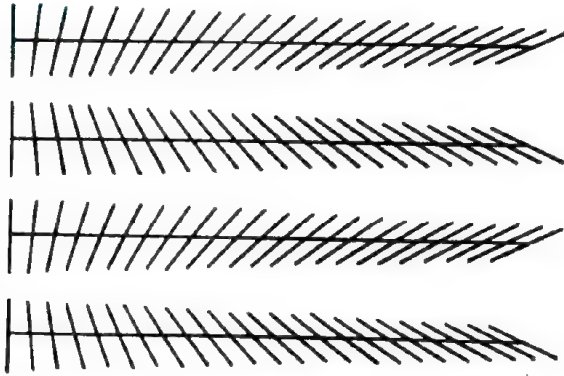
चित्र 138. समांतर सरल रेखायें असमांतर प्रतीत होती हैं।
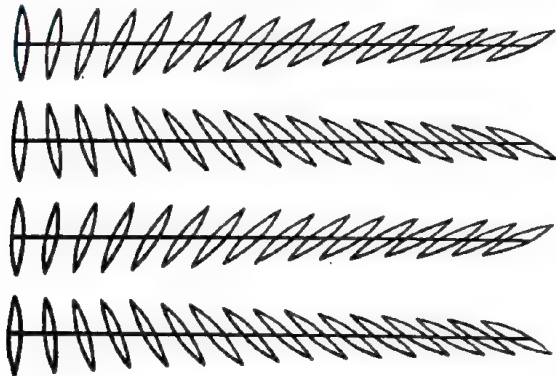
चित्र 139. पिछले चित्र के भ्रम का एक अन्य रूप।
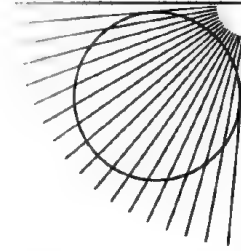
चित्र 140. क्या यह वृत्त है?

चित्र 141. "चुरूट" का भ्रम। दायीं लकीरें बायीं लकीरों से छोटी प्रतीत होती हैं, पर दरअसल वे बराबर हैं।

इसी तरह के चंद और भ्रम हैं। चित्र 137 में सरल रेखा असमान टुकड़ों में बँटी लगती हैं, पर नापने से ज्ञात होता है कि वे समान हैं। चित्र 138 और 139 में समांतर रेखायें असमांतर प्रतीत होती हैं। चित्र 140 में वृत्त अंडे की तरह लगता है। उल्लेखनीय है कि विद्युत-चिनगारी के प्रकाश में देखने पर चित्र 137, 138, 139 के भ्रम लुप्त हो जाते हैं। स्पष्ट है कि इन भ्रमों का संबंध निगाह फिराने के साथ है: चिनगारी के क्षणिक प्रकाश के दरम्यान आँखें इधर-उधर घुमने में सफल नहीं हो पातीं।

चित्र 141 का भ्रम भी कम दिलचस्प नहीं है: कौन सी लकीरें लंबी हैं, – बायीं ओर की या दायीं ओर की? बायीं ओर वाली लंबी लगती हैं, यद्यपि सभी बराबर हैं।[1] इसका नाम "चुरूट का भ्रम" रखा गया है।

इन दिलचस्प भ्रमों के कई कारण प्रस्तावित किये गये हैं, पर किसी को भी बिल्कुल सही नहीं कहा जा सकता; इसीलिये वे यहाँ प्रस्तुत नहीं किये जा रहे हैं। शायद सिर्फ एक बात संदेह से परे है: ये भ्रम अवचेतना की 'बुद्धिमत्तता' की उपज हैं; उसके अंधे तर्क वास्तविकता को जैसी है, वैसी देखने में बाधक होते हैं।

---

[1] यह चित्र कावालियेरी के ज्यामितीय नियम को दर्शाता है, जिसके अनुसार "चुरूट" के बायें और दायें भागों के क्षेत्रफल समान हैं।

यह क्या है?

चित्र 142 को देख कर आप शायद ही बता सकें कि यह क्या है। "सिर्फ एक काली जाली ही तो है",—आप कहेंगे। पर पुस्तक को उदग्र टेबुल पर खड़ी कर दीजिये और 3-4 कदम पीछे हट कर चित्र को देखिये। आपको आदमी की आँख नजर आयेगी। नजदीक आइये, फिर खाली जाली नजर आने लगेगी।
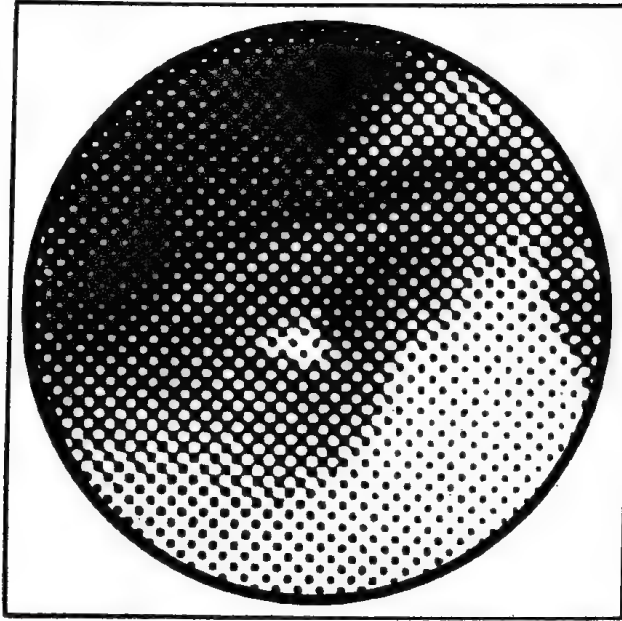
चित्र 142. दूर से इस जाली को देखने पर आपको इसमें दायीं ओर मुँह किये एक लड़की के पार्श्व-चित्र का एक अंश (एक आँख और नाक का कुछ भाग) दृष्टिगोचर होगा।

आप सोचते होंगे कि यह किसी प्रवीण चित्रकार का कमाल है। पर यह सिर्फ उस भ्रम का उदाहरण है, जिसके चक्कर में हम अक्सर अर्द्धछाया चित्र देखते वक्त पड़ जाया करते हैं। पुस्तकों या पत्रिकाओं में चित्र का परिप्रेक्ष्य सतत सा प्रतीत होता है, पर यदि आप विशालक शीशे से देखेंगे, तो

आपको बिंदु-बिंदु अलग नजर आने लगेंगे; आपके सामने चित्र 142 की भाँति ही एक जाली होगी। यह चित्र ऐसे ही एक अर्द्धछाया चित्र का दस गुना बड़ा किया हुआ एक भाग है। जब जाली काफी महीन होती है, तो वह नजदीक से ही सतत रंग में रंगी लगती है। जाली के छेद बड़े होने पर उन्हें दूर से देखना पड़ता है। पाठकों को इसका कारण समझने में कठिनाई नहीं होगी, यदि वे दृष्टि-कोण के बारे में कही गयी बातों को स्मरण करेंगे।

असाधारण चक्के

क्या आपको कभी बाड़े के छेदों से (या सिनेमा में) तेज दौड़ती मोटर-कार या बग्घी के चक्कों को देखने का मौका मिला है? शायद आपने एक विचित्र बात पर ध्यान दिया हो: कार तेज गति से दौड़ती है, पर चक्का मुश्किल से घूमता नजर आता है, या बिल्कुल रुका हुआ लगता है। कभी-कभी तो वह उल्टी दिशा में घूमता नजर आने लगता है!

यह भ्रम इतना असाधारण है कि पहली बार देखने वाले बिल्कुल ही चकरा जाते हैं।

कारण निम्न है। बाड़े के छेदों से हम चक्के को लागातार नहीं देखते। वह कभी छिप जाता है, तो कभी दिखने लगता है। सिनेमा में भी हम चक्के को लागातार नहीं देखते, अलग-अलग चित्रों में देखते हैं (एक सेकेंड में 24 चित्रों की गति से)।
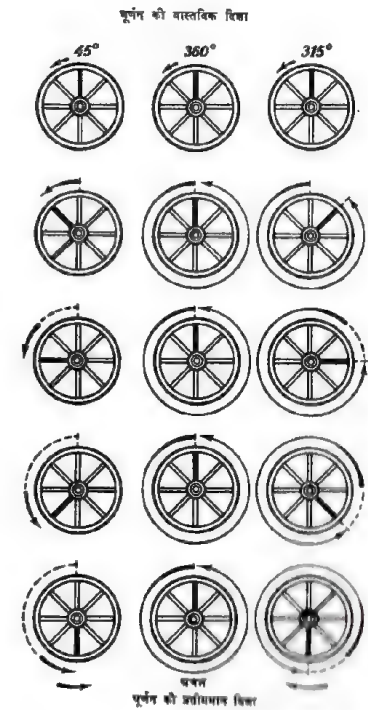
चित्र 143. सिनेमा के पर्दे पर चक्कों की अजीब गति का रहस्य।

अतः यहाँ तीन बातें हो सकती हैं, जिन्हें हम अभी एक-एक कर देखेंगे।

प्रथमतः, हो सकता है कि चक्का जितनी देर आँखों से ओझल रहता है, उतनी देर में वह किसी पूर्ण संख्या बार चक्करें काट लेता है,— कोई फर्क नहीं पड़ता कि एक चक्कर या बीस चक्कर। सिर्फ चक्कर पूरे होने चाहिये। तब नये चित्र में चक्के की वही स्थिति होगी, जो पिछले में थी। इससे हम निष्कर्ष निकालते हैं कि वह घूम नहीं रहा है (चित्र 143 में बीच वाला स्तंभ)।

दूसरी स्थिति: चक्का हर बार जब ओझल होता है, वह पूरी संख्या में चक्कर लगा चुकने के बाद थोड़ा और आगे घूम जाता है। ऐसे चित्रों को क्रम से देखने पर हम पूरे चक्करों का अंदाज नहीं लगा पाते और हमें प्रतीत होता है कि चक्का बहुत धीरे-धीरे घूम रहा है (हर बार वह थोड़ा ही घूमा हुआ दिखता है)।

तीसरी स्थिति: आँख से ओझल होने के अंतराल में चक्का पूरे चक्करों के अतिरिक्त आधा से अधिक घूम जाता है (जैसे चित्र 143 के तीसरे स्तंभ में 315° पर)। इस हालत में पिछले चित्र से तुलना करने पर लगेगा कि चक्का थोड़ा पीछे घूम गया है। यह भ्रम तबतक जारी रहेगा, जबतक चक्के की घूर्णन-गति बदल नहीं जाती।

अब ऊपर की व्याख्या में चंद और छोटी-मोटी बातें जोड़नी रह जाती हैं। पहली स्थिति में हमने सरलता के लिये कह दिया था कि चक्के **पूर्ण** चक्कर पूरा करने में सफल हो जाते हैं; पर चूँकि चक्के की तीलियां एक जैसी हैं, इसलिये काफी रहेगा, यदि चक्का तीलियों के **बीच के कोण** की किसी पूर्ण संख्या जितना बड़ा कोण बनाता हुआ घूम जाये।

यही बात अन्य स्थितियों के साथ भी होगी।

कुछ दूसरी विलक्षणतायें भी संभव हैं। यदि चक्के की किनारी पर कोई निशान लगा हो, तो कभी ऐसा भी लग सकता है कि निशान एक दिशा में घूम रहा हो और तीलियां **दूसरी दिशा में!** यदि निशान किसी तीली पर है, तो तीलियां निशान के विपरीत घूम सकती हैं; निशान तीलियों पर दौड़ता सा प्रतीत होगा।

जब सिनेमा में साधारण दृश्य दिखाये जाते हैं, तो इस भ्रम से कोई फर्क नहीं पड़ता। पर यदि पर्दे पर किसी यंत्र का कार्य समझाया जा रहा हो, तो इस भ्रम के कारण यंत्र के कार्य के बारे में गलत खयाल

भी हो जा सकते हैं। ध्यानपूर्वक देखने वाले दर्शक पर्दे पर स्थिर प्रतीत होने वाले चक्कों की तीलियां गिन कर कुछ हद तक उनकी घूर्णन-गति का वेग ज्ञात कर ले सकते हैं। सिनेमा में अक्सर प्रति सकेंड 24 चित्र दिखाये जाते हैं। यदि तीलियों की संख्या 12 है, तो प्रति सेकेंड चक्करों की संख्या होगी 24:12, अर्थात् 2, या आधे सेकेंड में एक पूरा चक्कर। यह चक्करों की न्यूनतम संख्या है। अन्य संख्यायें भी संभव हैं; वे इस संख्या से किसी पूर्णांक संख्या गुनी अधिक हो सकती हैं (जैसे दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी आदि)। चक्के के व्यास का अंदाज लगा कर आप उस का वेग भी लगभग मानों में निर्धारित कर सकते हैं। यदि चक्के का व्यास 80 cm है, तो हमारी स्थिति में कार का वेग 18 km/h (या 36 km/h, या 54 km/h, आदि) हो सकता है।

चित्र 144. चलित्र का घूर्णन-वेग निर्धारित कर के लिये चक्रिका।

ऊपर बताये गये भ्रम की सहायता से प्रविधि में तेजी के साथ घूमते चक्के की घूर्णन-संख्या ज्ञात की जाती है। विधि निम्न बातों पर आधारित है। परिवर्ती विद्युत-धारा से जलते बल्ब की प्रकाश-शक्ति स्थिर नहीं रहती: वह सेकेंड के हर शतांश में धीमी पड़ जाती है। साधारण परिस्थितियों में हम इसे नहीं देखते। पर मान लीजिये कि ऐसे बल्ब से चित्र 144 में दिखाया गया चक्का प्रकाशित किया जा रहा है। यदि चक्का सेकेंड के हर शतांश में $^1/_4$ चक्कर लगाता है, तो हमें चक्का समरूप भूरे की जगह काले-सफेद वृत्त खंडों में बँटा हुआ लगेगा, मानों वह बिल्कुल स्थिर हो।

प्रविधि में "काल-सूक्ष्मदर्शी"

"मनोरंजक भौतिकी" की प्रथम पुस्तक में "काल-विशालक" का वर्णन किया गया था, जिसका आधार सिनेमा का कैमरा था। वैसा ही प्रभाव एक अन्य विधि से भी प्राप्त किया जा सकता है, जिसका आधार पिछले निबंध में बतायी गयी बातें हैं।

हम जान चुके हैं कि 25 चक्कर प्रति सेकेंड के वेग से घूर्णनरत काले-सफेद वृत्तखंडों वाला चक्का (चित्र 144) प्रति सेकेंड 100 कौंधें देने वाले

बल्ब के प्रकाश में स्थिर प्रतीत होता है। अब मान लें कि प्रति सेकेंड कौंधों की संख्या बढ़ कर 101 हो जाती है। ऐसे दो कौंधों के बीच के समय में चक्का पहले की तरह चौथाई चक्कर पूरा नहीं कर सकेगा और इसका मतलब है कि वृत्त-खंड अपना अनुरूप स्थान नहीं ले पायेगा।

आँख उसे परिधि के शतांश तुल्य दूरी पीछे देखेगी। अगली कौंध में वृत्तखंड परिधि के दो शतांश तुल्य दूरी पीछे दिखेगा। हमें लगेगा कि चक्का **उल्टी दिशा में** घूम रहा है और एक सेकेंड में एक पूरा चक्कर लगा रहा है। गति 25 गुनी कम लगती है।

आप समझ गये होंगे कि उल्टी दिशा की बजाय सीधी दिशा में चक्के का घूर्णन कैसे मंद किया जा सकता है। इसके लिये कौंधों की प्रति सेकेंड संख्या बढ़ानी नहीं **घटानी** होगी। उदाहरणार्थ, प्रति सेकेंड 99 कौंध वाले प्रकाश में चक्का सीधी दिशा में एक चक्कर प्रति सेकेंड की दर से घूमता नजर आयेगा।
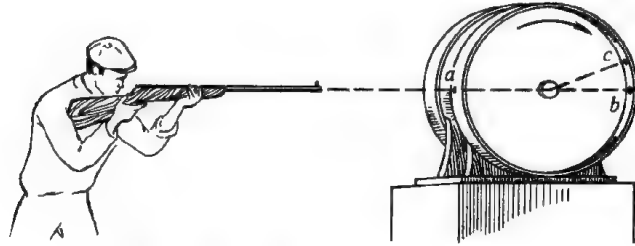
चित्र 145. गोली का वेग ज्ञात करना।

यह "काल-सूक्ष्मदर्शी" होगा, जो गति को 25 गुना मंद कर के दिखाता है। मंदन और भी अधिक हो सकता है। यदि कौंधों की संख्या 10 सेकेंड में 999 (अर्थात् प्रति सेकेंड 99.9) कर दी जाये, तो चक्का 10 सेकेंड में 1 चक्कर लगाता नजर आयेगा। गति 250 गुनी मंद हो जाती है।

उपरोक्त विधि से किसी भी क्षिप्र आवर्ती गति को आँखों के लिये इष्ट सीमा तक मंद किया जा सकता है। क्षिप्र यंत्रों की गति-विशेषताओं का अध्ययन करने में इससे काफी सुविधा होती है, क्योंकि ऐसे "काल-सूक्ष्मदर्शी से गति को सौगुना, हजार गुना आदि जितना मंदन दिया जा सकता है।[1]

अंत में बंदूक की गोली का वेग नापने के लिये एक विधि का वर्णन करते हैं, जो चक्के की घूर्णन-संख्या शुद्धता के साथ निर्धारित करने की संभावना पर आधारित है। क्षिप्र घूर्णन वाले बेलन पर गत्ते की चकती बैठा देते हैं। चकती काले-सफेद वृत्त-खंडों में बँटी होती है और उसकी किनारी इस प्रकार मुड़ी होती है कि वह बेलनाकार खुले बरतन जैसी लगती है (चित्र 145)। बंदूकधारी इसके व्यास के अनुतीर निशाना लगाता है, जिससे गोली बरतन की दीवार में दो जगह छेद कर देती है। यदि बरतन स्थिर होता, तो दोनों छेद एक ही व्यास के दोनों सिरो पर होते। लेकिन बरतन को घूर्णन-गति दी गई है, इसलिये जबतक गोली एक किनारी से दुसरी किनारी तक पहुँचती है, बरतन थोड़ा घूम चुका होता है। फलतः दूसरा छेद b की बजाय c पर बनता है। बरतन की घूर्णन-संख्या, उसका व्यास और चाप bc नाप कर गोली का वेग ज्ञात किया जा सकता है। यह एक सरल ज्यामितीय समस्या है, जिसे थोड़ा बहुत गणित का ज्ञान रखने वाले पाठक भी हल कर ले सकते हैं।

निपकोव-चक्र

दृष्टि-भ्रम के प्राविधिक उपयोग का एक सुंदर उदाहरण तथाकथित "निपकोव चक्र" है। इसका उपयोग प्रथम टेलिविजनों में हुआ करता था। चित्र 146 में आप वृत्त देखते हैं। छेद एक सर्पिल रेखा पर समरूपता से बनाये गये हैं। हर छेद अपने पड़ोस की तुलना में केंद्र से 2 mm निकट है। ऐसे चक्र से कोई विशेष उम्मीद नहीं की जा सकती। पर आप उसे चित्र 147 की भाँति एक उदग्र खिड़की और चित्र के बीच अक्ष के सहारे नचाना शुरु कीजिये। स्थिर चक्र द्वारा छिपा हुआ चित्र आपको स्पष्ट नजर

---

[1] क्षिप्रपरिवर्ती प्रक्रियाओं की आवृति नापने के लिये व्यवहृत उपकरण — आवर्तदर्शी (स्ट्रोबोस्कोप) के मूल में यही नियम है। आवर्तदर्शियों से अत्यंत शुद्ध मापें मिल सकती हैं (उदाहरणार्थ, एलेक्ट्रोनी आवर्तदर्शी से सिर्फ 0.001% की अशुद्धी मिलती है।—संपादक
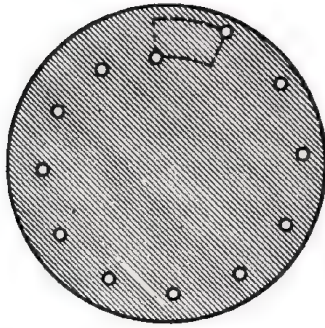
चित्र 146

चित्र 147.

आने लगेगा। घूर्णन कम करें, चित्र अस्पष्ट हो जायेगा। घूर्णन बंद हो जाने पर चित्र बिल्कुल ही नहीं दिखेगा या सिर्फ उतना दिखेगा, जितना 2 mm व्यास वाले नन्हे छेद से दिख सकता है।
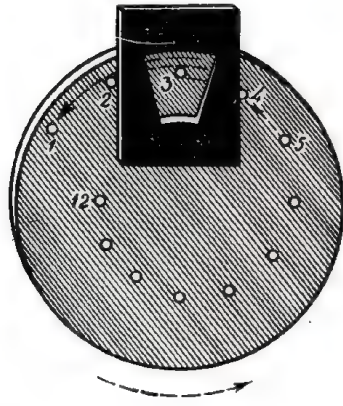
चित्र 148.

अब देखे कि इस प्रभाव का कारण क्या है। चक्र को मंद गति से घुमा कर खिड़की के सामने गुजरते छेदों को क्रम से अलग-अलग देखा जाये। केंद्र से सबसे दूर वाला छेद खिड़की की ऊपरी किनारी के समीप से गुजरता है। यदि उसकी गति बहुत तेज होगी, तो वह आपको चित्र का क्षैतिज पट्टी जितना बड़ा भाग दिखा देगा। यह चित्र का ऊपरी भाग होगा। दूसरा छेद, जो पहले से थोड़ा नीचे है, चित्र की निचली पट्टी दिखायेगा। इसी तरह सारे छेद एक-एक पट्टी कर के पूरा चित्र दिखा देंगे। घूर्णन-गति तेज होने पर आपको चित्र सतत दिखती रहेगी, मानो चक्र में खिड़की के बराबर आकार वाला छेद कर दिया गया है।

निपकोव का चक्र आप स्वयं सरलतापूर्वक बना ले सकते हैं; तेजी से घुमाने के लिये उसके अक्ष पर रस्सी लपेट लीजिये, पर छोटे से विद्युत-चलित्र का उपयोग करना बेहतर होगा।
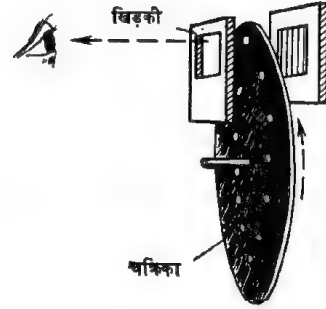
करता ऐसा क्यों ?

आदमी जैसे जीव बहुत कम हैं, जिनकी दोनों आँखें किसी वस्तु को एक साथ देख सकती हैं। उसकी बायीं आँख का दृष्टि-क्षेत्र दायीं आँख के दृष्टि-क्षेत्र से थोड़ा ही भिन्न होता है।

अधिकतर जीवों की दोनों आँखें अलग-अलग चीजें देखती हैं। वे वस्तु का व्योम चित्र नहीं प्राप्त करते, लेकिन हमारी तुलना में वे एक साथ कहीं अधिक बड़ा क्षेत्र देखने में समर्थ होते हैं। चित्र 149 में आदमी की आँखों के दृष्टि-क्षेत्र दिखाये गये हैं: हर आँख क्षैतिज दिशा में 120° के कोण की सीमा में देख सकती है और दोनों आँखों के दृष्टि-क्षेत्र लगभग एक ही हैं (यदि आँखें स्थिर हों)।
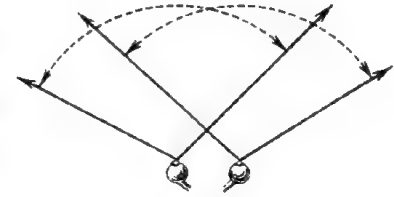
चित्र 149. आदमी की दोनों आँखों के दृश्य-क्षेत्र।

इस आरेख की तुलना अब चित्र 150 के साथ करें; यह खरहे की आँखों का दृष्टि-क्षेत्र दिखाता है। खरहा बिना सर घुमाये सिर्फ आगे की ही नहीं, पीछे की वस्तुएं भी देख सकता है। दोनों आँखों के दृष्टि-क्षेत्र
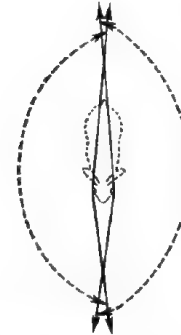
चित्र 150. खरगोश की दोनों आँखों के दृश्य-क्षेत्र।
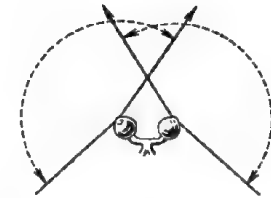
चित्र 151. घोड़े की दोनों आँखों के दृश्य-क्षेत्र।

उसके आगे और पीछे मिलते हैं। अब आप समझते होंगे कि खरहे को बिना डराये उसके पास पीछे से छिप कर पहुँचना कठिन क्यों होता है। पर, जैसा कि आरेख से स्पष्ट है, खरहा अपनी नाक के पास की चीज नहीं देख पाता, इसके लिये उसे सर घुमाना पड़ता है।

खुर वाले लगभग सभी जीवों की दृष्टि ऐसी ही "सर्वमुखी" होती है। चित्र 151 में घोड़े के दृष्टि-क्षेत्रों की स्थितियाँ दिखायी गयी हैं: पीछे की ओर वे नहीं मिलते अतः पीछे क्या है, यह देखने के लिये उसे सिर घुमाना पड़ता है। वस्तुओं का बिंब इन जीवों के लिये स्पस्ट नहीं होता, पर चारों ओर दूर तक की हल्की से हल्की गतिविधियाँ भी उनकी निगाह से नहीं छिपतीं। फुर्तीले हिंसक पशु जिन्हें आक्रामक की भूमिका निभानी पड़ती है, अपने चारों ओर नहीं देख पाते; उनकी दृष्टि "दो आँखों वाली" होती है, जिसके कारण वे दूरी का सही-सही अंदाज लगा पाते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो अपने शिकार पर छलांग लगाने में उनसे अक्सर चूक होती रहती।

अंधेरे में सभी बिल्लियां भूरी क्यों ?

भौतिकविद् कहता कि "अंधेरे में सभी बिल्लियां काली लगती हैं", क्योंकि प्रकाश की अनुपस्थिति में चीजें दिखायी ही नहीं देतीं। पर कहावत का संबंध पूर्ण अंधेरे से नहीं, अत्यंत क्षीण प्रकाश से है। कहावत सही रूप में इस प्रकार है: अंधेरे में सभी बिल्लियां भूरी होती हैं। कहावत का मूल अर्थ यह है कि कम प्रकाश में आँखें रंग-भेद नहीं बता सकतीं, हर सतह भूरी प्रतीत होती है।

कहाँ तक सच है यह? क्या सचमुच ही कम अंधेरे में लाल झंडा और हरा पत्ता एक जैसे भूरे लगते हैं? इन कथनों की सत्यता आसानी से जाँची जा सकती है। जिन्होंने झुटपुटी शाम में रंगों को देखने की कोशिश की होगी, वे बता सकते हैं कि इस स्थिति में रंग-भेद लुप्त हो जाते हैं और हर चीज गाढ़ी भूरी लगती है।

चेखव के "पत्र" में आप पढ़ सकते हैं: "पर्दे के कारण यहाँ सूर्य-किरणें नहीं आ रही थीं; कमरे में झुटपुट अंधेरा था, इसलिये बड़े से गुलदस्ते में सभी गुलाब एक रंग के प्रतीत हो रहे थे।"

भौतिकीय प्रयोग भी इस अवलोकन की सत्यता को सिद्ध करते हैं। यदि रंगीन सतह पर क्षीण श्वेत प्रकाश डाला जाये (या सफेद सतह पर रंगीन प्रकाश डाला जाये और प्रकाश की शक्ति धीरे-धीरे बढ़ायी जाये, तो शुरु-शुरु में सिर्फ भूरा रंग दिखायी देगा। जब प्रकाश की शक्ति एक नियत सीमा तक पहुँचती है, आँखों को रंग की अनुभूति मिलनी शुरू होती है। प्रकाश की यह शक्ति "वर्ण-संवेदना की निचली सीमा" कहलाती है।

इस प्रकार, कहावत (जो अनेक भाषाओं में मिल सकती है) का शाब्दिक और सही अर्थ यह है कि वर्ण-संवेदना की सीमा से नीचे सभी वस्तुएं भूरी लगती हैं।

ज्ञात हुआ है कि वर्ण-संवेदना की ऊपरी सीमा भी है। काफी तीव्र प्रकाश में आँखें रंग-भेद करने में असमर्थ होती हैं: सभी रंगीन सतहें समान रूप से श्वेत लगती हैं।

अध्याय 10

ध्वनि. लहरदार गति

ध्वनि व रेडियो-तरंगें

ध्वनि प्रकाश की तुलना में करीब दस लाख गुनी मंद गति से प्रसारित होती है; और चूँकि रेडियो-तरंगों और प्रकाश के वेग समान हैं, इसलिये ध्वनि रेडियो-संकेत से दस लाख गुने मंद वेग से चलती है। इससे एक दिलचस्प निष्कर्ष निकलता है, जिसका सार निम्न प्रश्न से स्पष्ट हो सकता है: संगीत-कक्ष में पियानो की प्रथम ध्वनि किसे पहले सुनायी देगी – पियानो से 10 m की दूरी पर बैठे श्रोता को, या 100 किलोमीटर दूर स्थित रेडियो के पास बैठे व्यक्ति को (रेडियो पर वही प्रोग्राम सीधे संगीत कक्ष से प्रसारित हो रहा है)?

बात कितनी भी विचित्र क्यों न हो, रेडियो सुनने वाला व्यक्ति पियानो की आवाज संगीत-कक्ष के श्रोता से पहले सुन लेगा, यद्यपि वह वाद्य-यंत्र से 10 000 गुना अधिक दूर बैठा है। रेडियो-तरंगें 100 किलोमीटर की दूरी तय करने में लगाती हैं

$$\frac{100}{300\,000} = \frac{1}{3\,000} \text{ सेकेंड।}$$

ध्वनि 10 मीटर की दूरी तय करती है

$$\frac{10}{340} = \frac{1}{34} \text{ सेकेंड में।}$$

इससे स्पष्ट है कि रेडियो प्रसारण द्वारा ध्वनि को भेजने में करीब सौगुना कम समय लगता है, बनिस्बत कि ध्वनि को हवा के माध्यम से भेजने में।

ध्वनि और बंदूक की गोली

जब जूल वेर्न के यात्री गोले में बैठ कर तोप से छुटे, तो वे इस बात पर विस्मित थे कि इतने बड़े तोप दागे जाने की कोई आवाज उनके कानों तक नहीं पहुँची। पहुँचती भी नहीं। आवाज कितनी भी जोरदार क्यों न हो, उसके प्रसारण का वेग (हवा में किसी भी ध्वनि की तरह) सिर्फ 340 m/s के बराबर होता है। पर गोले का वेग था 11000 m/s। स्पष्ट है कि तोप दागने की आवाज यात्रियों तक नहीं पहुँचेगी: गोला ध्वनि से आगे निकल जायेगा।[1]

तोप के गोले और बंदूक की गोलियां वास्तविकता में कितनी तेज चल सकती हैं: ध्वनि से तेज चलती हैं या उनकी आवाज उनसे आगे निकल कर शिकार को सावधान कर देती है?

आधुनिक बंदूक की गोली ध्वनि से तिगुनी तेज चलती है, अर्थात् उनका वेग होता है 900 m/s (और ध्वनि का वेग 0° पर 332 m/s)। यह बात और है कि ध्वनि समरूप गति से चलती रहती है और गोली का वेग घटने लगता है। पर अपने पथ का अधिकांश भाग गोली ध्वनि से तेज चलती हुई तय करती है। इससे सीधा निष्कर्ष यह निकलता है कि यदि गोली चलने पर आपको उसकी आवाज सुनायी देती है, तो इसका मतलब है कि घबड़ाने की कोई बात नहीं है: गोली आपको नहीं लगी है। गोली बंदूक की आवाज से आगे चली जाती है और यदि वह किसी को लगती है, तो वह पीछे से आती आवाज को सुन सकने के पहले ही मृत हो जायेगा।

मिथ्या विस्फोट

उड़ते हुए पिंड और उसके द्वारा उत्पन्न ध्वनि के वेगों में अंतर होने के कारण हम कभी-कभी गलत निष्कर्षों पर पहुँच जाते हैं, जिनका वास्तविकता के साथ कोई मेल नहीं होता।

इसका एक रोचक उदाहरण है उल्का (या तोप का गोला), जो हमारे

[1] अनेक आधुनिक विमान ध्वनि के वेग से काफी तेज चलते हैं। – संपादक

ठीक सर के ऊपर से काफी ऊँचाई पर उड़ती हुई निकलती है। उल्कायें वाह्य अंतरिक्ष से हमारे वातावरण में घुस आती हैं। उनका वेग काफी बड़ा होता है। हवा के प्रतिरोध से कम होते-होते भी उसका वेग ध्वनि के वेग से दसियों गुना अधिक रह जाता है।
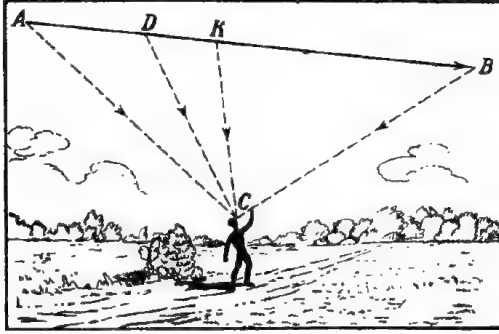
चित्र 152. विस्फोट से उल्का के टुकड़े होने का भ्रम।

हवा को चीरती हुई वे अक्सर शोर करती हैं, जो बादल गरजने की याद दिलाता है। मान लें कि हम बिंदु C पर खड़े हैं (चित्र 152) और ठीक हमारे ऊपर से AB रेखा पर एक उल्का जा रही है। उल्का द्वारा बिंदु A से भेजी गयी ध्वनि हम तक (अर्थात C तक) तब पहुँचती है, जब स्वयं उल्का बिंदु B पर पहुँच चुकी होती है। चूँकि उल्का काफी तेज भाग रही है, वह हम तक A वाली ध्वनि पहुँचने के पहले D से ध्वनि भेज देती है। इसलिये हम D बिंदु से आती ध्वनि पहले सुनते हैं और A वाली ध्वनि बाद में। और चूँकि B बिंदु से चलने वाली ध्वनि भी हम D वाली के बाद सुनते हैं, तो हमारे सिर के ऊपर एक बिंदु K होना चाहिये, जहाँ से उल्का की ध्वनि हमें सबसे पहले सुनायी दे जाती है। गणित के प्रेमी इस बिंदु की स्थिति कलन द्वारा निर्धारित कर ले सकते हैं, यदि उल्का और ध्वनि के वेगों का अनुपात ज्ञात हो जाये।

परिणाम यह होता है: जो हम सुनेंगे और जो देखेंगे, उनका आपस में कोई मेल नहीं बैठेगा। आँखों के लिये उल्का सर्वप्रथम बिंदु A पर होगी

और वह रेखा AB पर अग्रसर होती। लेकिन कान के लिये वह सर्वप्रथम हमारे सिर के ऊपर कहीं K पर होगी और इसके बाद हमें एक ही समय में दो ध्वनियां सुनायी देंगी, जो विपरीत दिशाओं में लुप्त होती प्रतीत होंगी – K से A की ओर और K से B की ओर। दूसरे शब्दों में, हमें सुनायी देगा कि उल्का मानों दो भागों में टूट गयी और हर भाग विपरीत दिशा में अग्रसर हो गया। यह विस्फोट नहीं हुआ है। यह दिखाता है कि ध्वनि संवेदनायें कितनी भ्रामक हो सकती हैं। बिल्कुल संभव है कि उल्का के विस्फोट की आँखों देखी कहानियाँ सुनाने वाले लोग ऐसे श्रवण-भ्रम का ही शिकार रहे हों।

यदि ध्वनि-वेग घट जाये...

यदि ध्वनि हवा में 340 m/s के वेग से नहीं, बल्कि इससे काफी कम वेग से प्रसारित होने लगे, तो श्रवण-भ्रमों की घटनायें अधिक अवलोकित होतीं।

कल्पना करें कि ध्वनि एक सेकेंड में 340 m नहीं, 340 mm चल पाती है, अर्थात् वह पैदल-यात्री से भी सुस्त चलती है। आप आरामकुर्सी में बैठे अपने मित्र की कहानी सुन रहे हैं, जिसे बोलते वक्त चहल-कदमी करने की आदत है। साधारण परिस्थितियों में यह चहल-कदमी आपको कहानी सुनने में बाधा नहीं पहुँचाती, पर ध्वनि का वेग कम हो जाने पर आप अपने मित्र की बातें बिल्कुल नहीं समझेंगे। पहले उच्चारित स्वर (जब मित्र आपसे दूर था) आपके कानों तक देर से पहुँचेंगे और बाद में उच्चारित स्वर (जब मित्र आपके निकट था) आप पहले सुन लेंगे। सारे स्वर आप तक उल्टे क्रम से पहुँचा करेंगे। इसमें से सिर्फ मंद शब्द आप समझ सकेंगे, जिनके लिये उल्टा सीधा एक समान होता है, जैसे:

"नवजीवन"।

सबसे मंद वार्त्ता

पर यदि आप सोचते हैं कि हवा में ध्वनि का वास्तविक वेग – तिहाई किलोमीटर प्रति सेकेंड – हर स्थिति के लिये पर्याप्त है, तो आपको अपना खयाल बदलना पड़ेगा।

मान लीजिये कि मास्को और लेनिनग्राद को टेलीफोन की बजाय बात-चीत करने वाली साधारण टोंटी से जोड़ा गया है, जिसे पहले बड़ी दूकानों के अलग-अलग कमरों को जोड़ने के लिये इस्तेमाल किया जाता था (या जिसे जहाजों में मशीनकक्ष से बात-चीत करने के लिये इस्तेमाल किया जाता था)। मान लीजिये कि आप इस 650 km लंबी नली के लेनिनग्राद वाले सिरे के पास खड़े हैं और आपका मित्र मास्को वाले सिरे के पास खड़ा है। आप कुछ पूछते हैं और उत्तर की प्रतीक्षा करते हैं। पाँच मिनट बीत जाते हैं, दस मिनट, पंद्रह मिनट..., उत्तर नहीं आ रहा है। आप चिंतित हो जाते है; आप सोचते हैं कि आपके मित्र के साथ कोई दुर्घटना हो गयी है। पर डरने की कोई बात नहीं है: आपका प्रश्न **अभी मास्को तक पहुंचा नहीं है;** वह बीच रास्ते में ही है। जबतक आपका मित्र आपकी आवाज सुनेगा और उत्तर देने के लिये तैयार होगा, 15 मिनट और बीत जायेंगे। लेकिन उत्तर को मास्को से लेनिनग्राद आने में भी आधे घंटे से कम नहीं लगेगा। इस प्रकार आप उत्तर सिर्फ एक घंटे बाद सुन सकेंगे।

आप हिसाब कर के देख ले सकते हैं: लेनिनग्राद से मास्को की दूरी 650 km है; ध्वनि एक सेकेंड में $^1/_3$ km चलती है; अतः मंजिल तक पहुँचने में उसे 2160 सेकेंड या 35 मिनट से कुछ अधिक लगेंगे। इन परिस्थितियों में आप सुबह से शाम तक में दस वाक्यों से अधिक का आदान प्रदान शायद ही कर सकेंगे। [1]

क्षिप्रतम पथ

एक जमाना था जब खबर भेजने की यह विधि भी क्षिप्र मानी जाती थी। सौ साल पहले विद्युत टेलीग्राफ या टेलीफोन की किसी ने कल्पना भी नहीं की होती और 650 km की दूरी पर कुछेक घंटे में समाचार भेजना शीघ्रता का आदर्श उदाहरण होता।

कहते हैं कि जार पावेल-I के राजतिलक शुरू होने की सूचना मास्को

[1] लेखक इस बात को ध्यान में नहीं रख रहे हैं कि दूरी के साथ-साथ ध्वनि-कंपन बिल्कुल बुझ जायेगा। इसके कारण बात-चीत बिल्कुल असंभव हो जायेगी, आपका प्रश्न आपके मित्र तक पहुँचेगा ही नहीं। – **संपादक।**

से लेनिनग्राद भेजने के लिये निम्न विधि अपनायी गयी थी। दोनों राजधानियों के बीच दो-दो सौ मीटर की दूरी पर सैनिक तैनात किये गये थे। गिरजे की प्रथम घंटी की आवाज सुनते ही निकटतम सैनिक ने हवा में गोली दाग दी। यह आवाज सुनते ही उसके बाद वाले सैनिक ने गोली दागी, इसके बाद तीसरे सैनिक ने, – और इसी प्रकार राजतिलक के आरंभ होने का संकेत लेनिनग्राद (उस समय पिटरबुर्ग) तक सिर्फ तीन घंटों में पहुँच गया। मास्को में घंटी की प्रथम ध्वनि के, ठीक तीन घंटे बाद 650 km दूर लेनिनग्राद के पेत्रो-पाव्लोव्स्क किले में भी तोप दगने की आवाज सुनायी देने लगी।

यदि मास्को के घड़ी-घंटों की आवाज उत्तरीय राजधानी लेनिनग्राद में सुनी जा सकती, तो जैसा कि हम देख चुके हैं, सिर्फ आधे घंटे बाद सुनी जाती। इसका मतलब है कि तीन घंटों में से ढाई घंटे सिर्फ इस बात में खर्च हुए कि सैनिक पिछले सैनिक द्वारा दागी गयी बंदूक की आवाज ग्रहण करता था और अपनी बंदूक दागने के लिये आवश्यक कार्य संपन्न करता था। इतना सा काम समय के बहुत नन्हे अंतराल में हो जाता है, पर ऐसे अनेक अंतराल मिल कर $2^1/_2$ घंटे में परिणत हो गये थे।

पुराने जमाने में प्रयुक्त प्रकाशीय टेलीग्राफ भी इसी तरह का होता था: इसमें पिछले स्टेशन से प्रकाशीय संकेत पा कर वैसा ही संकेत अगले स्टेशन पर भेजा जाता था। संकेत इसी तरह एक के बाद एक स्टेशन तय करता हुआ मंजिल तक पहुँचता था। प्रकाश संकेत द्वारा खबर भेजने की विधि का उपयोग जार के जमाने में क्रांतिकारी लोग भी करते थे। यदि कहीं पर उनकी गुप्त बैठक होती थी, तो बैठक के स्थान से पुलिस-स्टेशन तक थोड़ी-थोड़ी दुर पर अन्य क्रांतिकारी छिपे रहते थे। पुलिस-चौकी में कोई चहल-पहल दिखते ही निकटतम क्रांतिकारी टार्च जला कर अगले को सचेत कर देता था।

नगाड़े से टेलीग्राफ

अफ्रीका, मध्य अमेरिका और पोलीनेशिया की आदिवासी जातियों के बीच ध्वनि-संकेतों द्वारा खबर भेजने की प्रथा आज भी प्रचलित है। इसके लिये विशेष नगाड़ों का उपयोग किया जाता है। इनकी मदद से ध्वनि-

संकेतों को विशाल दूरियो तक भेजा जा सकता है : एक जगह पर सुने गये संकेत दूसरी जगह दुहराये जाते हैं और इसी तरह वे आगे पहुँचते रहते हैं। इस विधि से कोई भी महत्त्वपूर्ण खबर छोटे अंतराल में काफी बड़े भूभाग पर फैलायी जा सकती है (चित्र 153)।
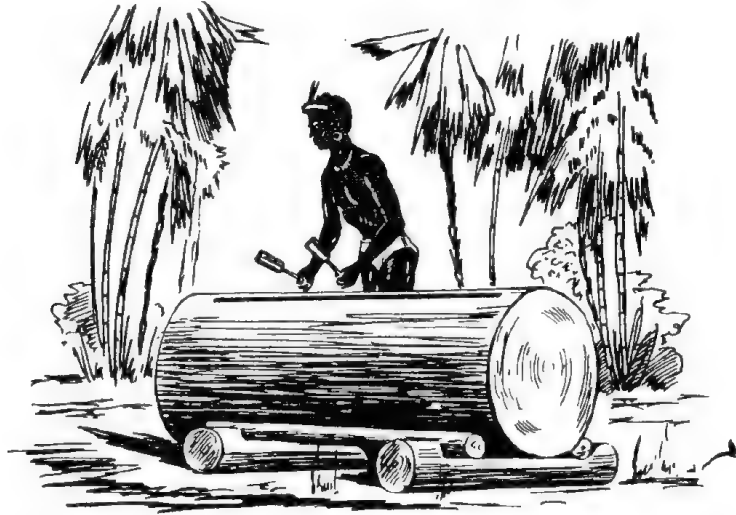
चित्र 153. फीजी द्वीप का आदिवासी नगाड़े के " टेलीग्राम " द्वारा वार्तालाप में मशगूल है।

इटली और अबिसीनिया के बीच होने वाले प्रथम युद्ध के दरम्यान इटालियन सेना की गति-विधियों की खबर शासक मेनेलीक को इतनी जल्द लग जाती थी कि इटालियन युद्ध-मंत्रणालय में लोग हैरत में पड़े हुए थे। उन्हें दुश्मन के मृदंगी टेलीग्राफ के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था।

इटली के साथ अबिसीनिया के दूसरे युद्ध के आरंभ में लामबंदी की आज्ञा अदीस - अबीब से निकल कर चंद घंटों में देश के कोने-कोने तक फैल गयी

ऐंग्लो-बोइर युद्ध के समय भी यही बात देखी गयी थी : काफ़ जन-जाति के "टेलीग्राफ" के उपयोग से कैपलैंड निवासियों के बीच युद्ध-समाचार

असाधारण गति से फैलते थे, जबकि सरकारी संदेश-वाहकों को इसमें कई-कई दिन लग जाते थे।

अफ्रीका के यात्रियों (जैसे लेव फ्रोबेनीउस) के अनुसार कुछ अफ्रीकन जन-जातियों के पास ध्वनि संकेतों की प्रणाली इतनी पूर्ण है कि उनके "टेलीग्राफ" को युरोपियनों के प्रकाशीय टेलीग्राफ से (जो विद्युत टेलीग्राफ से पूर्व था) अधिक अच्छा माना जा सकता है।

एक पत्रिका में निम्न खबर छपी थी। ब्रिटिश संग्रहालय के पुरावेत्ता आर. हैसेल्डेन नाइजीरिया के मध्य में स्थित शहर इबाड में थे। नगाड़े की आवाज वहाँ दिन रात गूंजती रहती थी। एक सुबह उन्होंने ध्यान दिया कि हर जगह लोग सरगर्मी के साथ किसी चीज के बारे में बातें कर रहे हैं। पुछने पर उन्हें बताया गया कि "गोरों का एक बड़ा जहाज डूब गया है; बहुत से लोगों की मृत्यु हुई है"। तट से यह खबर मृदंगी टेलीग्राफ से वहाँ पहुँची थी। पुरावेत्ता ने इस अफवाह पर कोई ध्यान नहीं दिया। लेकिन तीन दिन बाद उसे टेलीग्राफ मिला (लाइन खराब होने की वजह से देर हो गयी थी) कि "लुजीटेन" डूब गया है। तब वे समझ गये कि नियों लोगों की खबर सही थी, और वह कैर से इबाड पहुँची थी। सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि मार्ग में कई जनजातियां ऐसी थीं, जो एक दूसरे की बोली बिल्कुल नहीं समझती थीं और उनमें से कइयों के बीच युद्ध चल रहा था।

ध्वनि-कुहरे और हवा से प्रतिध्वनि

ध्वनि सिर्फ कठोर बाधा से ही परावर्तित नहीं होती। प्रतिध्वनि बादल जैसी नर्म कोमल वस्तु से भी मिल सकती है। यही नहीं, बिल्कुल पारदर्शक हवा भी विशेष परिस्थितियों में ध्वनि तरंगों को परावर्तित कर सकती है। जैसे, जब हवा के इस पारदर्शक भाग की ध्वनि-चालकता बाकी हवा से किसी कारणवश भिन्न होती है। इस घटना की तुलना प्रकाशिकी के "पूर्ण परावर्तन" की घटना के साथ की जा सकती है। ध्वनि अदृश्य बाधा से टकरा कर लौटती है और हमें रहस्यमयी प्रतिध्वनि सुनायी देती है, जो पता नहीं कहाँ से आती है।

यह रोचक तथ्य टिंडल को बिल्कुल संयोगवश ज्ञात हुआ था, जब वे समुद्र-तट पर ध्वनि-संकेतों के साथ प्रयोग कर रहे थे। "बिल्कुल पारदर्शक

हवा से प्रतिध्वनि मिलती है, — वे लिखते हैं। — प्रतिध्वनि मानों जादू के इशारे पर किसी ध्वनि-कुहरे से फूट रही थी।"

ध्वनि-कुहरे की संज्ञा अंग्रेज भौतिकविद ने पारदर्शक हवा के उस क्षेत्र को दी, जो ध्वनि को परावर्तित कर के "हवा से प्रतिध्वनि" उत्पन्न करता है। देखिये, क्या कहते हैं वे इसके बारे में :

"ध्वनि-कुहरे हवा में उड़ते रहते हैं। उनका बादल, वास्तविक कुहासे आदि के साथ कोई संबंध नहीं है। पारदर्शक से पारदर्शक हवा में भी वे उपस्थित हो सकते हैं। उनसे हवाई प्रतिध्वनियां मिल सकती हैं; सामान्य मान्यता के विपरित, वे स्वच्छतम वातावरण में भी उत्पन्न हो सकती हैं। हवाई प्रतिध्वनियों का अस्तित्व प्रयोगों तथा प्रेक्षणों से सिद्ध किया जा चुका है। वे वायु-धाराओं से भी उत्पन्न हो सकती हैं, यदि धारायें भिन्न तापक्रम पर हैं या उनमें आर्द्रता की मात्रा भिन्न है।"

ध्वनि-कुहरे का अस्तित्व युद्ध-काल में अवलोकित चंद रहस्यमयी संवृतियों पर प्रकाश डालता है। टिंडल फ्रैंको-प्रुशियन युद्ध (1871) के एक चश्मदीद गवाह की याद प्रस्तुत करते हैं :

"तारीख 6 की सुबह पिछली सुबह की ठीक उल्टी थी। पिछले दिन कनकनी ठंड थी और कुहासा था। छे का दिन साफ व गर्म था। पिछले दिन हवा में शोर ही शोर था, तरह-तरह की आवाजें थीं, और छे को पूर्ण नीरवता थी, जैसे लड़ाई कभी शुरू ही नहीं हुई थी। हम एक दूसरे की ओर आश्चर्य से देख रहे थे। क्या पेरिस, उसके किले और तोप, सब गायब हो गये? ... मैं मोनमोरॉंस में पहुँचा; वहाँ से उत्तरी पेरिस का विस्तृत दृश्य देखा जा सकता था। पर यहाँ भी पूर्ण शांति थी। मुझे तीन सैनिक मिल गये; मैं उनसे बातें करने लगा। वे यह मानने के लिये तैयार थे की संधि का उपक्रम चल रहा है, क्योंकि सुबह से गोली या बम की एक भी आवाज नहीं सुनायी दे रही है...

मैं आगे गोनेस की ओर बढ़ा। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मुझे पता चला कि जर्मन सैनिक 8 बजे सुबह से ही तड़ातड़ गोलियां चला रहे हैं। दक्षिणी हिस्से में भी बमबाजी करीब आठ बजे ही शुरू हो गयी थी। लेकिन मोनमोरॉंस में कोई आवाज नहीं आ रही थी। यह सब हवा पर निर्भर करता था : आज हवा ध्वनि को प्रसारित नहीं होने दे रही थी, और कल उसे दूर-दूर तक फैला रही थी।"

ऐसी संवृतियां 1914-1918 की लड़ाइयों में भी अवलोकित हुई थीं।

ऐसे भी लोग हैं जो झींगुर-गान या चमगादड़ की चीख जैसी तीखी ध्वनि नहीं सुन पाते। ये लोग बहरे नहीं हैं, — उनके कान ठीक-ठाक हैं, फिर भी वे ऊँची तान नहीं सुन पाते। विख्यात अंग्रेज भौतिकविद का कहना था कि कुछ लोग गौरैये की आवाज भी नहीं सुन पाते!

हमारे कान हमारे गिर्द के सभी कंपनों को नहीं सुन पाते। यदि पिंड एक सेकेंड में 16 से कम कंपन करता है, तो हमे ध्वनि सुनायी नहीं देती। यदि वह सेकेंड में 15-22 हजार से अधिक कंपन करता है, तो भी हमें कोई आवाज नहीं सुनायी देती। तान सुनने की ऊपरी सीमा भिन्न लोगों के लिये भिन्न होती है। वृद्ध लोगों के लिये ऊपरी सीमा सिर्फ 6 हजार कंपन प्रति सेकेंड वाली तान होती है। इसी कारण से यह विचित्र बात देखने को मिलती है कि कान बेधने वाली तीखी ध्वनि कुछ लोग अच्छी तरह से सुनते हैं और कुछ लोग बिल्कुल नहीं सुन पाते।

अनेक कीड़े-मकोड़े (जैसे मच्छड़, झींगुर) ऐसी आवाजें निकालते हैं, जिसकी तान प्रति सेकेंड 20 हजार कंपन वाली होती है। कुछ लोग इसे सुन सकते हैं और कुछ के लिये इसका कोई अस्तित्व नहीं होता। उच्च तान के प्रति असंवेदनशील लोग जहाँ पूर्ण नीरवता का रस लेते हैं, दूसरे लोगों को तीखी ध्वनियों का बेतरतीब शोर सुनायी देता रहता है। टिंडल बताते हैं कि उन्हें एक ऐसी घटना देखने का अवसर मिला था, जब वे अपने एक मित्र के साथ स्वीटजरलैंड में टहल रहे थे : "रास्ते के दोनों तरफ मैदानी घास कीड़े-मकोड़ों से भरा हुआ था, जो हवा में तरह-तरह से भनभनाहट और चर्राहट की आवाज फैला रहे थे। मेरा मित्र इन आवाजों को बिल्कुल नहीं सुन पा रहा था; उसके लिये कीड़े-मकोड़ों के "कलरव" का कोई अस्तित्व नहीं था।

चमगादड़ की चीख फतींगों के तीखे स्वर से पूरा एक सरगम (ऑक्टेव) नीचे है, अर्थात उससे हवा में होने वाले कंपन की बारंबारता दुगुनी कम है। पर ऐसे लोग भी मिल जाते हैं, जिनकी ध्वनि-ग्राह्यता इससे भी कम है और उनके लिये चमगादड़ एक मूक जंतु हैं।

इसके विपरित, पावलोव की प्रयोगशाला में निर्धारित किया गया था कि कुत्ते 38 हजार कंपन प्रति सेकेंड वाली तान भी सुन सकते हैं।

आधुनिक भौतिकी व प्राविधि के पास ऐसे साधन हैं, जो ऊपर बतायी गयी ध्वनियों से कहीं अधिक बारंबारता वाली "ध्वनिहीन ध्वनि" उत्पन्न कर सकते हैं। इन "पराध्वनियों का कंपन 10 000 000 000 प्रति सेकेंड तक पहुँच सकता है।

पराध्वनिक (या परास्वनिक) कंपन प्राप्त करने की एक विधि स्फटिक (क्वार्ट्स) के निम्न गुण पर आधारित है: उसके क्रिस्टल को विशेष ढंग से काट कर प्राप्त किये गये पत्तर को संपीडित करने (दबाने) से पत्तर की सतह पर विद्युत के आवेश उत्पन्न हो जाते हैं।[1] इसके ठीक उल्टा, यदि ऐसे पत्तर को आवर्ती विद्युतावेश दिया जाये, तो वह बारी-बारी से संपीडित व प्रसारित होने लगता है, अर्थात् वह कंपनमय हो जाता है और उसका कंपन परास्वनिक होता है। पत्तर को आविष्ट करने के लिये रेडियो-प्रविधि में प्रयुक्त नलिका-जनित्र की मदद ली जाती है, जिसकी आवृत्ति पत्तर की तथाकथित "निजी" आवृत्ति के अनुरूप चुनी जाती है।[2]

परास्वनि को हम सुन नहीं पाते, पर उसका प्रभाव कई अन्य रूपों में व्यक्त होता है और काफी प्रकट रूपों में व्यक्त होता है। उदाहरणार्थ, यदि कंपनरत पत्तर को तेल के बरतन में डुबा दिया जाये, तो परास्वनिक कँपकपी के मारे द्रव की सतह पर करीब 10 cm ऊँचा 'टीला' बन जाता है और तेल के छींटे चालिस-चालिस सेंटीमीटर तक उड़ने लगते हैं। एक मीटर लंबे काँच के छड़ का एक सिरा इस तेल में डुबाइये और दूसरा हाथ में पकड़े रहिये; हाथ में फोड़ा पड़ जायेगा। कंपनरत छड़ के सिरे को लकड़ी से सटायेंगे, तो छड़ लकड़ी को जलाता हुआ उसमें छेद कर देगा; परास्वनिक ऊर्जा तापीय ऊर्जा में परिणत हो जाती है।

सोवियत संघ और इसके बाहर परास्वनि का गहन अध्ययन चल रहा

---

[1] इसे पीडविद्युत (या दाबविद्युत) कहते हैं।

[2] क्वार्ट्स के क्रिस्टल परास्वनि के महंगे तथा क्षीण स्रोत हैं, इसीलिये इनका उपयोग प्रयोगशालाओं तक ही सीमित है। प्राविधिक उपयोग के लिये बेरियम टाइटेनेट की मृत्तिका जैसे पदार्थों को कृत्रिम रूप से संश्लिष्ट किया गया है।

है। ये कंपन सजीव अंगों पर गंभीर असर डालते हैं: समुद्री घास के रेशे टूट जाते हैं, जीव-कोशिकायें फट जाती हैं, रक्त-कोशिकायें विघटित हो जाती हैं; छोटी मछलियां और मेढ़क परास्वनि के प्रभाव से 1-2 मिनट के अंदर मृत हो जाते हैं; प्रयोगाधीन जीव (जैसे चूहे) का तापक्रम 45°C तक पहुँच जाता है। परास्वनिक कंपनों का व्यवहार चिकित्सा में हो रहा है; अदृश्य पराबैंगनी किरणों की तरह ही अश्रव्य परास्वनि भी रोगों से लड़ने के काम आ रही है।

धातुकर्म में परास्वनि के उपयोग विशेष रूप से सफल रहे हैं; इससे धातु की अशुद्धियाँ, हवा के बुलबुलों के कारण उसमें बनी गुफाओं, महीन दरार आदि का पता लगाया जा सकता है। विचाराधीन धातु को तेल में भिगा देते हैं और उस पर परास्वनिक कंपन का प्रयोग करते हैं। धातु में जिन जगहों पर अशुद्धियाँ होती हैं, वहाँ परास्वनि प्रकीर्णित होने लगती है। प्रकीर्णन की "छाया" तेल की सतह पर पड़ती है; शुद्ध-धातु वाले क्षेत्र पर तेल की सतह का रूप कुछ और होता है और अशुद्धता वाले क्षेत्र पर – कुछ और। अंतर इतना स्पष्ट होता है कि इसका फोटो-चित्र लिया जा सकता है।[1]

परास्वनि द्वारा पूरा एक मीटर मोटे धातु के टुकड़े के आर-पार "देखा" जा सकता है। एक्स-किरणें इतने मोटे धातु के पार नहीं जा सकतीं। इसके अतिरिक्त, परास्वनि की सहायता से धातु में स्थित एक मिलिमीटर चौड़ाई तक का अशुद्धि-क्षेत्र ज्ञात किया जा सकता है। इन बातों के आधार पर कहा जा सकता है कि परास्वनिक कंपनों का भविष्य काफी उज्जवल है।[2]

---

[1] परास्वनिक अशुद्धिदर्शी-विधि 1928 में सोवियत वैज्ञानिक एस. या. सोकोलोव द्वारा प्रस्तावित की गयी थी। आजकल परास्वनिक कंपनों के विशेष संग्राही बन चुके हैं, जिनके कारण तेल की आवश्यकता नहीं पड़ती और अशुद्धि ज्ञात करने में विशेष झंझट का सामना नहीं करना पड़ता। – संपादक।

[2] परास्वनि प्रकृति में भी पायी जाती है। हवा के शोर और सागर की गर्जन में भी ऐसे कंपन हैं, जो परास्वनि के अनुरूप हैं। कई सजीव प्राणी (जैसे तितलियां, सिकाड नामक शलभ) परास्वनि उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं। चमगादड़ उड़ते वक्त परास्वनिक संकेत छोड़ता रहता है, जो

लीलीपुट और गुलीवर के स्वर

सोवियत फिल्म "नया गुलीवर" में लीलीपुट अपने नन्हे कंठों और ध्वनि-उत्पादक नन्ही पेंशियों के कारण पतली आवाज में बोलते हैं और विशाल पेत्या-मोटे आवाज में। सूटिंग के वक्त बात-चीत में लीलीपुट की भूमिका वयस्क कलाकार अदा कर रहे थे और पेत्या की – एक छोटा सा बच्चा। फिर उनके स्वर की तान में आवश्यक परिवर्तन कैसे लाया गया? मुझे काफी आश्चर्य हुआ, जब फिल्म-निर्देशक प्तुश्को ने बताया कि सूटिंग के वक्त कलाकार अपने स्वाभाविक स्वर में ही बोल रहे थे। आवाज बदलने के लिये एक मौलिक विधि का उपयोग किया गया था, जो ध्वनि की भौतिकीय विशेषताओं पर आधारित थी।

लीलीपुटों की आवाज को पतली और पेत्या की आवाज को मोटी बनाने के लिये निर्देशक ने लीलीपुटों का अभिनय करने वाले कलाकारों की आवाज की रिकार्डिंग **धीमी गति में** की और पेत्या की – **तेज गति में**। पर्दे पर चित्र साधारण गति से प्रक्षिप्त किये जाते है, अतः निर्देशक की चालाकी का क्या फल हुआ होगा, समझना कठिन नहीं है। श्रोता लीलीपुट की आवाज साधारण ध्वनि-कंपनों में नहीं, **तीव्र** की गयी ध्वनि-कंपनों में सुन रहे थे और पेत्या की आवाज **धीमी** की गयी ध्वनि-कंपनों में सुन रहे थे। कंपन की तीव्रता बढ़ने से आवाज **पतली** हो जाती है और कम होने से आवाज **मोटी** हो जाती है।

फल यह होता है कि लीलीपुटों की आवाज साधारण से पाँच स्वर ऊँची हो जाती है और गुलीवर पेत्या की – पाँच स्वर **नीची**।

इस प्रकार "समय विशालक" का प्रयोग ध्वनि की तान बदलने के लिये किया गया था। चाबी से चलने वाले ग्रामोफोन में जब रिकार्ड की गति साधारण से तेज या मंद हो जाती है, तो यही बात देखने को मिलती है।

मार्ग में स्थित बाधा से परावर्तित होकर चमगादड़ को बता देते हैं कि अमुक दिशा में नही उड़ना चाहिये। – संपादक।

दिन में दो बार दैनिक पत्र

अभी हम एक समस्या पर विचार करने जा रहे हैं, जिसका भौतिकी या ध्वनि के साथ कोई संबंध नहीं लगता। फिर भी आप इस पर ध्यान दें; इससे आगे की सामग्री सुलभ हो जायेगी।

इस तरह के प्रश्न आपने दूसरे रूपों में सुना होगा। मास्को से व्लादीवस्तोक जाने के लिये हर दिन दोपहर को एक गाड़ी छूटती है। व्लादीवस्तोक से मास्को आने वाली गाड़ी भी हर दिन दोपहर को चलती है। मान लें कि एक तरफ की यात्रा दस दिनों की है। प्रश्न है: यदि आप व्लादीवस्तोक से मास्को आ रहे हैं, तो आपको मास्को से लौटती कितनी गाड़ियाँ रास्ते में मिलेंगी?

अक्सर उत्तर मिलता है: 10 पर यह गलत है। आपको रास्ते में सिर्फ वे ही गाड़ियाँ नहीं मिलेंगी, जो आपके रवाना होने के बाद मास्को से चलती हैं, बल्कि वे भी, जो पहले से चल चुकी हैं और **अभी रास्ते में** हैं। सही उत्तर 10 नहीं 20 होगा।

आगे बढ़ें। मास्को से चलने वाली हर गाड़ी अपने साथ ताजे समाचार-पत्र ले जाती है। यदि आप समाचारों में रुचि रखते हैं, तो जाहिर है कि हर स्टेशन पर आप अखबार खरीदने की कोशिश करेंगे। अपनी दस-दिवसीय यात्रा में आप के द्वारा खरीदे गये ताजे समाचार-पत्रों की संख्या क्या होगी?

इस बार सही उत्तर (20) बताने में आपको कठिनाई नहीं होगी। रास्ते में मिलने वाली हर गाड़ी अपने साथ ताजे समाचार पत्र लाती है और चूँकि आपको यात्रा के दरम्यान 20 गाड़ियां मिलती हैं, आप 20 अखबार खरीदेंगे। लेकिन आप की यात्रा सिर्फ दस दिनों की है, अतः **आप दिन में दो बार दैनिक पत्र पढ़ेंगे!**

इस निष्कर्ष की आपने उम्मीद नहीं की होगी और आपने विश्वास नहीं किया होता, यदि व्यवहार में स्वयं इसे परखने का मौका आपको नहीं मिलता। आप कम से कम यही याद कीजिये कि सेवस्तोपोल से लेनिनग्राद की द्वि-दिवसीय यात्रा में आपको लेनिनग्राद के चार अखबार पढ़ने को मिले थे: दो दिन के अखबार, जो आपकी रवानगी से पहले निकल चुके थे और दो अखबार, जो आपकी यात्रा के दरम्यान निकले थे। अब आप जानते हैं कि राजधानी के दैनिक पत्र किसके लिये दिन में दो बार निकलते हैं: उन यात्रियों के लिये, जो गाड़ी से राजधानी की ओर आ रहे हैं।

इंजन की सीटी

यदि आपके कान संगीत के लिये अच्छे हैं, तो आपने ध्यान दिया होगा कि सामने से आती गाड़ी की सीटी की तान (**तान** ही, ध्वनि की प्रबलता नहीं) कैसे परिवर्तित होती है। जबतक दोनों गाड़ियां एक दुसरे के निकट आ रही होती हैं, तान ऊँची रहती है, पर जब वे एक दूसरे से दूर होने लगती हैं, तो तान नीची ही जाती है। यदि दोनों गाड़ियों का वेग 50 किलोमीटर प्रति घंटे का है, तो ध्वनि की उच्चता में पूरी एक तारता का अंतर हो जाता है।

क्या कारण है इसका?

कारण समझने में दिक्कत नहीं होगी, यदि आप स्मरण करेंगे कि तारता की ऊँचाई प्रति सेकेंड की कंपन-संख्या पर निर्भर करती है। अब आप पिछले प्रश्न के साथ इसकी तुलना करें। आने वाली गाड़ी की सीटी से एक नियत बारंबारता (आवृत्ति) वाली ही ध्वनि निकलती है। पर आपके कान द्वारा ग्रहित कंपनों की संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि आप उस गाड़ी के निकट आ रहे हैं या उससे दूर जा रहे हैं।

जिस प्रकार मास्को की यात्रा के दौरान मास्को से दिन में एक बार निकलने वाले पत्र आप दिन में दो बार खरीदते हैं, उसी प्रकार ध्वनि-स्रोत के निकट आते वक्त आप के कान **प्रति सेकेंड अधिक कंपन ग्रहण करते हैं, बनिस्बत कि जितना इंजन की सीटी देती है।** लेकिन यहाँ आप तर्क नहीं करते: आप के कान प्रति सेकेंड अधिक कंपन ग्रहण करती है और आप प्रत्यक्ष रूप से अधिक ऊँची तारता की ध्वनि सुनने लगते हैं। दूर होते वक्त आप कम संख्या में कंपन ग्रहण करते हैं,—और आपको **कम नीची तारता सुनायी देती है।**

यदि उपरोक्त व्याख्या आपके लिये पर्याप्त नहीं है, तो मन ही मन देखने की कोशिश करें कि इंजन की सीटी से ध्वनि किस प्रकार प्रसारित होती है। पहले खड़ी इंजन की सीटी पर गौर करें (चित्र 154)। सीटी के कारण हवाई तरंगें उत्पन्न होती हैं। सरलता के लिये हम सिर्फ चार तरंगों को देखेंगे (चित्र में ऊपरी लहरदार रेखा) : खड़ी इंजन से तरंगे नियत काल के दरम्यान हर दिशा में समान दूरियाँ तय करती हैं। तरंग न. 0 प्रेक्षक A तक आने में उतना ही समय लगायेगी जितना प्रेक्षक B तक पहुँचने में। इसके बाद दोनों प्रेक्षकों तक समान कालांतरों में क्रमश:

तरंग न. 1, 2, 3, आदि पहुँचेगी। दोनों प्रेक्षकों के कर्ण-पटों द्वारा अनुभूत धक्कों की संख्या प्रति सेकेंड समान होगी और इसीलिये **दोनों ही समान तारता के स्वर सुनेंगे।**
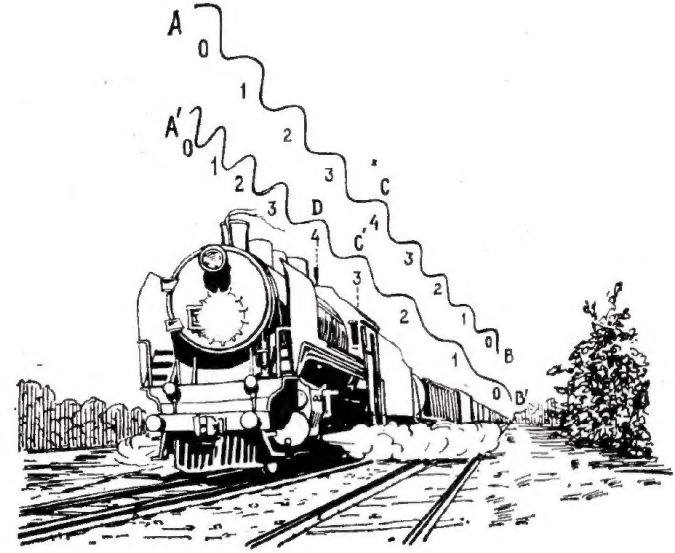
चित्र 154. इंजन की सीटी से संबंधित समस्या। ऊपर—खड़े इंजन से निकलती ध्वनि-तरंगें, नीचे—वही, गतिमान इंजन से।

यदि इंजन B से A की ओर गतिमान है, तो बात दूसरी होगी (निचली लहरदार रेखा देखें)। मान लें कि आरंभ में सीटी बिंदु C^1 पर थी और चार तरंगे छोड़ चुकने के बाद वह D पर पहुँच जाती है।

अब देखें कि तरंगों का प्रसारण किस प्रकार होता है। बिंदु C^1 से निकली तरंग न. 0 प्रेक्षकों A^1 और B^1 तक एक साथ पहुँचेगी। पर बिंदु D पर बनी चौथी तरंग उन तक एक साथ नहीं पहुँचेगी: पथ DA^1 पथ DB^1 से काफी कम है। अत: चौथी तरंग B^1 की अपेक्षा A^1 तक पहले

पहुँचेगी। बीच की तरंगें – न. 1 और न. 2 – भी A^1 पर पहले पहुँचेंगी और B' पर बाद में। पर पहुँचने के समयों में अंतर कम होगी फल यह होगा कि बिंदु A^1 पर ध्वनि-तरंगे अधिक बार ग्रहण की जायेंगी, बनिस्बत की B^1 पर : A^1 पर स्थित प्रेक्षक को उच्च तारता का स्वर सुनायी देगा और B^1 पर – निम्न तारता का। साथ ही आप चित्र से यह भी देख सकते हैं कि A^1 की दिशा में तरंगों की लंबाई कम है और B^1 की दिशा में अधिक है।[1]

डोप्लर-संवृत्ति

ऊपर बतायी गयी संवृत्ति की खोज भौतिकविद डोप्लर ने की थी और उसे डोप्लर के ही नाम से पुकारते हैं। वह सिर्फ ध्वनि के लिये नहीं, प्रकाश के लिये भी अवलोकित होती है, क्योंकि प्रकाश भी तरंग के रूप में प्रसारित होता है। तरंगों की संख्या (जो ध्वनि की स्थिति में तारता के रूप में सुनायी देती है) प्रकाश की स्थिति में आँखों द्वारा **रंग** के रूप में ग्रहण की जाती है।

डोप्लर का नियम खगोलशास्त्रियों को यह निर्धारित करने की विधि देता है कि कोई तारा हम से दूर जा रहा है या हमारी ओर आ रहा है। इस नियम से तारे का वेग भी ज्ञात किया जा सकता है।

खगोलशास्त्रियों को इसमें मदद मिलती है काली रेखाओं से, जो नक्षत्रों के स्पेक्ट्रम को खंडों में बाँटती हैं। यदि ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाये कि ये रेखायें किस ओर और कितनी स्थानांतरित हैं, तो अनेक महत्त्वपूर्ण

---

[1] यहाँ इस बात को ध्यान में रखना चाहिये कि चित्र की लहरदार रेखायें ध्वनि-तरंगों के **रूप** को सही-सही व्यक्त नहीं करतीं : हवा में कणों का कंपन ध्वनि की दिशा के अभिलंब नहीं, उसके **अनुतीर** होता है। ध्वनि की दिशा के अभिलंब कंपन से उत्पन्न तरंगों को सिर्फ दृश्य-सुगमता के लिये दिखाया गया है। ऐसी तरंग का कूबड़ ध्वनि की अनुतीरी तरंग में कणों के महत्तम संपीडन का समतुल्य है।

सूचनायें प्राप्त हो सकती हैं। डोप्लर-संवृत्ति से ही हम जानते हैं कि चमकदार लुब्धक (Sirius) हर सेकेंड हम से 75 km दूर होता जाता है। यह तारा हमसे इतनी विराट दूरी पर स्थित है कि उससे करोड़ों किलोमीटर दूर होते रहने पर भी उसकी चमक में कोई अंतर नहीं दिखता। बिना डोप्लर-संवृत्ति की सहायता लिये हम इस नक्षत्र की गति के बारे में सोच भी नहीं सकते थे।

यह इस बात का ज्वलंत उदाहरण है कि भौतिकी सचमुच ही सर्वव्यापक नियमों का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। कुछ एक मीटर लंबाई वाली **ध्वनि-तरंगों** के अध्ययन से प्राप्त परिणामों को वह नन्ही **प्रकाश-तरंगों** पर लागू करती है, जिसकी लंबाई मिलिमीटर के हजारवें-लाखवें अंश के बराबर होती है और इस ज्ञान का उपयोग कर के अनंत ब्रह्मांड में गतिशील असंख्य सूर्यों की गति-विधि का चित्र प्राप्त कर लेती है।

किस्सा एक जुर्माने का

जब डोप्लर पहली बार (1842 में) इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ध्वनि या प्रकाश के तरंगों की प्रति सेकेंड संख्या प्रेक्षक और ध्वनि या प्रकाश के स्रोत की आपसी दूरी के बढ़ने या घटने पर निर्भर करती है, तो उन्होंने तारों के रंगीन होने की बात इसी नियम से समझाने की कोशिश की। वे सोचते थे कि सभी तारे अपने आप में सफेद रंग के सूर्य हैं। वे हमें रंगीन लगते हैं, क्योंकि वे हमारे सापेक्ष तेजी से गति करते रहते हैं। तेजी से हमारी ओर बढ़ने वाले सफेद तारे पृथ्वी पर तरंगों को छोटी कर के भेजते हैं, इसीलिये प्रेक्षक की आँखों को हरे, नीले या बैंगनी रंग की अनुभूति होती है। इसके विपरीत, हमसे दूर भागते सितारे से निकलती प्रकाश-तरंगों की लबाइयां बड़ी हो जाती हैं, और हमें पीले या लाल रंग की अनुभूति होती है।

विचार मौलिक था, पर गलत था। सितारों के रंग में कोई परिवर्तन दिखे, इसके लिये आवश्यक है कि उनका वेग हजारों-लाखों किलोमीटर प्रति सेकेंड का हो। पर इतना ही काफी नहीं है : बात यह है कि निकट आते तारे का नीला रंग यदि बैंगनी में बदलता, तो साथ ही साथ हरा रंग नीले में बदल जाता, पराबैंगनी की जगह बैंगनी रंग ले लेता, लाल की –

अवरक्त, आदि। फल यह होता कि श्वेत रंग के सारे अवयव पहले की तरह ही मौजूद रहते; स्पेक्ट्रम में सारे रंगों के स्थानांतरण के बावजूद हमारी आँखें कोई परिवर्तन नहीं देख पातीं।

प्रेक्षक की ओर आते हुए तारे के स्पेक्ट्रम में काली रेखाओं के स्थानांतरण की बात दूसरी है: ये स्थानांतरण अच्छे उपकरणों से ज्ञात हो सकते हैं और तारों की गति को दृश्य किरणों की सहायता से निर्धारित करने में सहायक होते हैं (अच्छा स्पेक्ट्रमदर्शी तारों का 1 km/s जैसा छोटा वेग भी बता सकता है)।

जब भौतिकविद रौबर्ट वुड को पुलिस लाल बत्ती पर गाड़ी नहीं रोकने का जुर्माना कर रही थी, उन्हें अचानक डोप्लर के इस भूल की याद आ गयी। बताते हैं कि वुड पुलिस वाले के सामने यह सिद्ध करने लगे कि तेज गति से चलने पर लाल बत्ती हरी दिखने लगती है। यदि पुलिस वाला भौतिकी जानता होता, तो वह हिसाब लगा कर देख लेता कि वैज्ञानिक को इसके लिये प्रति घंटे 1350 लाख किलोमीटर के वेग से गाड़ी हाँकनी पड़ती।

कलन इस प्रकार से है। मान लें कि बत्ती से निकलती प्रकाश-तरंग की लंबाई l है और प्रोफेसर को दिखने वाली तरंग की लंबाई l' है। v – गाड़ी का वेग है और c – प्रकाश का वेग है। इन परिमाणों की पारस्परिक निर्भरता सिद्धांत से ज्ञात होती है:

$$\frac{l}{l'} = 1 + \frac{v}{c}.$$

हम जानते हैं कि लाल रंग की अनुभूति उत्पन्न करने वाली तरंगों में से सबसे छोटी की लंबाई 0.0063 mm के बराबर होती है और हरे रंग की सबसे बड़ी तरंग की लंबाई 0.0056 m होती है। सूत्र में ये मान बैठाने से

$$\frac{0.0063}{0.0056} = 1 + \frac{v}{300\,000},$$

जिससे गाड़ी का वेग

$$v = \frac{300\,000}{8} = 37\,500 \text{ km/s}$$

या 135 000 000 km/h प्राप्त होता है। वुड यदि इस वेग से चल रहे होते, तो एक घंटे से कुछ अधिक समय में सूर्य से आगे निकल जाते। कहते हैं कि जुर्माने से उन्हें छुटकारा नहीं मिली; पुलिस ने उन पर अनुमत वेग से अधिक तेज गाड़ी चलाने का आरोप लगाया।

ध्वनि-वेग से

वादक संगीत आरंभ करता है और आप ध्वनि के वेग से उससे दूर भागने लगते हैं। आपको क्या सुनायी देगा?

डाक-गाड़ी में लेनिनग्राद से चल रहे व्यक्ति को हर स्टेशन पर एक ही तरह के अखबार नजर आयेंगे। ये वे अखबार होंगे, जो उसकी डाकगाड़ी से भेजे जा रहे हैं। नये समाचार पत्र पिछली गाड़ियों से आ रहे हैं। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकल सकता है कि ध्वनि-वेग से वादक को पीछे छोड़ते हुए चलने पर आपको हर समय एक ही ध्वनि सुनायी देगी, – वह ध्वनि, जो वादक के पास से चलते वक्त आपने सुनी थी वह हमेशा आपके पीछे लगी रहेगी।

पर यह निष्कर्ष गलत है। यदि आप ध्वनि वेग से भाग रहे हैं, तो ध्वनि-तरंगों के सापेक्ष आप स्थिर हैं; इसलिये तरंगें आप के कर्ण-पट पर चोट नहीं करेंगी और आप कुछ भी नहीं सुनेंगे। आप सोचेंगे वादक ने बजाना बंद कर दिया है।

पर अखबारों की उपमा से गलत निष्कर्ष क्यों निकला? इसलिये कि हमने निष्कर्ष निकालने के लिये उपमा-विधि का सही प्रयोग नहीं किया है। यात्री एक ही तारीख वाले अखबारों को देख कर यह भी तो सोच सकता है कि अखबारों का प्रकाशन बंद हो गया है। उसके लिये प्रकाशन-गृह अपना अस्तित्व खो बैठता, जैसे भागते स्रोता के लिये संगीत की ध्वनि अपना अस्तित्व खो बैठती। रोचक बात यह है कि इस प्रश्न में वैज्ञानिक लोग भी उलझ जा सकते हैं, यद्यपि प्रश्न इतना जटिल नहीं है।

स्कूल के जमाने में मेरी बहस एक अंतरिक्ष यात्री के साथ चल रही थी (अब वे नहीं रहे)। वे उक्त तर्क को मानने के लिये तैयार नहीं हो रहे थे और बार-बार इस बात पर जोर दे रहे थे कि वादक के पास से ध्वनि-वेग से भागने वाले को लागातार एक ही स्वर सुनायी देता रहेगा। उनका तर्क यह था (उनके पत्र का एक अंश प्रस्तुत है):

"मान लें कि एक विशेष तारता की ध्वनि गूंजती है। वह पुराने जमाने से गूंजती आ रही है और भविष्य में भी गूंजती रहेगी। व्योम में स्थित प्रेक्षक क्रम से एक के बाद एक उसे सुनते जाते हैं (मान लें कि ध्वनि की प्रबलता घटती नहीं है)। यदि आप ध्वनि-वेग से उड़ते हुए इन प्रेक्षकों के स्थानों पर क्रमानुसार पहुँचते जाते हैं, तो आपको उन स्थानों पर वह ध्वनि क्यों नहीं सुनायी देगी?"

ठीक इसी प्रकार से वे यह भी सिद्ध कर रहे थे कि बिजली चमकने के क्षण प्रकाश-वेग से गतिमान व्यक्ति को आकाश में वह लागातार दिखती रहेगी:

"मान लीजिये, – वे लिखते हैं, – कि व्योम में आँखों की सतत कतार लगी है। इनमें से प्रत्येक को बिजली के प्रकाश की अनुभूति पिछली वाली के बाद ही होगी। अब कल्पना करें कि आप प्रकाश-वेग से इन आँखों के स्थानों पर क्रम से पहुँचते जाते हैं, – तब स्पष्ट है कि बिजली हर समय दिखायी देती रहेगी।"

जाहिर है कि दोनों ही बातें गलत हैं। उक्त स्थितियों में हम न तो ध्वनि सुनेंगे, न बिजली देखेंगे। वैसे, यह पृ 302 के सूत्र से भी स्पष्ट है; उसमें $v = -c$ रखने पर ग्रहित तरंग की लबांई l^1 अनंत हो जाती है। इसका अर्थ यही हुआ कि तरंग अनुपस्थित है।

* *

*

"मनोरंजक भौतिकी" समाप्त हो गयी। यदि यह पाठकों में भौतिकी से निकट का परिचय प्राप्त करने की इच्छा जागृत करती है, तो लेखक का लक्ष्य पूरा हो जाता है और वह संतोषपूर्वक लिख सकता है:

समाप्त